Ph D THESIS

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में औपनिवेशिक शक्तियों का प्रतिरोध (1950-80)

ADHUNIK HINDI UPANYASOM MEIN AUPANIVESHIK SHAKTHIYOM KA PRATIRODH (1950-80)

Thesis Submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

PRADEEP.C.P

Prof. (Dr) N.G.Devaki
Head of the Department

Prof. (Dr) P.A.Shemim Aliyar
Supervising Teacher

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

NOVEMBER 2014

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled **ADHUNIK HINDI UPANYASOM MEIN AUPANIVESHIK SHAKTHIYOM KA PRATIRODH (1950-80)** is a bonafide record of research work carried out by **Mr.Pradeep.C.P** under my supervision for Ph D (Doctor of Philosophy) Degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any other university. All the relevant corrections and modifications suggested by the audience during the pre-synopsis seminar and recommended by the doctoral committee of the candidate have been incorporated in this thesis.

Prof. (Dr) P.A.Shemim Aliyar
Supervising Teacher (Rtd)

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Cochin- 682022

Place : Cochin
Date : 26 .11.2014

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in this thesis entitled **ADHUNIK HINDI UPANYASOM MEIN AUPANIVESHIK SHAKTHIYOM KA PRATIRODH (1950-80)** is based on the original work done by me under the guidance of Dr.P.A.Shemim Aliyar, Professor (Rtd), Dept of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Cochin-682022 and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any other University.

PRADEEP.C.P

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Cochin- 682022

Place : Cochin
Date : 26 .11.2014

पुरोवाक्

गुलाम बनके जीना असह्य है। जीवन में स्वतंत्र रहना ही सबकी चाह है। भारतीयों की गुलामी की ज़िन्दगी का कोई अंत नहीं हुआ है। वह पुन: नए रूपों में देश में वर्तमान है। क्योंकि देश की स्वतंत्रता एक अधूरा शब्द है, इसलिए हम अब भी उपनिवेशवादी मानसिकता की गिरफ्त में है । नव औपनिवेशिक शक्तियाँ अपने पुराने उपनिवेशों में दुबारा घुसने की कोशिश करते आ रही हैं। उसमें वे सफल निकले हैं। ऐसी परिस्थिति में देश में उपनिवेशवाद का पुन:प्रवेश होता जा रहा है । इसके फलस्वरूप हम स्वतंत्र होते हुए भी पराधीनता का एहसास करते हैं।

साहित्य की आधार शिला समाज है। समाज की गहराई में जाकर वहाँ की असंगतियों को पाठकों तक पहूँचाकर, उसकी अंत:चेतना को जगाने का कार्य साहित्यकार करता है । समाज का प्रतिनिधित्व करनेवाले इस साहित्य में, साहित्यकार समाज के प्रति प्रतिबद्धता एवं दूरदर्शिता बनाए रखते हैं। समाज के साथ उनके इस सरोकार का परिणाम है उसकी हर रचना। उसमें सामान्य जीवन का सौन्दर्यपूर्ण अंकन होता है, संकटमय जीवन की करुण गाथा होती है तथा संघर्षमय जीवन की विद्रोह पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। आधुनिक हिन्दी उपन्यास इन सभी विविधताओं को अपने में समेटकर पाठकों से सार्थक संवाद करते हैं।

जहाँ दमन है वहाँ विद्रोह भी होता है। साहित्य में इसकी स्पष्ट झलक है। यह विद्रोह उपनिवेशवादी शक्तियों के खिलाफ भी हुआ है। स्वतंत्रता पूर्व एवं बाद के हिन्दी उपन्यासों में हम इसी विद्रोह भावना को देख सकते हैं। आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में उपनिवेशवाद के विरुद्ध का प्रतिरोध बखूबी ढंग से हुआ है। इसका विस्तृत अध्ययन एवं विश्लेषण करना मेरा उद्धेश्य है । इसलिए शोध केलिए मैं ने **"आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में औपनिवेशिक शक्तियों का प्रतिरोध (1950-80)"** शीर्षक विषय को चुना है। इस अध्ययन केलिए मैं ने भगवतीचरण

वर्म के भूले बिसरे चित्र, सीधी सच्ची बातें, यशपाल के झूठा सच (भाग-1), मेरी तेरी उसकी बात, नागार्जुन के बलचनमा, बाबा बटेश्वरनाथ, अमृतराय के बीज, फणीश्वर नाथ रेणु के मैला अँचल, देवेन्द्र सत्यार्थी के ब्रह्मपुत्र, गिरिराज किशोर के जुगलबंदी, गुलशेर खाँ शानी के कालाजल, भीष्म साहनी के तमस, कृष्ण सोबती के ज़िन्दगीनामा आदि उपन्यासों को चुना है । इसी के साथ विशेष अध्ययन के रूप में प्रेमचंद के 'रंगभूमि (1936)' को भी लिया है।

विषय के सभी पहलुओं को पकड पाने केलिए मैं ने विषय को पाँच अध्यायों में विभाजित किया है :-

पहला अध्याय : औपनिवेशिक शक्तियों का प्रवेश एवं प्रतिष्ठा : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण
दूसरा अध्याय : राजनीतिक दासता का प्रतिरोध
तीसरा अध्याय : सांप्रदायिक शोषण और प्रतिरोध
चौधा अध्याय : आर्थिक शोषण और प्रतिरोध
पाँचवाँ अध्याय : सांस्कृतिक संकट और प्रतिरोध

और अंत में उपसंहार।

पहला अध्याय है **'औपनिवेशिक शक्तियों का प्रवेश एवं प्रतिष्ठा : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण'** । इस अध्याय में भारत के उपनिवेश बनने के इतिहास को परखने का प्रयास मैं ने किया है । 'उपनिवेश' एवं 'उपनिवेशवाद' शब्द की व्याख्या करते हुए आर्यों के आगमन से लेकर अरबों, मुगलों तथा यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियों के आगमन, साम्राज्य स्थापना तथा शोषणों का इतिहास ढूंढने की कोशिश इसमें मैं ने की है। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन तथा

शोषणों की खोज करने के साथ-साथ भारत में अंग्रेज़ी राज और उसके परिणामों का भी अध्ययन मैं ने इस अध्याय में किया है।

दूसरा अध्याय है **'राजनीतिक दासता का प्रतिरोध'**। इसमें अंग्रेज़ों की उपनिवेशवादी शासन व्यवस्था के तहत हुई निर्मम शोषणनीतियों के तथा उसके विरुद्ध उठे औपन्यासिक प्रतिरोधों को ढूँढने का प्रयास किया गया है। पराधीन भारत की रजनीतिक दासता और उसके विरुद्ध हुए विद्रोहों की अभिव्यक्ति पञ्चासोत्तर हिन्दी उपन्यासों में है। उपनिवेशियों के कूटनीति युक्त शासन और दमन ने देश की जनता के आत्मबल को झकझोर कर डाला था। जहाँ दमन है वहाँ विद्रोह भी होता है। अंग्रेज़ों के दमन एवं पीडा से असंपृक्त लोगों में आए विद्रोही स्वर को शब्दबद्ध करने का महान कार्य उपनिवेश प्रतिरोधी उपन्यासकारों ने किया था। इसका विस्तृत अध्ययन इस अध्याय में है।

तीसरा अध्याय है **'सांप्रदायिक शोषण और प्रतिरोध'**। इस अध्याय में मैं ने साम्राज्यवादी भेदनीति के परिणामस्वरूप देश में पनपी या पनपाई सांप्रादायिकता पर विचार किया है। उपनिवेशवादियों की 'फूट डालो और रज्य करो' वाली नीति के कारण भारत में धर्मों के बीच दूरी बढ गयी और आपस में झगडा आरंभ हुआ। इससे देश की दुर्गति की शुरूआत हुई। अधुनिक हिन्दी उपन्यास ने इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति की थी। भारत में हुए सांप्रदायिक उन्माद और उसके पीछे पडे साम्राज्यवादियों की साजिशों का पर्दाफाश उपन्यासकारों ने किया है उसको पकडने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है।

चौथा अध्याय है **'आर्थिक शोषण और प्रतिरोध'**। इसमें औपनिशिक काल के आर्थिक शोषण और उसके विरुद्ध हुए साहित्यिक प्रतिरोध की चर्चा की गयी है। उपनिवेश बनाने का मूल उद्देश्य आर्थिक शोषण है। अंग्रेज़ों ने भारत का खूब शोषण किया था। देशी रचानाकारों ने विशेषत: उपन्यासकारों ने इसका विरोध भी समय समय पर किया था। देश के आर्थिक शोषण के विभिन्न पहलुओं का चित्रण कर उसके प्रति जन जागरण उपनिवेश प्रतिरोधी उपन्यासों का उद्देश था। भारत की अर्थव्यवस्था को बरकरार रखने की प्रेरणा ये उपन्यास हमें देते हैं।

पाँचवाँ अध्याय है **'सांस्कृतिक संकट और प्रतिरोध'** । इसमें उपनिवेशी शासन के परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति एवं जीवन में पडे प्रभाव को विश्लेषित करने का प्रयास हुआ है । हिन्दी उपन्यास के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य का अध्ययन करना तथा उपनिवेशवादी सांस्कृतिक शोषणों के विरुद्ध हुए उसके साहित्यिक प्रतिरोध को परखना इस अध्याय का उद्देश्य रहा है । अधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों ने अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को बनाए रखने की कडी मेहनत की थी । उनका यह प्रयास एक प्रकार का सशक्तीकरण है जिसमें देश का भविष्य का सुरक्षित है ।

अंत में 'उपसंहार' है । इसमें अध्ययन की उपलब्धियों को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के आदरणीय सेवानिवृत्त आचार्य डॉ.पी.ए.शमीम अलियार जी के निदेशन तथा निरीक्षण में संपन्न हुआ है । उनकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन, बहुमूल्य निदेशन, विषय संबन्धी गहरा ज्ञान, मेरी शंकापूर्ति कर देने की उनके मन की विशालता और विशिष्ट व्यक्तित्व ने ही मुझे यहाँ तक पहूँचाया है । मेरी कमियों को जानते हुए इस शोध कार्य की संपूर्ति केलिए वे हमेशा अच्छी राह दिखाती रही हैं । उसकेलिए मैं कृतज्ञ हूँ । उनका असीम प्यार, माँ जैसा व्यवहार तथा साहित्य एवं जीवन संबन्धी ज्ञान ने मेरी जीवन दृष्टि को आलोकित किया है । उसकेलिए मैं तहे दिल से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ।

मेरे इस शोध का विषय विशेषज्ञ विभाग के प्रोफसर एवं मानवीय संकाय के अध्यक्ष डॉ. एन. मोहनन है । विषय चयन से लेकर शोध की पूर्ति तक उनके बहुमूल्य निदेशों को मैं ने आत्मसात किया है और अपने शोध में समावेशित करने की कोशिश भी की है । इस शोध की प्रगति एवं पूर्ति केलिए उनकी ओर से जो ऊर्जा मिली हैं इसकेलिए मैं उनके प्रति आभार हूँ ।

विभाग के अध्यक्ष प्रो.डॉ. एन.जी. देवकी जी ने इस शोध कार्य की पूर्ति केलिए काफी मदद की है । उनके प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ ।

विभाग के अन्य गुरुजनों की ओर से भी अवश्यक बहुमूल्य मदद मिली हैं इसलिए उनके प्रति भी मैं आभार प्रकट करता हूँ।

इस शोध कार्य केलिए संपूर्ण सहयोग एवं पूरी सुविधा विभाग के पुस्तकालय से मिला है । अत: पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति विशेषत: बालकृष्णन जी के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

कार्यालय के कर्मचारियों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ कि उनकी ओर से आवश्यक मदद समय-समय पर मिली है।

मेरे मित्र एवं बडे भाई मनोज, सजी कुरुप, राजन आदि के प्रति भी मैं आभार हूँ कि उनकी प्रेरणा एवं सहयोग इस शोध कार्य केलिए मिला है।

मेरे प्रिय भाई दीपक, संजीव,अनीष, जॉयस, मनीष, गिरीष, अनीष शंकर आदि ने मेरे शोध कार्य केलिए पूरा सहयोग दिया है इसलिए उनके प्रति मैं आभार हूँ।

मेरे शुभचिंतक एवं प्रिय मित्र बिबिन, रूपेष, आशामोल, सौम्या, मेर्ली, दिव्या तथा मेरे प्रिय भाई डॉ.टी.के अनीशकुमार के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ कि उनकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मेरे शोध केलिए मिला है।

मेरे प्रिय भाई श्याम, महेष, विष्णु, शरत, फ्रेडी और प्रिय बहिन विजी, लैजा, टीना आदि से भी मैं आभार हूँ।

जी.यू.पी.स्कूल शशिमला, जी.एच.एस चेनाड के मेरे प्रिय अध्यापक बंधुओं के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ कि उनके सहयोग एवं प्रेरणा भी इस शोध कार्य की पूर्ति केलिए उपयोगी सिद्ध हुआ है।

इस शोध प्रबंध के टंकन तथा पृष्ठ सज्जा में प्रिय भाई अनीश शंकर, गिरीश कुमार और मुहम्मद अलि जी का योगदान उल्लेखनीय है। उसकेलिए उनके प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ।

आखिर मैं अपने आदरणीय पिता, बंधु जनों तथा बहन प्रशांति और बहनोई सैजु सभी के प्रति आभार प्रकट कर रहा हूँ कि वे प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप

से मुझे सदा प्रोत्साहन देते रहे हैं । अपनी स्वर्गीय माँ की भी इस वक्त मैं याद करता हूँ ।

मैं अपना यह शोध प्रबंध विद्वानों के सामने सविनय प्रस्तुत कर रहा हूँ । इसकी कमियों एवं गलतियों केलिए क्षमाप्रार्थी हूँ ।

सविनय,

प्रदीप.सी.पी

हिन्दी विभाग

कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय

कोच्चिन-22

विषयसूचि

अध्याय एक : औपनिवेशिक शक्तियों का प्रवेश एवं प्रतिष्ठा :
एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण **1 - 45**

आर्यों का आगमन - पारसियन आक्रमण - सिकन्दर का आक्रमण - पश्चिमोत्तर भारत के विदेशी शासन - पार्थियन आक्रमण - कुषाणों का आक्रमण - भारत में औपनिवेशिक शक्तियों का प्रवेश - अरबों का आगमन - अरबों का सिन्ध आक्रमण - मुहम्मद गस्नी का आक्रमण - मुहम्मद गोरी का भारत आक्रमण - यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियों का आगमन - भारत में अंग्रेज़ी राज - उपनिवेश पूर्व एवं बाद के भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थिति - औपनिवेशिक ताकतों का प्रतिरोध - 1857 का विद्रोह अथवा प्रथम स्वतंत्रता संग्राम - भारतीय जनजागरण और विभिन्न आन्दोलन - निष्कर्ष।

अध्याय दो : राजनीतिक दासता का प्रतिरोध **46 - 103**

उपनिवेशकालीन भारत की राजनीतिक पृष्ठभूमि - साहित्यिक गतिविधियँ - उपनिवेशी राजनीतिक शोषण और औपन्यासिक प्रतिरोध - राजनीतिक शोषण के विभिन्न आयाम - असहयोग आन्दोलन बनाम उपनिवेश प्रतिरोध - असहयोग आन्दोलन की योजनाएँ - नमक कर नीति और प्रतिरोध - रौलट एक्ट और प्रतिरोध - सत्ता के प्रतिनिधियों का बहिष्कार - क. साइमन कम्मीशन बहिष्कार - ख. प्रिंस आफ वेल्स का बहिष्कार – निष्कर्ष।

अध्याय तीन : सांप्रदायिक शोषण और प्रतिरोध 104 -132

सांप्रदायिकता का बीजांकुर - उपन्यासों में सांप्रदायिक शोषण और विद्रोह - तमस - झूठा सच- 'फूट डालो और राज्य करो' वाली नीति - भूले बिसरे चित्र - गांधीवादी प्रतिरोध - मुस्लिम लीग और सांप्रदायिक समस्या - सीधी सच्ची बातें - निष्कर्ष।

अध्याय चार : आर्थिक शोषण और प्रतिरोध 133-182

औपनिवेशिक भारत की आर्थिक स्थिति - स्वदेशी एवं बहिष्कार आन्दोलन - अकाल और ब्लैक मार्केट - लगान बंदी आन्दोलन - औद्योगीकरण और पूँजीवाद – पूँजीवाद - ज़मीन्दारों का शोषण और विद्रोह - भारतीय किसानों का शोषण और विद्रोह - बलपूर्वक खेती – निष्कर्ष।

अध्याय पाँच : सांस्कृतिक संकट और प्रतिरोध 183-222

स्वतंत्रतापूर्व सांस्कृतिक परिवेश - नए मध्यवर्ग और सांस्कृतिक मूल्य ह्रास - विभिन्न नवोत्थान कार्यक्रम - ब्रह्मसमाज – आर्यसमाज - थियोसोफिकल सोसाइटी - पाश्चात्य शिक्षा एवं भाषा नीति - स्वदेशी एवं बहिष्कार रूपी सांस्कृतिक प्रतिरोध - नारी शोषण और जागरण - नारी शोषण के विभिन्न आयाम - क.धर्म के नाम पर नारी शोषण - ख.जाति के नाम पर नारी शोषण - राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रीय जागरण – निष्कर्ष।

उपसंहार 223-228

संदर्भ ग्रंथ सूचि 229-242

अध्याय एक

औपनिवेशिक शक्तियों का प्रवेश एवं प्रतिष्ठा : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

जब कोई देश या प्रदेश विशेष किसी बाहरी शक्ति के अधीन शासित होता है तब वह देश एक उपनिवेश (Colony) बन जाता है। 'उपनिवेश' अंगेज़ी शब्द 'कॉलनी' का पर्याय है और की अर्थों में प्रयुक्त होता है। "उपनिवेश केलिए स्वदेश छोडकर अपर स्थानों में वास स्थापन, कृषि वाणिज्यादि करने केलिए किसी दूसरे देश में लोगों के साथ रहना "[1] आदि कई परिभाषाएँ दी गयी हैं। बृहत् अंग्रेज़ी हिन्दी कोश के अनुसार-"यदि किसी राज्य के निवासी अन्य देश में बस्ती बनाकर रहते हैं तो उसे कॉलनी अर्थात् उपनिवेश कहते हैं।"[2] उसी प्रकार किसी एक व्यवसाय या पेशे के व्यक्तियों केलिए बनाए गए स्थान भी कॉलनी कहलाते हैं, जैसे कैनाल कॉलनी, लेबर कॉलनी आदि। 'उपनिवेश किसी नए स्थानों में बाहरी लोगों की बस्ती (जिनका अपनी मातृभूमि से राजनीतिक संबन्ध बना रहे), प्रवासियों द्वारा स्थापित स्वतंत्र नगर, अधिराज्य, साम्राज्य, पराधीन देश' आदि अर्थों में भी प्रयुक्त होते हैं।

राजनीति में 'उपनिवेश' शब्द का अपना रूढी अर्थ है। इसका आशय उनदेशों से लिया जाता है जिनपर किसी बाहरी देश ने अधिकार कर लिया है और वह अधिकृत देश के साधनों का अपने साम्राज्यवादी हितों केलिए दोहन

---

[1] नगेन्द्रनाथ वसु(सं) : हिन्दी विश्वकोश, बि.आर. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, दिल्ली-पृ-68

[2] डॉ.हरदेव बाहरी : बृहत् अंग्रेज़ी हिन्दी कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वरणासी

करता है। इस प्रकार जब एक देश उपनिवेश बनता है तब वह देश पूर्ण रूप से उस बाहरी शक्ति के द्वारा नियंत्रित एक अधीनस्थ प्रदेश बन जाता है । उपनिवेश बने देशों को प्रादेशिक शासन केलिए भी अधिकार न देकर उसका शासन शासक देश अपने कब्जे में करलेते हैं।

उपनिवेश शब्द से 'उपनिवेशवाद' का उद्भव हुआ । उपनिवेशवाद अंग्रेज़ी के 'कोलोनियलिसम' (Colonialism) का हिन्दी अनुवाद है। न्यू स्टांडार्ड एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार-"किसी प्रदेशविशेष और उसके लोगों का शासन किसी अन्य देश के द्वारा होता है उसे उपनिवेशवाद कहते है।"[1] शाब्दिक अर्थ में उपनिवेशवाद को 'उपनिवेश स्थापन की नीति' 'उपनिवेश निवासियों की रीति' के रूप में हम लेते हैं । भारतीय संस्कृति के- "किसी विदेश शक्ति द्वारा अन्य देश पर छल-बल से राजनीतिक आधिपत्य स्थापित करके उसके साधनों का अपने हित केलिए शोषण उपनिवेशवाद कहलाते हैं।"[2] वेब्स्टेर्स डिक्शनरी के अनुसार-"उपनिवेशवाद किसी देश की ऐसी नीतियाँ है जो अपने अधिकार को किसी अन्य देश के तथा वहाँ के लोगों के ऊपर विन्यस्थ करने या स्थिर रखने का अवसर खोजता रहता है।"[3] इस दृष्टि से देखें तो की दूसरों की भूमि एवं वहां की संपत्ति पर आधिपत्य स्थापित करना और उस पर नियंत्रण करना उपनिवेशवाद का मूल उअद्देश्य है। उपनिवेशों पर

---

[1] The rule of an area and its people by another country is called colonialism-New Standard Encyclopedia vol-6 p-458

[2] भारतीय संस्कृति कोश-पृ-141-142

[3] The colonialism is a policy of nation seeking to extend or retain its authority over the peoples or territories – Webster's Dictionary

आधिपत्य करने की इस प्रक्रिया को साम्राज्यवाद कहते हैं । उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद का ही नया रूप है । देशों को उपनिवेशों के रूप में पराधीन रखने की नीति को साम्राज्यवाद (Imperialism) कहते है ।

उपनिवेश बनाने की शुरूआत पुराने ज़माने से हुई थी । औद्योगिक क्रांति के बाद प्राप्त शक्ति के सहारे यूरोप के देशों ने एशिया, आफ्रिका और अमेरिका में ऐसे अनेक उपनिवेश स्थापित किए । 19 वीं शती में आकर उपनिवेशवाद ने अपना भीषण रूप धारण किया । उपनिवेश विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति केलिए बना दिया जाता है, जैसे आबादी की वृद्धि को रोकने केलिए, गरीबी को हटाने केलिए, नए बाज़ार के सृजन केलिए, कच्चे मालों के नवीन स्रोतों की पुष्टि केलिए, सैनिक अड्डा स्थापित करने केलिए आदि । लक्ष्य कुछ भी हो उपनिवेशवादी मानसिकता के पीछे शक्तिशाली देशों की साम्राज्यवादी शोषण नीति एवं दमन चक्र छिपे हुए हैं । भारत जैसी तीसरी दुनिया के लोगों को इसका शिकार बनना पडता है ।

उपनिवेश मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं;

1. आवास उपनिवेश (Settlement Colonies)

2. प्रशासनिक उपनिवेश (Administrative Colonies)

आवास उपनिवेश में आक्रमणकारी किसी देश पर आक्रमण करके अपना साम्राज्य स्थापित करने के बाद वहाँ बस जाते है और वहाँ की जनता से धुलमिल भी । लेकिन प्रशासनिक उनिवेश में ऐसा नहीं होता । वहाँ काशासन साम्राज्यवादियों के बाहरी नियंत्रण से चलता है । वे वहाँ के स्थाई निवासी नहीं

बनते । उनका लक्ष्य वहाम का संपूर्ण शोषण है । भारत में ये दोनों प्रकार के उपनिवेश कायम था ।

पहले बताया जा चुका है कि भारत वर्ष में उपनिवेश स्थापित करने की प्रक्रिया पुराने ज़माने से हुई है । उनमें आर्य, हूण, शक आदि प्रमुख हैं । यहाँ आकर इन्होंने भारत को अपना उपनिवेश बनाया । ये सब बाहर से आए हुए थे । लेकिन धीरे-धीरे वे यहाँ के निवासी बने । दूसरे देशवासी समय समय पर अपने साम्राज्य विस्तार हेतु पडोसी देशों के ऊपर आक्रमण करते रहते थे । भारत को भी पुराने ज़माने से इसका शिकार बनना पडा था । बाहरी शक्तियों ने भारत के कमज़ोर स्थानों से होकर उत्तर भारत के कई स्थानों को अपने कब्जे में कर लिया । यहाँ की अपार संपत्ति एवं भौगोलिक विशेषताओं ने उन्हें यहाँ के निवासी बनने केलिए प्रेरित किया । क्रमश: भारत विदेशी शक्तियों का उपनिवेश बनने लगा । इस दृष्टि से देखें तो उपनिवेशवाद की शुरूआत आर्यों के आगमन से मानी जा सकती है ।

आर्यों का आगमन

'आर्य' संस्कृत भाषा का शब्द है । इसका अर्थ होता है 'श्रेष्ठ' अथवा अच्छे कुल में उत्पन्न । परंतु व्यापक अर्थ में आर्य एक जाति का नाम है जिनके रूप, रंग, आकृति तथा शरीर का गठन विशेष प्रकार का होता है । ठंठी जलवायु में रहने तथा पौष्ठिक पथार्थों के खाने के कारण ये बडे बलिष्ठ, वीर तथा साहसी होते थे । आर्य अपने जीवन के आरंभिक काल में बडे पर्यटनशील थे । वे एक

स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करते थे । ये लोग पशुओं को पालते थे और कृषि करना भी जानते थे । इसी के साथ वे बडे युद्धप्रिय होते थे और हथियारों को बडी चतुरता से चलाते थे । इस प्रकार विभिन्न रूपों में आर्य भारत के मूल निवासियों से बिलकुल भिन्न थे ।

भारत में आर्यों का आगमन 1500 ई.पूर्व के समय में माना जाता है । इस समय यहां सिन्धु घाटि सभ्यता (Indus valley Civilization) कायम थी । सिन्धू घाटि सभ्यता का ह्रास ई.पूर्व दूसरी सहस्राब्दी में हुआ और जब आर्यों ने भारत के उत्तर पश्चिम में प्रवेश किया तब तक लगभग पूरी तरह विघटित हो चुकी थी । आर्य कहाँ से आए थे , इनके मूल स्थान कहाँ थे इसके संबन्ध में विभिन्न मत प्रचलित हैं । "भाषा तथा संस्कृति की समानता के आधार पर कुछ विद्वानों ने यूरोप को आर्यों का आदि देश बतलाया है । जर्मन विद्वान मैक्स मूलर ने मध्य एशिया को आर्यों का आदि देश बतलाया है । लोकमान्य तिलक के विचार में उत्तर ध्रुव प्रदेश आर्यों का आदि देश था ।"[1] जो भी हो आर्य बाहर से आए लोग थे । जनसंख्या में वृद्धि हो जाने तथा आवश्यकताओं की पूर्ति न होने के कारण उन्हें अपना आदि देश त्याग देना पडा और नए निवास स्थान खोजना पडा । रोमिला थापर के अनुसार-"आर्य या इंडो आर्य जो कि इंडो यूरोपीयों के वंशज थे, कुछ समय तक बैक्ट्रिया में और उत्तरी इरानी पठार पर रहे, परंतु 1500 ई. पूर्व के आसपास वे हिन्दुकुश के दर्रे से होकर उत्तरी भारत में प्रविष्ठ हुए ।"[2]

---

[1] श्रीनेत्र पाण्डेय : भारतवर्ष का इतिहास, पृ-51-52

[2] रोमिला थापर : भारत का इतिहास, पृ-20

आर्यों ने अपनी जन्म भूमि को छोडकर उपजाऊ भूमि की तलाश में अग्रसर हुए । इसकेलिए उसे हर एक देश के लोगों से संघर्ष करना पडा । वे अपने मूल स्थान त्याग कर तीन प्रमुख शाखाओं में विभक्त होकर विभिन्न स्थानों की ओर बढने लगे । "उनकी एक शाखा पश्चिम की ओर बढी और धीरे-धीरे वह यूनान में पहूँच गयी । कालांतर में ये यूनानी आर्य कहलाने लगे और यहीं से वे लोग यूरोप सेअन्य देशों में फैल गए । दूसरी शाखा पर्यटन करती हुई ईरान पहूँची जिसे फारस भी कहते हैं ये लोग ईरानी आर्य कहलाए । तीसरी शाखा का प्रसार भारत वर्ष में हुआ ।"[1]

आर्यों के आगमन काल को वैदिक काल भी कहते है । क्योंकि इसी काल में ही वेदों का सृजन हुआ था । हमारा प्राचीनतम साहित्यिक स्रोत ऋग्वेद है, जिसके कुछ भागों की रचना 1000 ई. पूर्व से पहले हुई थी । शेष वैदिक साहित्य सामवेद, यजुर्वेद और अथर्व वेद की रचना बाद में हुई । आर्यों के जीवन और संस्थाओं के ऐतिहासिक पुनर्निर्माण का आधार यही वैदिक साहित्य है । यह माना जाता है कि ऋग्वेद के समय में आर्य दिल्ले और पंजाब में फैल चुके थे । उन्होंने अपने कायिक और शस्त्रबल से समीपस्थ स्थानों पर आक्रमण करके कब्जा करना शुरू किया था । वनों को साफ करने केलिए पत्थर, कांसे और तांबे की कुल्हाडियों का प्रयोग किया जाता था । लोहे का बढिया औजारों के कारण उनके विस्तार की गति बढी तथा इसी कारण खेती का कार्य भी आसान हो गया ।

---

[1] श्रीनेत्र पाण्डे : भारतवर्ष का संपूर्ण इतिहास –पृ-54

आर्यों को भारत में अपना राज्य कायम रखने केलिए उत्तर भारत के मूल निवासियों से संघर्ष करना था। वे अनार्य थे उनको आर्य लोग हेय समझते थे। इन अनार्य जातियों को 'पणि', 'दास' कहा गया है। आगे चलकर दास शब्द का प्रयोग गुलाम केलिए किए जाने लगा। दास क्षुद्र समझते थे, क्योंकि उनका रंग काला होता था और उनका नाक नक्शा चपटे होते थे। आर्यों की त्वचा गोरी थी और उनके नाक नक्शा स्पष्ट एवं सुन्दर थे। इस प्रकार भारत वासियों को अपने से तुच्छ मानने के कारण आर्यों ने उनके ऊपर बाहुबल और अस्त्रबल से आक्रमण करके उनकी भूमि एवं संपत्ति हडप ली। दूसरों की भूमि एवं वहां की संपत्ति पर अपना आधिपत्य स्थापित करना और उसपर नियंत्रण रखने को उपनिवेशवाद कहते है। इस दृष्टि से देखें तो आर्यों का आगमन एवं यहां पर बसना पहला उपनिवेशवाद माना जा सकता है।

पारसियन आक्रमण

भारत पर बाहरी शक्तियों के आक्रमण के विभिन्न कारणों में एक है यहां के राजाओं का आपसी फूट एवं साम्राज्यों के बीच का युद्ध। "एक ओर मगध को केन्द्र बनाकर राष्ट्रीय एकता की कोशिश शुरू हुआ तो दूसरी ओर अशिक्षित एवं दुर्बल होती रही भारत की उत्तर पश्चिम सीमाओं ने विदेशी आक्रमणकारियों को भारत की ओर आकर्षित किया था। इनमें पहला आक्रमण पारसियों का था। पौराणिक काल से भारत और पेर्ष्या के बीच संबन्ध था। अकिमीनिया राजवंश के उदय के पूर्व में ही भारत और पार्सिया के बीच का संबन्ध रहता था। इस

समय पारसियन साम्राज्य भारत के सिन्ध और गांधार तक व्याप्त हो चुका था। अकिमीनिया राजवंश के अंतिम सम्राट दारियस ने तीन भारतीय सैनिकों को साथ लेकर सिकन्दर के साथ युद्ध किया। इस युद्ध में पारसियों की पराजय हुई और पारसियन साम्राज्य का पतन हुआ।"[1] राष्ट्रीय स्तर पर पारसियों के आक्रमण ने भारत पर कोई नुक्सान नहीं पहूँचाया। लेकिन इससे पाश्चात्य देशों से भारत का संबन्ध बढने लगा। पारसियों के माध्यम से भारत के संबन्ध में यवन लोगों को जानकारी मिली थी। इसकी वजह से कई दृष्टियों से समृद्ध एवं संपन्न भारत के प्रति यवनों का आकर्षण होने लगा। बाद में यह आकर्षण भारत के ऊपर सिकन्दर के आक्रमण केलिए कारण बना।

सिकन्दर का आक्रमण

ई.पूर्व चौथा सती में नंद वंश के नेतृत्व में मगध साम्राज्य का उदय होने के साथ ही भारत के उत्तर पश्चिम भाग में पारसियों का आधिपत्य धीरे-धीरे कमज़ोर होने लगा था। वहाँ पर कई छोटे-छोटे राज्यों का आविर्भाव हुआ। इन राज्यों के बीच संघर्ष भी होते रहे। इस अवसर में भारत पर सिकन्दर का आक्रमण हुआ। "मासिडोनिया के राजा फिलिप के पुत्र एवं प्रसिद्ध ग्रीक चिंतक अरस्तु के शिष्य सिकन्दर ई.पूर्व 336 में मासिडोनिया के राजा बना। सिकन्दर एक महान योद्धा, बुद्धिमान सम्राट एवं आदर्श साहसिक भी थे। मासिडोनिया साम्राज्य पर अपना आधिकार स्थापित करने के बाद ई.पूर्व 334 में वे

[1] K. Kunjipalaki / Muhammad ali : Indian History, P-53

पारसियन साम्राज्य को अपने अधीन में लाए । चर वर्ष की अवधि में उन्होंने पारसिया, ईजिप्त, बाबिलोनिया और सिरियाको अपने कब्जे में कर लिया । इसी के साथ अकिमीनियन सम्राट 'दारियस तीन ' को भी प्राजित किया । पारसियन साम्राज्य के दावेदार के रूप में कार्यरत भारत के सात्रपियों को अपने कब्जे में लाने की तीव्र इच्छा भी सिकन्दर को भारत पर आक्रमण करने केलिए कारण बनी ।"[1] इस प्रकार ई.पूर्व 327 में सिकन्दर ने हिन्दुकुश पर्वतों को पार करके भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित किया । उस समय के देशी राजाओं ने अपने साम्राज्यों को वीर सिकन्दर के सामने समर्पित कर अपनी पराजय स्वीकार की । धीरे-धीरे उत्तर भारत के कई स्थान सिकन्दर के अधीन में आकर शासित होने लगे । भारत पर आक्रमण किए हुए विदेशी आक्रमणकारियों में सिकन्दर का स्थान उल्लेखनीय है ।

यद्यपि सिकन्दर का आक्रमण भारतीय इतिहास में उतना प्रमुख स्थान नहीं रखता तो भी वह पूर्ण रूप से विस्मृत नहीं कर सकता । क्योंकि उनकायह आक्रमण भारत की ओर नया मार्ग खोलने में महत्वपूर्ण योगदान दिया । इसके परिणामस्वरूप भारत और पश्चिम देशों के बीच व्यापार एवं संस्कृति के क्षेत्र में नया संबन्ध होने लगे । एक ओर सिकन्दर का आक्रमण भारत के छोटे-छोटे राजाओं के पराजय एवं साम्राज्य नाश का कारण बना तो दूसरी ओर राष्ट्रीय स्तर पर एक नयी जागृति केलिए यह आक्रमण आधार बना । इससे सजग होकर चन्द्र गुप्त मौर्य के नेतृत्व में एक ऐसे संयुक्त साम्राज्य की स्थापना भी हुई । बाद

---

[1] के कुंजिपलक्कि/ मुहम्मद अलि : भारत का इतिहास, पृ-58

में उन्होंने विदेशियों के अधीन में रहे स्थानों को छोडकर अपने महान मौर्य साम्राज्य की नीव डाली।

पश्चिमोत्तर भारत के विदेशी शासन

ई.पू. तीसरी शती में मौर्य साम्राज्य के पतन और एक सुव्यवस्थित शासन के अभाव ने भारत के उत्तर पश्चिम प्रदेशों में फिर निरंतर विदेशी आक्रमणों को आमंत्रित किया। इसमें इंडो ग्रीक या इंडो बाक्ट्रियन, शक, कुशान और हूण प्रमुख थे। इनमें इंडो ग्रीक के लोगों ने ई.पू. दूसरी शती में, शक ने ई.पू. पहली शती में और कुशान ने ईसा के बाद पहली शती में भारत के उत्तर पश्चिम स्थानों में अधिकार जमाया था।

बाक्ट्रिया सिकन्दर के ज़माने का एक राज्य था। "ईसा पूर्व 206 में युति दिमोस के नेतृत्व में बाक्ट्रिया स्वतंत्र हो गया। उनके बेटे दमेत्रयस ने भारत पर आक्रमण किया और पंजाब एवं सिन्ध को अपने अधीन में लाया। शकाला नामक स्थान को केन्द्र बनाकर उन्हों ने जिस साम्राज्य का निर्माण किया था उनमें बाक्ट्रिया, तुर्किस्थान, बलूचिस्तान, अफ्गानिस्तान आदि प्रदेश शामिल थे। बाद में दमेत्रयस के जामाता मेनांडेर ने गान्धार, पंजाब, सिंध, मधुरा आदि प्रदेशों को शामिल करके एक नए साम्राज्य की स्थापना की।"[1] इसी के साथ यूक्रत्तिदीस, हेलियोक्लिस और हेर्म्यूस नामक कई यवन राजाओं ने उत्तर पश्चिम भारत पर आक्रमण किया था। और अपने साम्राज्य की स्थापना भी की थी।

[1] के.कुंजिपलक्कि/मुहम्मद अलि : भारत का इतिहास, पृ-92

भारत के सीमावर्ती प्रदेशों में लगभग डेढ शती तक यवन लोग वास किया था। यह काल भारत के सांस्कृतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान अलंकृत करनेवाला है। यवनों के आगमन से एक नई संस्कृति के साथा भारत का मिलन हुआ। इससे यहां के रुपए में परिवर्तन आया, कला और संस्कृति में भी कई परिवर्तन आए। एक और बात यह रहा कि पाश्चात्य देशों से भारत का व्यापार संबन्ध बढने लगा। भारत के बीच के संबन्ध में यवनों में भी परिवर्तन आया था। यहां धर्म, चिंतन एवं ज्योति विज्ञान से वे अधिक प्रभावित थे।

शकों का आगमन

शक मध्य एशिया के मूल निवासी थे। 'युवेचि' नामक एक अपरिष्कृत (असंस्कृत) लोगों के द्वारा वे वहां से भगाया गया था। इसलिए शक धीरे-धीरे दक्षिण देशों की ओर बढा। बाक्ट्रिया और बेलन दर्रे से होकर वे अफगानिस्तान पहूँचे। बाद में वहां से धीरे-धीरे सिन्ध एवं पश्चिम भारत में व्याप्त होने लगे। 'उनके द्वारा अधीनस्त प्रदेश 'शक द्वीप', 'सीतिया' आदि नामों से जाना जाता है।' श्रीनेत्र पाण्देय के अनुसार "शकों की एक पर्यटनशील जाति थी। इन लोगों ने कुछ समय इधर-उधर भटकने के उपरांत अंत में कान्दहार तथा बलूचिस्तान से होकर बेलन दर्रे से सिन्ध के निचले प्रदेश में प्रवेश किया और वहीं पर बस गए। इसी से इस प्रदेश का नाम शकद्वीप पड गया। इसी को शकों ने अपना आधार बनाया और यहीं से वे भारत के विभिन्न भागों में फैला।"[1]

[1] श्रीनेत्र पाण्डेय : भारत का संपूर्ण इतिहास, पं-204

सिन्ध पर अपना सत्ता स्थापित करने के उपरांत शकों ने धीरे-धीरे अन्य प्रदेशों पर भी आक्रमण किया । इन प्रदेशों में काठियावाड, सौरष्ट्र, उज्जयिनी, मथुरा आदि प्रमुख हैं । मथुरा से वे उत्तर पश्चिम की ओर और सिन्धु से नदी मार्ग द्वारा उत्तर पूर्व की ओर बढे थे । कालांतर में शकों ने पंजाब तथा उसके उसके निकटवर्ती प्रदेश पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया । इस प्रकार भारत के बहुत बडे भाग पर शकों का आधिपत्य स्थापित हो गया ।

शकों ने भारत में क्षात्रपीय शासन व्यवस्था स्थापित की । क्षत्रप लोग प्रांतीय शासक थे और केन्द्रीय सरकार की अधीनता में शासन करते थे । कालांतर में जब गुप्त साम्राज्य का उत्थान हुआ तब वे सभी क्षत्रप गुप्त साम्राज्य में समाविष्ठ हो गए । शकों ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति को स्वीकार कर लिया और भारतीयों से इतना धुल मिल गए कि वे अपने अस्तित्व को खो बैठे । आज कहीं पर उसका नाम निशान नहीं मिलता ।

पार्थियन आक्रमण

शकों के पतन के साथ ही और कुशानों के आगमन के पहले एक शक्ति ने भारत के कुछ स्थानों को अपने कब्जे में कर लिया था जो पार्थियन साम्राज्य के लोगों द्वारा था । "पार्थिया एक प्रदेश का नाम था जो बाक्ट्रिया के पश्चिम में स्थित था । पार्थिया के लोग पार्थियन अथवा पल्लव कहलाते थे । जिस समय शकों ने भारत में अपनी राज संस्था स्थापित की उसी समय पल्लवों ने भी

भारत के पश्चिमोत्तर भाग में अपनी राज संस्था स्थापित की ।"[1] बाद में पश्चिमोत्तर प्रदेशों में पल्लवों, शकों तथा युनानियों की राजसत्ता को समाप्त करने का श्रेय एक नई जाति को हुआ जो कुषाण के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

कुषाणों का आक्रमण

भारत पर हुए विदेशी आक्रमणों में कुषाणों के आक्रमण का प्रमुख स्थान है । "कुषाण लोग यू चि जाति की एक शाखा के थे । ये लोग प्रारंभ में चीन के उत्तरी पश्चिमी प्रांत में निवास करते थे । इन्हों ने बाक्ट्रिया तथा उनके पडोस के प्रदेशों पर आक्रमण करके अपना अधिकार कर लिया । इसी बीच यू चि लोग पाँच शाखाओं में विभक्त थे जिनके अलग अलग नाम थे । इन्हीं में एक था कुषाण । इस शाखा का प्रथम शासक कुजुल कदफिस था । वह बडा ही वीर तथा साहसी शासक था उसने अन्य शाखाओं पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया । और उसका वंश कुषाण कहलाया ।"[2] कुषाण सम्राटों ने शकों और पार्थियों को पराजित कर अपना साम्राज्य विस्तार किया । कदफिस द्वितीय ने काबूल, तक्षशिला, पंजाब, मथुरा आदि पर आक्रमण करके अपने विशाल साम्राज्य की स्तापना की । उसके बाद में आए कनिष्क कुषाण वंश के श्रेष्ठ एवं महान सम्राट माने जाते हैं ।

---

[1] स्रीनेत्र पाण्डेय : भारतवर्ष का संपूर्ण इतिहास, पृ-204,5

[22] श्रीनेत्र पाण्डेय : भारतवर्ष का संपूर्ण इतिहास, पृ-205

कनिष्क एक बहुत बडा विजेता था । सिंहासन पर बैठते ही उसने साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण करना प्रारंभ कर दिया और अपने साम्राज्य के विस्तार में लग गया । सबसे पहले कनिष्क ने कश्मीर पर विजय प्राप्त की और उसे अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर दिया । कश्मीर में कनिष्क ने बहुत से विहारों और नगरों का निर्माण कर्वाया । उसने साकेत और मगध तक आक्रमण किया था और उन पर विजय प्राप्त की थी । उसका साम्राज्य बंगाल तक फैला था । इसी के साथ कांबोज, गान्धार, काहिरा, काबूल तथा अफगानिस्तान के सीमा तक उनका अधिकार था । इस प्रकार कनिष्क साम्राज्य दक्षिण-पश्चिम भारत के भी बहुत बडे भाग में फैला था । वे ऐसे साम्राज्यवादी थे जिन्हों ने अपना पूरा जीवन अपने साम्राज्य विस्तार केलिए लगाया था । उन्होंने शक्लों के क्षत्रपीय शासन व्यवस्था का अनुसरण करके अपना शासन चलाया था । अपने साम्राज्य को क्षत्रप और महाक्षत्रप आदि रूपों में विभाजित कर पुष्पपुर अथवा पेशवार को अपनी राजधानी बनाकर कनिष्क अपने संपूर्ण साम्राज्य का देखपाल करता था । कनिष्क के समय में धर्म, साहित्य, कला और व्यापार आदि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ मिली हैं । कनिष्क का धार्मिक दृष्टिकोण अशोक की भाँति बडा व्यापक था । साहित्य तथा कला में भी जो अभिरुची कनिष्क की थी वह अन्य किसी कुषाण वंशी सम्राट में न थी । वास्तव में कनिष्क की गणना न केवल कुषाण वंश के वरन् भारत के महान सम्राटों में होनी चाहिए । कालांतर में अंतिम सम्राटों की अयोग्यता के कारण धीरे-धीरे कुषाण साम्राज्य के उन्मूलन का प्रयत्न किया और उसमें वे सफल रहे । वास्तव में यह युग विदेशी

सत्ता के विरुद्ध एक प्रबल प्रतिरोध का युग था और यह राष्ट्रीय चेतना के विकास का द्योतक है।

भारत में औपनिवेशिक शक्तियों का प्रवेश

प्राचीन काल से भारत एक संपन्न एवं समृद्ध देश है। प्रकृति ने अपनी असीम गरिमा प्रदान कर भारत को श्रेष्ठ एवं समृद्ध बनाया। यहाँ की अपार धन संपत्ति तथा भौगोलिक विशेषताएँ दूसरे देशों को यहाँ की ओर आकृष्ठ करने का कारण बने हैं। इसलिए भारत की जनता को कई विदेशी शक्तियों के आक्रमण का शिकार बनना पडा है। दूसरे देशों की अपेक्षा यहाँ की जनता शारीरिक बल पर बहुत कमज़ोर थीं। अस्त्र शस्त्रों के प्रयोग में भी लोग उतने कुशल नहीं थी। यह ही नहीं उस समय के देशी राजाओं और शासकों के बीच आपसी फूट एवं दुश्मनी पैदा हो चुकी थी। इसकी वजह से भारत पर ताकतवार देशों के आक्रमण शुरू हो गए। यहीं से भारत की दुर्दशा का आरंभ होता है। उपनिवेशवाद के विभिन्न मोड यहाँ शुरू होता है।

अरबों का आगमन

भारत में उपनिवेशवाद के इतिहास को परखने पर हमें मालूम हो जाएगा कि एक प्रत्यक्ष आक्रमण एवं साम्राज्य स्थापना की दृष्टि से देखें तो अरबों के आगमन की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है। अरब एशिया का एक प्रायद्वीप है। अरब के दक्षिण में हिन्दमहासागर, पश्चिम में काला सागर और

पूर्व में फारस की घाटी स्थित है । अतएव इसके समुद्रतट निवासी अत्यंत प्राचीन काल से बडे कुशल नाविक रहे हैं और विदेशों से व्यापार करने की उनकी बडी रुची रही है । ये लोग बडे साहसी, स्वाभिमानी तथा रणकुशल होते थे । पुराने ज़माने से ही अरबवालों का भारत के साथ संबन्ध स्थापित हो गया था । भारत का पाश्चात्य देशों के साथ व्यापार अरब नाविक द्वारा ही होता था । धीरे-धीरे भारत के साथ अरब वासियों का व्यापारिक संबन्ध बढने लगा और वे भारत के पश्चिमी समुद्रतट पर बसने लगे । उन्हों ने अपने व्यापारिक संबन्ध के साथ इस्लाम धर्म का प्रचार भी किया । इसकी वजह से भारत के बहुत से निम्न जाति के लोगों ने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया । इस प्रकार अरबवालों का भारतीयों के साथ व्यापारिक संबन्ध स्थापित हो गया ।

अरबों के नेता को खलीफा कहा करते थे । सात वीं शताब्दी के मध्य में अरब प्रदेश में खलीफाओं का उत्थान आरंभ हुआ । ये बडे साम्राज्यवादी थे और अपने साम्राज्य विस्तार हेतु पडोसी देशों पर आक्रमण किया करते थे । भारत में आनेवाले व्यापारियों से खलीफा को भारत की अपार संपत्ति का पता लग गया था । उसे यह भी मालूम हो गया कि भारत के लोग मूर्तिपूजक हैं, वे इसके विरुद्ध थे । इसलिए खलीफा की दृष्टि भारत की ओर मुडी ।

“10 वीं शती के अंत में भारत को सबसे पहले एक संयुक्त मुस्लिम देश के विरुद्ध संघर्ष करना पडा था । उस समय की हिन्दू सामाजिक व्यवस्था सुदृढ एवं बाहरी आक्रमणों को उचित जवाब देने में सक्षम थी । लेकिन भारत का राजनैतिक क्षेत्र बहुत दुर्बल था । वहां ‘हमारा भारत’ जैसा एकता बोध नहीं

था । पर भारत में एक ऐसी स्थिति मौजूद थी कि जब कभी बाहर से आक्रमण होता था तब यहाँ के सभी हिन्दू भारतवर्ष को एक ही भूभाग के रूप में मानकर उनके खिलाफ लडते थे । पर धीरे-धीरे ऐसी एकता की भावना लोग भूलने लगे और राज्यों की राजनीतिक व्यवस्था उद्योगपतियों के गन्दे अधीशत्व में दबने लगी । यहाँ के राजा आपस में लडते रहे । इस प्रकार भारत राष्ट्रीयता की दृष्टि से दुर्बल थे ।"[1] इसलिए अरबों के आक्रमणों प्रतिरोध करने में भारतीय असमर्थ बने । इस प्रकार देशी स्वतंत्रता को बनाए रखने केलिए भारतीयों के पास शक्ति न थी । इस स्थिति ने विदेशी आक्रमणों केलिए अनुकूल मंच तैयार किया ।

अरबों का सिन्ध आक्रमण

एशिया के पश्चिम भाग में स्थित एक विस्तृत मरुस्थान है अरब देश । ईसा के बाद छ: वीं शती में मुहम्मद नबी ने इस्लाम धर्म की स्थापना की । मुहम्मद साहब का जन्म 570 ई वीं में और मृत्यू 636 में हुई । सन् 622 ई वीं में उन्होंने मक्का छोडकर मदीने की हिजरत की, जिस वर्ष से इस्लाम का वस्तविक आरंभ माना जाता है । दिनकर जी के मत में- "इस्लाम का उदय अरब में हुआ था । वह ईरानवालों का धर्म नहीं था । किंतु सभ्यता और संस्कृति में ईरानवालों के सामने अरबी योद्धा बर्बर और अर्ध सभ्य थे । अतएव शरीर से तो अरबों ने ईरानवालों को जीत लिया और उन्हें मुसलमान भी बना डाला, किंतु ईरान की ऊँची संस्कृति के सामने ये विजेता पराजित हो गए और बहुत शीघ्र

[1] K.M.Panicker: A Survey of Indian History, p-164-65

यह अवस्था आ गयी कि फारसी भाषा इस्लाम की भाषा और ईरानी संस्कृति मुसलमानों की अपनी संस्कृति हो गयी ।"[1] नबी की मृत्यू के उपरांत आधी शती के अंदर में अरब दुनिया के बहुत बडा भाग अपने अधीन में लाया था । स्पेन से लेकर मंगोल की सीमा तक व्याप्त एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करने के साथ-साथ अरबों ने भारत को भी अपने अधीन में लाने की कोशिश की ।

भारत और अरब देश के साथ का संबन्ध इस्लाम के आविर्भाव से पहले - कायम था । कुशल व्यापारी एवं नाविकों के रूपों में अरबों को आदर के साथ देखते थे और यहाँ के राजा उन्हें उच्च पद देकर सम्मानित भी करते थे । लेकिन अरब इन व्यापारिक संबन्धों से तृप्त नहीं थे । वे धीरे-धीरे भारत पर आक्रमण करने लगे । एक धर्म के रूप में उभरे इस्लाम ने क्रमश: राजनीति में भी अपना पैर जमाया था । "इस्लाम का आरंभ धर्म के रूप में हुआ था, किंतु परिस्थितियों ने घेरकर उसे राजनैतिक रूप भी दे दिया । मुहम्मद साहब को मक्का से मदीना भागना पडा और मदीने में ही यह निश्चित हो गया कि ने धर्म को फैलाने केलिए केवल संगठन बनाने की नहीं तलवार उठाने की भी ज़रूरत है । अरब लोगों की बिखरी हुई शक्तियाँ इस्लाम के अन्दर एक होने लगीं । अरबों की एकता और इस्लाम का प्रचार, ये पर्यायवाची शब्द हो गए । अतएव जो संगठन बना उसमें राजनीति और धर्म दोनों एक स्थल पर आकर मिल गए । यही संगठन अरबी साम्राज्य का केन्द्र बना, जिसके नेता खलीफा कहने लगे ।"[2] शुरू में इनके

---

[1] रामदारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृ-225

[2] रामदारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृ-228

आक्रमणों ने भारत पर ज़्यादा प्रभाव नहीं डाला। फिर भी करीब छ: सौ सालों की एक लंबी अवधि में अरबों का अधीशत्व भारत पर स्थापित होने लगा।

ईसा के बाद 637 में तत्कालीन खलीफाओं ने मुस्लिम सेना को बंबई में भेजा था। लेकिन उन्हें परास्त होकर भागना पडा था। बाद में बोच और सिन्ध के समीपस्त स्थानों में अरबों ने विजय हाज़िल की। वहाँ रहकर उन्होंने सिन्ध पर आक्रमण किया। सिन्ध पर पूर्ण विजय प्राप्त करने केलिए ईराक के गवर्णर ने अपने दामाद मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध के रजपुत्र सम्राट दाहिर को परास्त कर सिन्ध और सीमावर्ती प्रदेशों को खलीफा के साम्राज्य का भाग बनाया। कासिम का यह आक्रमण सांस्कृतिक स्तर पर भारत पर कई बदलाव लाया था।

अरबों के सिन्ध आक्रमण के बाद दोनों संस्कृतियों का आपसी मिलन हुआ। सांस्कृतिक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के आदान प्रदान हुए। इसी के साथ जल और थल मार्ग से व्यापार संबन्ध बढने लगा। इसकी वजह से मुस्लिम साम्राज्य शक्ति की आर्थिक स्थिति में बढोत्तरी हुई। अरबों के इस सिन्ध आक्रमण ने भारतीय समाज व्यवस्था की दुर्बलताओं को पहचानने और आगे के आक्रमण केलिए रास्ता बनाने का काम किया।

भारत सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक संपत्तियों से संपन्न एक देश था। इस समृद्धी से अरबों ने खूब लाभ उठाया। यहाँ के ज्योति विज्ञान, गणित विज्ञान, धर्म, दर्शन आदि से ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने यूरोप के कई स्थानों में उसका प्रचार किया। वास्तुकलाविदों को अपने देश में लाकर मोस्क एवं महलों का निर्माण कराए थे। कई किताबों को उन्होंने अरबी में परिभाशित किया।

संख्याओं का ज्ञान भी अरबों को भारत से ही मिला था। इस प्रकार अरबों ने सिन्ध आक्रमण से भारत की पूरी समृद्धी पर अपना हाथ डाला और लाभ उठाया। इसका असर भारत वासियों के सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय जीवन में धीरे-धीरे पडने लगा।

अरबों के सिन्ध आक्रमण से इस्लाम का आवस उपनिवेश (Settlement Colony) की शुरूआत हुई। वे यहाँ के लोगों से घुल-मिलकर जीने लगे। सिन्ध को अपने अधीन में लाने पर भी भारत में एक सुस्थिर साम्राज्य बनाने केलिए अरब काबिल नही निकले। इसकेलिए समीपस्थ स्थानों का रजपुत्र राजाओं का निरंतर आक्रमण एवं उनकी राष्ट्रीय भावना कारण बना। इसी के साथ-साथ सिन्ध प्रदेशों की भौगोलिक परिस्थिति भी उनकेलिए प्रतिकूल थी। अरब शासकों की सुख एवं भोगलिप्सा भी उनके पतन का एक और कारण के रूप में कहे जाते हैं। अरबों का यह पतन बाद में तुर्कियों के आविर्भाव केलिए अनुकूल निकला। वे एक शक्ति बनकर भारत पर बरस पडे।

मुहम्मद गस्नी का आक्रमण

तुर्कियाँ अरबों के साथ हुए संबन्ध से एक महान जनता के रूप में उभर आए थे। उस समय के खलीफा तुर्कियों को शासन एवं फौजी पदों में उचित स्थान देकर पाला करते थे। 8 वीं शती के अंत में खलीफा के अधिकार क्षीण होने पर तुर्कियों ने अपना सही रूप दिखाया। वे गस्नी में अपना साम्राज्य बनाया और कई शासक उसके सम्राट बने। 977 ई वीं में सबकजीत नामक

शासक ने गस्नी का शासन संभाला और वे वहाँ के हिन्दू राजा जयपाल से युद्ध करने लगे । अंत में जयपाल को पराजय स्वीकार करना पडा । सबकजीत की मृत्यू के बाद उनके पुत्र मुहम्मद ने शासन अपने हाथ में ले लिया । वही व्यक्ति भारतीय इतिहास में 'मुहम्मद गस्नी' नाम से जाने जाते है ।

मुहम्मद गस्नी एक वीर योद्धा एवं सेनानायक थे । भारत के विरुद्ध अपने पिता ने जो आक्रमण शुरू किया था उसे गस्नी ने दुबारा चलाया । 1000 ई वीं को सबसे पहले गस्नी ने भारत पर आक्रमण किया था । धीरे-धीरे वे सीमावर्ती देशों को अपने अधीन में लाया । पेशवार का भी आक्रमण करके उन्हों ने रजपूत राजा जयपाल की राजधानी को अपने कब्जे में कर लिया । उसके बाद नागरकोट किला, तानेश्वरम के प्रसिद्ध वैष्णव मंदिर आदि पर आक्रमण करके सोना, चाँदी आदि अमूल्य द्रव्यों को गस्नी ने लूट लिया । इस प्रकार मधुरा, तानेश्वरम, कन्नौज, ग्वालियर आदि उनके अधीन में आए । अंत में उन्होंने काठियावाड के प्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर पर आक्रमण किया और बहुत सारे द्रव्यों को लेकर चले । इस प्रकार 17 बार भारत को गस्नी के निर्दयी एवं भयानक आक्रमण तथा लूट का शिकार बनना पडा । उनके इस आक्रमण ने भारतवासियों को एक महामारी के समान भयचकित बना दिया था । सदियों पुराने विश्वास एवं संकल्पनाएँ टूटकर गिर पडी । इसकी वजह से देश में दरिद्रता फैलने लगी । इसने लोगों के मन में गहरी चोट पहूँचाई । इसका दुष्परिणाम यह निकला कि देशी हिन्दुओं के मन में इस्लाम के प्रति गहरी घृणा एवं दुश्मनी पैदा हुई ।

मुहम्मद गस्नी का यह आक्रमण तथा लूट अपनी राजधानी को सुदृढ बनाने तथा अपनी सुख सुविधा एवं भोगविलास केलिए था। लेकिन तत्कालीन मुस्लिम जनता ने उनके इन आक्रमणों को धर्म प्रचार हेतु माना। अन्य धर्मों के ध्वंसक अपने धर्म के संरक्षक है ऐसा माननेवाले लोगों ने मुहम्मद को इस्लाम के रक्षक के स्थान में प्रतिष्ठित किया। तब तक शांति एवं समता वाले धर्म के रूप में अन्य धर्मों के साथ मेलजोल से रहे इस्लाम धर्म ने गस्नी की क्रूरता तथा निकृष्टता के कारण लोगों में अप्रीति एवं घृणा पैदा की। सैनिक बल के द्वारा बनाने वाला कृत्रिम साम्राज्य उस शक्ति के अभाव में टूट जाते हैं। गस्नी के साम्राज्य को भी यही हुआ।

मुहम्मद गोरी का भारत आक्रमण

'गोरी' लोग गस्नी एवं हीरत के बीच के 'गोर' नामक स्थान के निवासी थे। अशक्त उत्तराधिकारियों के कारण मुहम्मद गस्नी के बाद गस्नी की शक्ति क्षीण होने लगी। ऐसी स्थिति में गोरी वंश ने गस्नी नगर पर अपना अधिकार स्थापित किया। 1173 ई.वीं में गियासुद्दीन गोरी के राजा बने। उसके भाई शिहाबुद्दीन जो गोरी नाम से जाने जाते थे, गस्नी का राजपाल बना। गोरी भारत में एक सुस्थिर मुस्लिम साम्राज्य बनाने केलिए चाहते थे। वे चाहते थे कि भारत के देशीय अनैक्य एवं गृह युद्ध अपने लक्ष्य तक पहूँचने केलिए उपयोगी सिद्ध होगा। गस्नी के समान भारत पर लूट मार करने केलिए नहीं बल्कि यहाँ पर अपनी सत्ता स्थापित करने केलिए गोरी ने आक्रमण किया।

सबसे पहले 1175 ई.वीं में मुल्तान के इस्माइल लोगों को परास्त करके गोरी ने अपना आक्रमण शुरू किया था । 1178 ई.वीं में उन्होंने गुजरात को अधीन में लाने की कोशिश की । 1179 में पेशवार को अधीन में लाया । उसके बाद पंजाब पर आक्रमण करने लगे । 1181 में लाहौर पर उन्होंने आक्रमण किया, और सियालकोट में उन्होंने एक किला बनाया । पंजाब गोरी के अधीन में आने के बाद उनको पडोसी राज्यों के रजपूत राजाओं के बीच संघर्ष करना पडा । उस समय राजा पृथ्विराज चौहान अन्य हिन्दू राजाओं से मिलकर एक बडी सेना के साथ गोरी के विरुद्ध संघर्ष करने केलिए तैयार थे । इनके बीच के युद्ध में पहले गोरी को पराजय स्वीकार करनी पडी थी फिर भी उन्होंने दुबारा बडे सैन्यों के साथ आकर तारा में पृथ्विराज को पराजित किया । इस युद्ध के बाद गोरी ने अपने प्रिय सैनिक कुतबदीन ऐबक को भारत के विभिन्न प्रांतों का शासक बनाया । धीरे-धीरे मीरठ, दिल्ली और रणथंभोर भी उनके हाथों में आए । 13 वीं शती के पूर्वार्द्ध में ही सिन्धू एवं गंगा के बीच के पूरा का पूरा स्थान मुस्लिम शक्ति के अधीन में आ गया । सबसे पहले मुहम्मद गोरी ने ही भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना की थी । सैनिक आक्रमणों में गस्नी के समान न होने पर भी स्थानीय शासन चलाने में वे निपुण थे । इसी के साथ अधीनस्थ प्रदेश के लोगों के हित को भी वे मानते थे । दिल्ली में स्थापित उनके अधिकार ने धीरे-धीरे एक विशाल साम्राज्य का रूप धारण किया और 19 वीं शदी के उत्तरार्द्ध तक वह भारत में कायम रहा ।

मुस्लिम राज्य के बाद दिल्ली सलतनत का समय आता है । पूर्ववर्ती शासकों के समान इन्हों ने भी भारत पर आक्रमण करके अपना राज्य स्थापित किया और यहाँ के निवासी बन गए । इन्होंने भारत में लगभग तीन सौ वर्षों तक शासन किया । मुगल सम्राट बाबर ने जब पानिपत युद्ध में अंतिम सुलतान को पराजित किया तब से दिल्ली सलतनत का पतन शुरू हुआ । फिर बाबर के नेतृत्व में मुगलों का आगमन और साम्राज्य की स्थापना हुई । मुगल बादशाहों ने लगभग दो सौ वर्षों तक भारत पर शासन किया । औरंगज़ेब की मृत्यू के साथ मुगल साम्राज्य का पतन आरंभ हो गया ।

शासन चाहे अरबों का हो, दिल्ली सलतनत का हो या मुगलों का, भारत की जनता का जीवन कुछ इने गिने सम्राटों के शासनकाल को छोडकर बहुत ही दु:खपूर्ण था । भारत साम्राज्यवादी शक्तियों के वश में आकर दम घुटने लगे । ऐसी परिस्थिति में यह उल्लेखनीय बात है कि इन औपनिवेशिक शक्तियों के प्रतिरोध में मराठों और सिखों का उत्थान हुआ । क्योंकि उन्में एक प्रकार की राष्ट्रीय भावना थी ।

यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियों का आगमन

पश्चिम यूरोप में विज्ञान के प्रगति 15 वीं शताब्दी के बाद ही तेज़ हुई थी । सबसे पहले सामुद्री जहाज़ बनाने की तकनीक में यूरोपीय देशों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ था । पुर्तगल और स्पेन ने इसमें पहल की और उन्होंने कांपस (Compass) का इस्तेमाल किया । 15 वीं शताब्दी के अंत में पुर्तगल और

स्पेन के लोगों ने इस सामुद्री रास्ते की खोज का काम शुरू किया जिसके फलस्वरूप कोलम्बस अमेरिकी द्वीप पहूँचे । इसी के साथ पुर्तगली आफ्रिका के किनारे से आगे बढते रहे । आफ्रिका के पूर्वी किनारे पर वे कुछ हिन्दुस्तानी नाविकों से मिले क्योंकि वहाँ हिन्दुस्तान का व्यापार पहले से होता आ रहा था । इस तरह हिन्दुस्तानी नाविकों की सहायता से पुर्तगल का वास्को-द-गामा सबसे पहले केरल के कालिकट पहूँचे । "सन् 1492 ई.वीं में कोलम्बस भारत को खोजने के उद्देश्य से निकला, पर उसने अमेरिका को खोज निकाला । 17 मई, 1498 ई.में पुर्तगली राजा एम्मनुएल के संरक्षण में वास्को-द-गामा (Vasco-de-Gama) गुडहोप अंतरीप का चक्कर लगाते हुए भारत के दक्षिण में स्थित कालीकट नामक स्थान पहूँचा ।"[1]

सन् 1498 में वास्को-द-गामा द्वारा भारत यात्रा केलिए तथा सामुद्री मार्ग खोज निकालने के बाद यूरोपीय देशों से व्यापारियों का कई संघ भारत आए । इनका लक्ष्य देशों के बीच व्यापार बढाना था । उनमें प्रमुख पुर्तगल के व्यापारी थे । उनके पीछे 1579 में अंग्रेज़ी, 1597 में डच और 1642 में फ्रेंच व्यापारी संघ भी आए । ये व्यापारी संघ यहाँ से कपास, मसाले खरीदते थे और बदले में सोना, चाँदी आदि दिया करते थे । यूरोप में पडोसी देशों के बीच पीढियों से मनमुटाव और अधीशत्व की प्रतिस्पर्धा ज़ारी थी । इसलिए व्यापार के क्षेत्र में एकाधिकार स्थापित करने में अंग्रेज़ लोग आखिर सफल निकले । 'ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी' इसका परिणाम था । पर उनका ध्यान शीघ्र ही

[1] Vincent Smith : Oxford History of India, Introduction, P.vii

भारत में राजनीतिक सत्ता स्थापित करने की ओर मुड गया । औरंगज़ेब की मृत्यू के उपरांत की प्रशासकीय अव्यवस्था एवं अशांति उन्हें बहुत सहायक सिद्ध हुई ।

भारत में अंग्रेज़ी राज

भारत में अंग्रेज़ी राज के इतिहास को परखने पर भारत के पहला राज्यपाल डा. सर्वेप्पिल्ली राधाकृष्णन का यह कथन उल्लेखनीय है कि 1600 ई.वीं से अंग्रेज़ पादरी और बैरागी, व्यापारी और साहसी यात्री, राजनीतिज्ञ, मिशनरी और आदर्शवादी भारत में आते रहे । उन्होंने खरीदारी और बिक्री की, वे युद्ध स्थलों में बढे और लडे, उन्होंने षड्यंत्र रचे और लाभ उठाया, उन्होंने सहायता की और घाव भरे । उनमें जो महान थे वे देश का आधुनुकीकरण करना चाहते थे तथा उसका मानसिक, नैतिक और राजनीतिक स्थर ऊँचा उठाना चाहते थे । वे सारे राष्ट्र को एक नया जीवन और नई स्फूर्ति देना चाहते थे । किंतु उनमें जो क्षुद्र प्रवृत्ति के थे उन्हों ने कुत्सित उद्देश्यों से काम किया । उन्होंने फूट को बढावा दिया तथा देश को और गरीब, कमज़ोर तथा विभाजित बनाया । इन बातों से अंग्रेज़ी राज के निर्मम शोषण एवं कुशासन का जीवंत दस्तावेज़ मिलता है ।

भारत में ब्रिटिश शासन का प्रारंभ 1757 से माना जा सकता है जब ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना ने बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के द्वितीय युद्ध में पराजित करके अपने राज का विस्तार करना शुरू किया ।

व्यापार केलिए आए गए अंग्रेज़ धीरे-धीरे अपनी साम्राज्यवादी नीतियों से भारत को अपने अधीन में लाने लगे । इसके प्रमुख कार्यकर्ता के रूप में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपना फर्ज़ निभाया । "अंग्रेज़ भारत में व्यापार करने आए थे । 31 दिसंबर सन् 1600 ई.वीं को ब्रिटेन की महारानी एलिसबेत प्रथम ने, 15 वर्ष केलिए, व्यापारियों के एक दल को एक शाही फरमान अथवा अधिकार पत्र (रॉयल चर्टर) द्वारा ईस्ट इंडिया के देशों के साथ व्यापार करने का एकाधिकार सौंपा था । बाद में अंग्रेज़ी व्यापारियों का वह दल ही ईस्ट इंडिया कांपनी के नाम से जाना जाने लगा ।"[1]

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना तक अंग्रेज़ यहाँ के कपास (Cotton) और मसाले के बदले सोना, चाँदी आदि देते थे । इस प्रकार अपना व्यापार कार्यक्रम चलता रहा । लेकिन क्रूसेड्स यानि ईसाइयों और मुसलमानों के बीच के मध्यकालीन युद्ध के आगमन से यहाँ से खरीदती चीज़ों की मांग बढने लगी । 1757 के प्लासी युद्ध के बाद बाहर से सोना चाँदी का आना बंद होने लगा । अंग्रेज़ ने यहाँ अपना आधिपत्य स्थापित किया । ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपनी पहली बस्ती और व्यापारिक केन्द्र 1613 में मुगल बादशाह जहाँगीर के शाही फरमान के अंतर्गत सूरत में स्थापित किए । बाद में उन्होंने मद्रास (1640) तथा बंबई (1690) जैसे प्रमुख शहरों में अपनी व्यापार शालाएँ खोली । भारत की छोटी बडी रियासती एवं सामंती शक्तियों के आपसी वैमनस्य से लाभ उठाकर उन्हों ने अपनी सत्ता धीरे-धीरे स्थापित किया । "1669 के चार्टर के

---

[1] डॉ. सुभाष कश्यप : भारत का संवैधानिक विकास और संविधान, पृ-10

द्वारा कंपनी को बंबई द्वीप और बन्दर्गाह 10 पौंड वार्षिक किराए पर सौंप दिए। साथ ही कंपनी को यह भी अधिकार दिया गया कि वह बंबई द्वीप और उसके निवासियों के सुशासन केलिए आवश्यक कानून बना सके और अध्यादेश ज़ारी कर सके। इस प्रकार 1669 में पहली बार कंपनी को एक क्षेत्र विशेष और उसके निवासियों पर शासन करने का स्पष्ट अधिकार मिला और वह एक व्यापारिक संस्था से शासक बन गयी। 1677 में कंपनी को अपने सिक्के चलाने का अधिकार गया और बंबई के ऊपर कानूनी दृष्टि से पूरी तरह ब्रिटिश सम्राट की प्रभु सत्ता स्थापित हो गयी।"[1] प्लासी युद्ध के बाद उत्तर भारत में उनका कब्जा प्राय: पूर्ण हो गया था। 1826 के भरतपुर युद्ध और 1849 के द्वितीय सिख युद्ध के उपरांत अंग्रेज़ों का प्रभुत्व संपूर्ण देश में जम गया।

अंग्रेज़ों ने अपनी तरफ से कर लागू किया और उसी रकम से वह यहाँ से माल खरीदने लगे। भारत की अर्थव्यवस्था का पतन यहाँ से शुरू हुआ है। यह भी नहीं औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप वैज्ञानिक आविस्कारो6 का इस्तेमाल, नए-नए यंत्रों के प्रयोग आदि के सहारे वे सस्ते माल बनाने की स्थिति में आ गए। इसी के साथ ये अपने मालों की बिक्री केलिए नए-नए बाज़ार खोजने लगे। वे भारत से कपास और अन्य कच्चे माल आवश्यकतानुसार ले जाते रहे। इनके द्वारा तैयार किये गये सस्ते माल हिन्दुस्तान के बाज़ार में ही बेचकर उन्होंने यहाँ के पुराने हस्त व्यवसायों को पराजित किया। धीरे-धीरे हिन्दुस्तान के बाज़ार उनके कब्जे में आ गये। इस प्रकार भारत एक कच्चे माल का स्रोत

---

[1] डॉ. सुभाष कश्यप : भारत का संविधानिक विकास और संविधान , पृ-12

तथा विदेशी वस्तुओं के उपभोक्ताओं का एक उपनिवेश बन गया । इस साम्राज्यवादी शक्ति ने अपने व्यापार के माध्यम से, हथियार के बल पर प्रशासनिक स्तर पर यहाँ की जनता को पराजित किया और ज़बर्दस्ती से हमारे देश के उद्योगों को खत्म कर दिया ।

भारत में अंग्रेज़ी राज के सबसे बडा अभिशाप था देश का आर्थिक शोषण । उन्होंने देश के आर्थिक ढांचे को नष्ट कर डाला । भारत की विपुल संपदा इंग्लैंड पहूँचने लगी । घरेलू उद्योग धंधों को नषट कर दिया । भरत के पैसे से इंग्लैंड़ का जितना अधिक औद्योगीकरण हुआ, भारत के परंपरागत उद्योगों का उतना ही अधिक विनाश किया गया ताकि भारत इंग्लैंड़ की कारखानों के लिए कच्चा माल पैदा करे और फिर फैक्टरियों में बने हुए माल की खपत के लिए बाज़ार का भी काम दे ।

अंग्रेज़ों ने भारतीय कपडा मिलों के उत्पादन पर उत्पादन शुल्क लगाकर अंग्रेज़ी कपड़ा उद्योग की सहायता की । कृषि को भी उन्होंने पूर्ण शोषण का क्षेत्र बनाया । कृषि से जो कुछ मिलता था उन सब का पूर्ण शोषण किया गया । इससे जितने धन बटोरते गये उन सबको अपने देश ले जाते थे । इस प्रकार अंग्रेज़ों का शासन पूर्णत: शोषण पर अवस्थित था । धीरे-धीरे भारत खोखला होता रहा । "हिन्दुस्तान पर स्थापित अंग्रेज़ी प्रभुत्व के कारण इंग्लैंड के दो लाभ हुए ।हिन्दुस्तान की लूट से जो पैसा और साधन उन्हें मिले उनको पूँजी में परिवर्तित करके इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति में तीव्रता लायी गयी । इसी राजनीतिक सत्ता का पक्षपातपूर्ण प्रयोग करके भारतीय बाज़ार को अधिग्रहीत

करना उनके लिए आसान हो गया । इस तरह अपनी दासता के कारण भारत दो तरफा मारा गया ।"[1]

सन् 1765 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल पर अधिकार स्थापित किया । इस समय उपनिवेशवाद की तीन विशेषताएँ एक साथ प्रकट हुई । पहला उसका जन्म बल प्रयोग से हुआ, दूसरा उसने ज़मीन की मूल उपज को औपनिवेशिक अर्थतंत्र का मूलाधार बनाया, तासरा उसने बल प्रयोग और शोषण को कानूनी जामा पहनाया । उपनिवेशवाद यहाँ बल प्रयोग से कायम हुआ । अर्थात् जिस प्रकार सामंतवाद ने दूसरों की ज़मीन पर बल प्रयोग द्वारा अपना अधिकार स्थापित किया था उसी प्रकार व्यपार के क्षेत्र में औपनिवेशिक शक्तियों ने अपना वर्चस्व स्थापित किया । क्योंकि यह उपज औपनिवेशिक अर्थतंत्र की मूलाधार थी । उनकी नई राजसत्ता हिंसा और धोखधडी पर निर्भर थी । वे अपनी अन्यायपूर्ण दमन नीति से जनता का शोषण करने लगे । अंग्रेज़ों का यह शोषण जनता के जीवनोपाय की सीमा (Subsistence Level) तक पहूँचा । इसके फलस्वरूप देश में अकाल की स्थिति पैदा हुई । इसका तीखा प्रहार भारतीय जनता को सहना पडा । इससे 1897 तक लाखों लोगों की मृत्यू हुई थी । इस प्रकार भारत पूर्ण रूप से गुलाम बन गए ।

[1] डॉ. मधु लिमये : सस्वतंत्रता आन्दोलन की विचारधारा, पृ-16

उपनिवेश पूर्व एवं बाद के भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थिति

18 वीं शती में सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था में कोई एकरूपता नहीं थी । "जनता धर्म, प्रदेश, वंश, भाषा एवं समुदाय के नाम पर विभाजित थी । समाज में उच्च-नीच का भेदभाव कायम रहा । विभिन्न प्रकार की असमानताएँ मौजूद थीं । समाज के उच्च वर्ग अपने प्रभुत्व एवं सर्वोच्चता के प्रति आतिजाकरूक थे । अधिकाँश जनता अभावग्रस्त रहते समय देश की विपुल संपत्ति इन्हीं के पास थी । समता, भाईचरा जैसी मुस्लिम संकल्पना पूर्णत: अप्रत्यक्ष हो गयी । हिन्दू समाज के विभिन्न समुदाय अपने अधिकारों केलिए संघर्षरत भी थे । उसी के साथ प्रत्येक समुदाय अपनी परंपरा एवं रिवाज़ के तहत अलग भी रहे । आर्थिक दृष्टि से एक प्रकार की आत्मनिर्भरता की स्थिति भी पाई जाती थी ।" [1]

लेकिन उपनिवेश के आगमन से भारत की सामाजिक स्थिति बहुत विकृत हो गयी । जनता का जीवन साम्राज्यवादी शक्तियों के शोषण तथा दमन नीति में पडकर जकडने लगा । अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद के आगमन के पहले हिन्दुसतान में मिश्रित अथ्व्यवस्था कायम थी । लेकिन अंगेज़ी प्रभुसत्ता स्थापित होने के बाद हिन्दुस्तान के ग्रामोद्योग और हस्तोद्योग बहुत ही शीघ्रता से नष्ट होने लगे और भारत कृषिप्रधान देश मात्र बनकर रह गया । इसी के साथ

[1] V.D.Mahajan : Modern Indian History, p-77

अंग्रेज़ों ने भारत पर अपना सांस्कृतिक प्रभुत्व स्थापित किया । यहाँ की ज्ञानव्यवस्था (Knowledge System) को नकारकर उन्होंने अपने को श्रेष्ठ घोषित किया । इसप्रकार उन्होंने भारतीय जनता के मन को भी औपनिवेशीकृत कर दिया ।

हमारी संस्कृति अपनी परंपरा से जुडी हुई है । अंग्रेज़ों ने भारत की परंपरा एवं संस्कृति की गलत व्याख्या की । इसकेलिए भारत के अतीत, पुराण एवं संस्कृत के नियम ग्रंथ, राजनीतिशास्त्र, सारोपदेश की कहानियाँ, नीतिसार आदि को उन्होंने पढा और उन्में जो आदर्श है उनका नया चित्र प्रस्तुत किया । "देशी अतीत के प्रति औपनिवेशिक दृष्टिकोण की मुख्य विशेषता उपनिवेशीकृत लोगों के इतिहास पर अधिकार करना नहीं बल्कि उन्हें सही इतिहास से वंचित करना था । इस सुविचारित वंचना के अनेक कारणों में से एक है भारतीय समाज की अपरिवर्तनशीलता का मिथक, जिसका प्रचार आरंभ में औपनिवेशिक प्रशासकों ने किया और बाद में प्रमाणीकरण साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने किया ।"[1] अंग्रेज़ों ने भारतीय संस्कृति के सत्य, अहिंसा, आध्यात्मवाद आदि तत्वों को अपने अस्तित्व केलिए श्रेष्ठ घोषित किया और उन्हीं के मुताबिक जीवन जीने केलिए जनाता प्रेरित किया । पर उनका वास्तविक उद्देश्य यह था कि जनता उनके विरुद्ध कुछ भी न करें । अंग्रेज़ों ने अपनी सुविधा केलिए भारत में विभिन्न योजनाएँ बनाईं । वे जनता से सीधे बातें करने केलिए उनकी भाषाएँ सीखने लगे । अपनी सत्ता को यहाँ रखने केलिए यह आवश्यक भी था ।

[1] के. एन. पणिक्कर : उपनिवेश भारत में सांस्कृतिक और विचारात्मक संघर्ष , पृ-117

इसकेलिए उन्होंने 1800 में 'फॉर्ट विल्यम कॉलेज' की स्थापना की । व्यापार जैसी व्यावहारिक आवश्यकताओं केलिए वे यहाँ की भाषाएँ सीखने लगे । लेकिन 19 वीं शदी में जब साम्राज्य सुदृढ हो गया तब यहाँ के क्ज़मीन्दारों को खास तौर से बंगाल के ज़मीन्दारों को अंग्रेज़ों ने अपना सहायक बना लिया । तब देशी भाषाओं का महत्व उनकी निगाह में घटता गया और उन सबके ऊपर उन्होंने अंग्रेज़ों को भी प्रतिष्ठित किया । लॉर्ड मैकाले के अनुसार चिंतन, वेश-भूषा, अभिरुचि एवं भावना में अंग्रेज़ों के समान वरन् भूरे रंग के त्वचवाले कुछ लोगों की आवश्यकता उन्हें थी । भारत की जनता केलिए यह अंग्रेज़ी शिक्षा एक आकस्मिक अतिरिक्त परिणाम (An incidental positive by-product) था । इसी के साथ अंग्रेज़ रेल, टेलिफोन, प्रेस आदि को भी लाए । इन सब के द्वारा विभिन्न प्रकार के विकास का कार्यक्रम भी चला लेकिन ये सब उनके शासन की सुविधा एवं शोषण केलिए थे । विख्यात इतिहासकार विपन चन्द्र के अनुसार-"इसमें सन्देह नहीं की औपनिवेशिक काल में भारत में आधारभूत परिवर्तन हुए । ठीक इसी वजह से, राजनीतिक आज़ादी के बाद जिन प्रारंभिक स्थितियों में उसने अपने विकास की प्रक्रिया आरंभ की वे प्रारंभिक स्थितियाँ औपनिवेशिक काल की पूर्व की नहीं थीं । वस्तुत: वह औपनिवेशिक काल की उपज थीं ।"[1] इस प्रकार नए-नए आविष्कारों के द्वारा उन्हों ने एक नई उपभोग संस्कृतिक को पनपाने का प्रयत्न भी किया ।

[1] बिपनचन्द्र : भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद , भूमिका

ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना से अंग्रेज़ भारत के आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में अपना वर्चस्व धीरे-धीरे स्थापित करने लगे। व्यापार के क्षेत्र में एकाधिकार स्थापित करके वे अपनी साम्राज्यवादी शोषण नीति चालू करने लगे। इससे यहाँ की देशी उद्योगों में ह्रास होने लगा और कृषि के क्षेत्र संपूर्ण शोषण का शिकार बन गया।

इस प्रकार आम आदमी का जीवन कष्टमय बन गया। उन्नीसवें सदी के मध्य तक ब्रिटिश सरकार और अधिक विस्तारवादी, निरंकुश, शोषक तथा दंभी बन गए। ऐसी परिस्थिति में भारत की जनता दम घुटने लगी। जनता के मन में इस अमानवीय शोषणयुक्त शासन एवं सत्ता के प्रति विद्रोह की भावना जाग उठने लगी। दरसल विद्की यह भावना औपनिवेशिक ताकतों के विरुद्ध रूपायित भावना थी।

औपनिवेशिक ताकतों का प्रतिरोध

ब्रिटिश साम्राज्य ने भारत को छल, कपट, नृशंस हिंसा तथा बर्बर बल प्रयोग के द्वारा प्राधीन कर लिया था। ब्रिटिश पूंजीपति, व्यापारी एवं शासक भारत की संपदा को सदियों तक लूटते रहे। ये भारतीय किसानों, आदिवासियों, मज़दूरों और कारीगरों का भी निर्मम शोषण करते रहे। इन्होंने शोषण के साथ-साथ भारत के स्वाभाविक विकास को भी अवरुद्ध क्र दिया।

भारत की जनता ने ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन व्यवस्था के खिलाफ पहले से ही आवाज़ उठाई थी। इनमें किसान, ज़मीन्दार, आदिवासी आदि

शामिल थे। वे अपनी ज़मीन एवं संपदाओं की रक्षा केलिए विद्रोह करने लगे। 1857 तक देश के कई स्थानों में परंपरागत रूप में सशस्त्र विद्रोह होते रहे। इनमें आदिवासियों तथा सैनिकों के विद्रोह भी शामिल हैं। इनमें औपनिवेशिक शक्तियों के विरुद्ध की आवाज़ बुलंद थी। बंगाल के बेरोज़गार सैनिकों तथा किसानों का विद्रोह, बंगाल और बिहार के चार जिलों में व्याप्त चुआर विद्रोह, उडीसा के ज़मीन्दारों का विद्रोह, तमिलनाडु के मालावार और दंडिगल में हुए विद्रोह, मैसूर में हुए विद्रोह, त्रावणकोर के दीवान के खिलाफ का विद्रोह आदि इनमें प्रमुख हैं।

उसी प्रकार भारतीय सैनिकों ने भी इस साम्राज्यवादी नीति के खिलाफ विद्रोह किए थे। 1764 में पहला सैनिक विद्रोह हुआ। उसमें एक बटालियन ने अपने ब्रिटिश अफसरों को गिरफतार कर लिया। उसी प्रकार जुलाई 1806 में वेल्लोर में हुए सैनिक विद्रोह भी स्पष्टत: ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ थे। इस प्रकार अंग्रेज़ों के शासन काल में ही अनेक सैनिक विद्रोह हुए। उन सबको उन्होंने समय-समय पर दबा भी लिया था। इन विद्रोहों के माध्यम से इन्होंने विदेशी शासन के विरुद्ध संघर्ष करने की अपनी मूल्यवान परंपरा को सुरक्षित रखा।

1857 का विद्रोह अथवा प्रथम स्वतंत्रता संग्राम

परंपरागत ढंग से ब्रिटिश उपनिवेशवाद का विरोध या प्रतिरोध करने की परिणति 1857 के विद्रोह में हुई। जिसमें सैनिकों, राजाओं, भूस्वामियों,

किसानों और लाखों कारीगरों ने भाग लिया । यह हमारा प्रथम स्वाधीनता संग्राम था । इस विद्रोह ने ब्रिटिश शासन को गंभीर चुनौती दी और उसकी जडें हिला दी । परंतु ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने इसे केवल सिपाहियों का विद्रोह या गदर कहकर इसकी महतत्ता और प्रभावी भूमिका को कम करने की कोशिश की । भारतीय जनता के इस महान मुक्तिसंग्राम को ब्रिटिश साम्राज्य के द्वारा क्रूरतापूर्वक कुचल दिया गया । विद्रोहियों को भारत को स्वतंत्र करने में सफलता नहीं मिली परंतु सत्ता ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से ब्रिटिश सरकार के हाथों चली गई । इस संग्राम में हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता, विद्रोहियों के व्यापक संगठन और उनके शौर्य तथा फौलादी दृढ संकल्प आदि ने पूर्ण रूप से यह सिद्ध कर दिया कि य्ह सिर्फ सिपाही विद्रोह नहीं बल्कि स्वाधीनता संग्राम था ।

इस विद्रोह ने भारतीयों में औपनिवेशिक शक्ति के प्रति जो घृणा व आक्रोश उत्पन्न किया तथा स्वतंत्रता की जो उत्कट अभिलाषा जगाई वह सदा बनी रही । आगे चलकर भारत को स्वाधीनता सेनानियों ने 1857 के इस प्रथम स्वाधीनता संग्राम से प्रेरणा ली । इस विद्रोह ने विभिन्न धर्मों एवं जातियों की जनता को ही नहीं बल्कि विभिन्न सामाजिक स्तरों की जनता को भी एकत्र कर दिया । इस विद्रोह में ही पहली बार सिपाहियों की रेजिमेंटों ने अपने यूरोपीय अफसरों को मौत की सज़ा दी । इसमें ही पहली बार हिन्दुओं और मुसलमानों ने अपने वैमनस्य को भूलकर एक साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध मिलकर संघर्ष किया था । क्रांतिकारियों ने मुगल बादशाह बहादुर शाह'जफर' को सम्राट

घोषित किया परंतु शासन के संचालन केलिए अलगजन तांत्रिक व्यवस्था स्थापित की। अंग्रेज़ इस क्रांति को दबाने में सफल निकले।

ज़ाहिर है 1857 का यह पहला स्वाधीनता संग्राम स्फल नहीं हुआ। इसके कई कारण थे। इसकी कमज़ोरियों के संबंध में मार्क्स और बेंगेल्स ने इसप्रकार कहा है, "विद्रोहियों का एक ही और केन्द्रीकृत नेतृत्व तथा एक सैनिक कमान न होना विद्रोह की असफलता का मुख्य कारण था। अपेक्षाकृत घटिया सैनिक शक्ति और एक सुसज्जित यूरोपीय सेना के विरुद्ध युद्ध करने के अनुभव की कमी आदि ने इस विद्रोह पर घातक धक्का पहँचाया। विद्रोह का आंतरिअक ढाँचा अस्थिर था । इसने सैनिक कार्वाइयों में सफलता की संभावनाओं को कम कर दिया। विद्रोहियों के मनोबल पर भी इसका प्रतिकूल असर पडा।"[1] अंग्रेज़ों ने भारत की स्वाधीनता के लिए भडकी गई विद्रोह की इस आग को जल्दी ठंडा कर दिया। दृढता का निर्ममतापूर्वक दमन हुआ। हज़ारों लोगों को फाँसियाँ दी गयी। इस विद्रोह ने ब्रिटन की सरकार को भी हिला दिया था।

1857 की क्रांति की विशेषता यह थी कि वह प्रथम संगठित स्वतंत्रता संग्राम था। ब्रिटीशों के सत्ता धारण के फलस्वरूप गद्दी खो गये हिन्दु मुस्लिम राजाओं का इरादा अप्ने नष्ट सलतनतों को वापस कर लेना था। आधुनिक इतिहास यह साबित करता है कि वह संग्राम अंग्रेज़ी साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध उभरा पहला संगठित स्वतंत्रता संग्राम था जो आवश्यक आयोजन तथा

[1] कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगल्स : दि फर्स्ट वार ऑफ इण्डिपेण्डेंस 1857-59, पृ.12

समर्थ नेतृत्व के अभाव में असफल निकला था। वास्तव में इस विद्रोह के पीछे कई आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक कारण थे जिनका बीजाकुरण ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन से ही हो चुका था। सैनिक असंतोष इसका आखिरी कारण था। इतिहास में इस महान आन्दोलन को प्रमुख स्थान है।

1857 की क्रांति ने प्रामाणिक स्तर पर यह साबित कर दिया कि भारतीय समाज अंदर ही अंदर अंग्रेज़ी सत्ता को चुनौती देने की तैयारी कर रहा था। ल्वेकिन 1857 की क्रांति के विफल होने का एक प्रमुख कारण आधुनिइक कोलोनियल स्टेट ही था। याने की औपनिवेशिक साम्राज्य से सामंति युग में जी रहे भारतीय समाज की टकराहट थी। इस विद्रोह के बाद 1858 में भारत का शासन विक्टोरिया राणी ने ले लिया विक्टोरिया राणी ने उस समय यहाँ की जनता को उदारता, दया और सहिष्णुता के साथ शासन चलाने का आश्वासन दिया था। देश के विभिन्न क्षेत्रों में इस औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध क्रांतिकारी परिवर्तन एवं जागरण पैदा करने में यह सत्ता परिवर्तन कारण बन गया था।

भारतीय जनजागरण और विभिन्न आन्दोलन

मानव का इतिहास यह सिद्ध करता है कि जब किसी देश या जाति को दृढतापूर्वक निर्बल किया जाता है तो उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न होना स्वाभाविक है। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद भी यही हुआ। उसकी असफलता के परिणामस्वरूप देश में असंतोष की आग सुलग उठी जिसमें सामंतशाही का नाश होने लगा तथा एक नए वर्ग मध्यवर्ग का उदय भी। अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त

यही मध्यवर्ग समाज का नेतृत्व करने लगा । उनमें समाज और देश को लेकर एक नई दृष्टि थी, एक नई चेतना थी और एक भावबोध था ।

यूरोप में उस समय राजनीतिअ खलचलें ज़ोर पकडने लगी थी । भारत इस स्थिति से अछूता नहीं रह सकता था । "अंग्रेज़ी शिक्षा प्रापत तथा यूरोपीय सभ्यता के संपर्क से आए इस मध्यवरग में नई जागृति पैदा हुई । उसे रोकने के लिए अंग्रेज़ों ने सामंतशाहियों से मिलकर बहुत कोशिशें की लेकिन वे सफल नहीं निकले । जनता इस साम्राज्यवादी औपनिवेशिक ताकतों के विरुद्ध जागृत होने लगी । वे ब्रिटीश शासकों से माँगने लगी कि उच्च सरकारी पदों पर अधिक से अधिक भारतीयों की नियुक्ति हो तथा स्थानीय प्रशासनों में भारयीयों की प्रतिनिधित्व हो । "[1] भारतीय जनता में हुएअ इस जागरण ने आगे चलकर संगठित राष्ट्रीय आंदोलन का रूप ग्रहण किया । भारत के विभेन्न क्षेत्रों के शिक्षित वर्ग राजनीतिक संगठों की स्थापना करने लगे । इससे एक विशाल राष्ट्रीय भावना पैदा हुई और लोग एक अखिल भारतीय संगठन की आवश्यकता महसूस करने लगे । ऐसी परिस्थिति में कुछ राष्ट्रवादी राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने मिलकर दिसंबर 1885 में ' भारतीय राष्ट्रीय काँग्रस की स्थापना की । इस संगठन के फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रावाद को अखिल भारतीय स्तर पर संगठित अभिव्यक्ति का मंच मिल गया । जनता इसके अधीन में आकर वर्तमान औपनिवेशिक सत्त की शोषण नीति के खिलाफ संघर्ष करने लगी ।

---

[1] . मनोहर पुरी, उषा पुरी : समकालीन भारत, पृ.67

भारतीय जनता में उभरी राष्ट्रीय एवं विद्रोह भावना को विकसित करने में कुछ समाचार पत्रों और सुधारवादी आन्दोलनों का योगदान महत्वपूर्ण रहा। भारतीय स्वाधीनता प्रेमी केवल भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष नहीं कर रहे थे। वे जनता को राजनीतिक , आर्थिक, सामाजिक, संस्कृतिक जैसे सभी क्षेत्रों में मुक्ति दिलाने के लिए प्रयत्नशील थे। भारतीय समाज विशेषत: हिन्दु समाज सति प्रथा, बाल विवाह, जातिवाद, तंत्रवाद जैसी अनेक कुरीतियों से जर्जरित हो चुका था। 19 वीं शति में राजा राममोहन राय, स्वामि दयानद सरस्वती, स्वामि विवेकानन्द जैसे महा पुरुषों ने इन कुरीतियों के विरुद्ध सुधारवादी आन्दोलन चलाए । इससे राष्ट्र में अभूत्पूर्व जनजागृति हुई और राष्ट्रीय तथा मानवतावादी भावनाएँ सुदृढ हो गयीं। इन सुधार्वादी आन्दोलनों ने भारत की राजनीतिक स्वाधीनता की आकांक्षाओं को और तेज़ कर दिया।

19 वीं शती के उत्तरार्द्ध में साहित्यकारों ने भी राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करने में, औपनिवेशिक शासन के जनविरोधी स्वरूप का पर्दाफाश करने में तथा जनता के दुख दर्द व उसकी मुक्ति की अभिलाषाओं को अभिव्यक्त करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं। इसमें बंगाली उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चाट्टर्जी के 'आनन्दमठ' का महत्वपूर्ण स्थान है। इस उपन्यास के 'वन्देमातरम' गीत उस समय का राष्ट्रगीत था। इसने जनता में राष्ट्रीय भावना पैदा करने में महत्वपूर्ण कार्य किया है। आगे चलकर हिन्दी उपन्यास भी देश की ज्वलंत समस्याओं के अंकन करने में सक्षम निकले । उपन्यास मनुष्य जीवन का आख्यान है, यह निएर्विवाद है। जीएवन अपनी विविधता, व्यापकता और बाह्र भीतर समग्रता

में जितना अधिक उपन्यास में अभिव्यक्त होन सकता है, उतना साहित्य की किसी दूसरी विधा में नहीं।

औपनिवेशिक शासन के प्रति विद्रोह हिन्दी साहित्य में सबसे पहले कविता में हुआ। उपनिवेश भारत की दुरवस्था को दर्शाने तथा लोगों में राष्ट्रीय भावना पैदा करने के लिए तत्कालीन रचनाकारों ने खूब कोशिश की। उस समय के कवियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालमुकुन्द गुप्त, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, प्रताप नारायण मिश्र तथा राधाचरण गोस्वामी आदि भारतेन्दु कालीन कवि थे। इन कवियों ने अपने सृजन के माध्यम से राष्ट्र प्रेम, स्वभाषा प्रेम, स्वदेश रक्षा, तथा स्वराष्ट्र संपन्नता के लिए सामूहिक प्रयास किया था। द्विवेदी युग में आकर हरिऔध, सियाराम शरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', रामनरेश त्रिपाठी तथा मैथिलीशरण गुप्त आदि ने देशप्रेमी कविताएँ लिखकर लोगों को जगाने का कार्यक्रम जारी रखा। आगे प्रसाद, पंत, महादेवी वर्मा और निराला प्रवर्तक बने। इसी प्रकार माखन लाल चतुर्वेदी, सुभद्रकुमारी चौहान, दिनकर आदि ने अपनी कविताओं के माध्यम से विदेशी शासकों के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए देशवासियों में जागरण का संदेश दिया और क्रांति एवं विद्रोह का स्वर गूँजन किया।

व्यापक जनजागरण एवं काँग्रस के नेतृत्व ने स्वाधीनता संग्राम को और अधिक तेज़ बना दिया। यह आन्दोलन आम आदमी तक पहूँचकर सही अर्थों में साम्राज्यवादी विरोधी राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष बन गया। इसी बीच राष्ट्रीय आन्दोलन में फूट डालने और काँग्रस को समाप्त करने के लिए लॉर्ड कर्ज़न ने

बंगाल का साँप्रदायिक आधार पर विभाजन उपस्थित किया । इस प्रकार साम्राज्यवादी ब्रिटेन ने अपना 'फूट डालो और राज्य करो'वाली नीति लागू की । इसके विरुद्ध के सशक्त आंदोलन के रूप में बहिष्कार और स्वदेशी आंदोलन चल पडे । इसी के साथ कई क्रांतिकारी आन्दोलन भी इन औपनिवेशिअक ताकतों के विरुद्ध शुरू हुए ।

सन् 1907 में आकर काँग्रस नरम दल और गरम दल में बाँट गया । इससे उसकी शक्ति कमज़ोर पड गयी । इसी बीच गाँधीजी दक्षिण आफ्रीका से भारत आए और उन्होंने भार्त के स्वाधीनता संग्राम का कार्यभार अपने ऊपर ले लिया । अंग्रेज़ी सरकार ने काँग्रस और अन्य क्रांतिकारियों के संघर्षों को दबाने के लिए कई कानून बनाए । गाँधीजी, काँग्रस के अन्य नेतागण तथा क्रांतिकारियों ने इस जनविरोधी कानून एवं साम्राज्यवादी दमन नीति का विरोध किया । खिलाफत आन्दोलन, असहयोग आंन्दोलन, सत्याग्रह आदि के द्वारा वे अंग्रेज़ों के निर्मम शोषण एवं दमन नीति का सशक्त विरोध करते रहे । औपनिवेशिक शक्ति के विरुद्ध हुए इस माहन विद्रोह में समाज के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों ने भाग लिया । इन में सुभद्राकुमारी चौहान, गणेश शंकर विद्यार्थि, भारत कोकिला सरोजिनी नायिडू, माखनलाल चतुर्वेदी जैसे साहित्यकार, पत्रकार और भगत सिंह, रामप्रसाद बिस्मिल जैसे चिंतक, क्रांतिकारी सब एक ही पथ के पथिक थे । देश के शिखर नेतृत्व पर लोकमान्य तिलक, ऐनी बसेंट, महात्मा गाँधी, जवाहर्लाल नेहरू आदि महान नेता भी थे । उस समय रचनाकार की कलम देश और समाज को समर्पित थी और पत्रकारिता व्यवसाय नहीं मिशन थी ।

आज़ादी के संघर्ष और साहित्य का अन्योन्याश्रित संबंध था । इस प्रकार साम्राज्यवादी शासन के शोषण एवं दमन नीति के विरुद्ध के संगठित विद्रोह में देश की पूरी जनता ने भाग लिया था । विश्व इतिहास में भारत का यह स्वतंत्रता संग्राम उपनिवेशवादी शक्तियों के विरुद्ध के महान संघर्ष के रूप में माना जाता है ।

निष्कर्ष

इस प्रकार भारत को औपनिवेशिक (साम्राज्यवादी) शक्तियों के शासन में आकर लग भग 200 सौ वर्श तक अपनी राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक गुलामी की स्थिति को भोगना पडा । अंग्रेज़ों के साथ के इस संबंद्ध का दुषपरिणाम यह निकला कि भारतीय संस्कृति का ह्रास, यहाँ की अर्थ व्यवस्था का असंतुलन, राष्ट्रीय स्वर पर अराजकता, साँप्रदायिकताअ आदि धीरे-धेरे उभर आने लगे । इसकी वजह से देश की शक्ति कमज़ोर होने लगी । देश की गरिमा नष्ट होने लगी और पूर्ण रूप से भारत एक पिछडा हुआ देश बनने लगे । अपनी कालजयी पुस्तक ' द रेचड ऑफ द एर्थ' में फ्रांसीसी लेखक फ्रैंच फैनन ने औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा शासित समाज और व्यक्ति पर होनेवाले सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दबावों के बारे में इस प्रकार कहा है -"जब एक समाज औपनिवेशिक अधीनता के दौर से दो सौ वर्ष गुज़र चुका होता है तो उसके परिणाम सांस्कृतिक पराधीनता, राष्ट्र की गरीबी और

राजनीतिक परनिर्भरता में परिलक्षित होते है ।"[1] भारत के संबंध में यह कथन पूर्णत: सत्य साबित हो चुका है ।

ज़ाहिर है कि 19 वीं तथा 20 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक आते-आते भारत पूर्णत: अंग्रेज़ों का उपनिवेश राष्ट्र बन चुका था । इससे मुक्ति का संघर्ष हमेशा चलता रहा है । तत्कालीन रचनाकार अपने समय के इस यथार्थ को वाणी देते रहे है । यह सुविदित तथ्य है कि मानव का सच्चा इतिहास उसका साहित्य ही है । क्योंकि उसमें मानव जीवन के जीवंत इतिहास मिलता है । इस अर्थ में भारत के उपनिवेश काल का इतिहास भी तत्कालीन इतिहास में ही सुरक्षित है । हर उपनिवेश राष्ट्र में वहाँ की जनता ने उपनिवेशवाद के खिलाफ विद्रोह भी किया है । भारतीय उपनिवेश के प्रतिरोध को समझने केलिए यहाँ का साहित्य बिलकुल पर्याप्त है । इसमें कविता, नाटक आदि के साथ-साथ उपन्यास ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाया है । नव उपनिवेशवाद के इस दौर में आज भारत प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में पुन: वैदेशिक अधीशत्व की ओर जा रहे हैं । इस सन्दर्भ में जनता के मन में राष्ट्रीय भावना पैदा करने केलिए और उन्हें अपने अतीत और वर्तमान के प्रति सजग बनाने केलिए उपनिवेश प्रतिरोधी उपन्यासों का पुन: अध्ययन ज़रूरी है । इस लिए सन् 1950 से लेकर 1980 तक प्रकाशित उपनिवेश प्रतिरोधी उपन्यासों के अध्ययन की अपनी प्रासंगिकता है । इन उपन्यासों में औपनिवेशिक भारत के यथार्थ का और उसके विरुद्ध के संघर्ष

---

[1] फ्रैंच फैनन : द रेचड ऑफ द एर्थ : ग्रोव प्रेस, न्यूयोर्क - इंटेरनेट एडीशन

का, प्रतिरोध का सच्चा इतिहास अनावृत हुआ है। उसका विस्तृत अध्ययन एवं विश्लेषण आगे के अध्यायों में किया जाएगा।

अध्याय दो
राजनीतिक दासता का प्रतिरोध

हर देश की स्थिति और गति में राजनीति की भूमिका महत्वपूर्ण है। राजनीति शब्द का प्रयोग 'सामाजिक जीवन की एक विशेष गतिविधि' [1] केलिए होता है। राजनीति वह प्रक्रिया है जिसमें कुछ इने-गिने लोगों के सामूहिक फैसलों का निर्माण होता है। इसमें अधिकार एवं शक्ति का सामाजिक संबन्ध निहित है। यह राजनीति ऐसे लोगों की रीतियों और नीतियों को बनाने एवं काम में लाने का माध्यम भी है। डॉ. श्याम लाल वर्मा के अनुसार " राजनीति शक्ति और प्रभाव संबन्धी वह गत्यात्मक गतिविधी है जिसके द्वारा व्यक्ति या व्यक्ति समूह सहयोग एवं द्वंत्व के माध्यम से अपने उद्धेश्यों की पूर्ति केलिए राजनीतिक संरचनाओं, प्रक्रियाओं एवं क्रियाविधियों की औचित्यपूर्ण सत्ता के प्रयोग का प्रयास करते है। " [2] अर्थात् व्यक्ति या व्यक्ति समूह के द्वारा अपने उद्धेश्यों की पूर्ती केलिए होनेवाला निर्णय राजनीती है। यही निर्णय समाज में अपना राज करता था और सदियों से करते आ रहे है।

उपनिवेशकालीन भारत की राजनीतिक पृष्ठभूमि

भारत का अपना एक राजनीतिक इतिहास है। ईसा पूर्व पन्द्रहवीं और दसवीं सदी में आर्यों ने भारत आने के बाद यहाँ पर पहले से मौजूद ढीली-ढाली जातिप्रथा पर चार वर्णों की व्यवस्था आरोपित की। मुसलमानों के

---

[1] राजनीतिक कोश

[2] डॉ. श्यामलाल वर्मा : आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत-पृ- 15

आक्रमणों से पहले हिन्दू साम्राज्यों में कुछ समय तक इसी आधार पर एक ऐसी समाज व्यवस्था कायम थी जिसमें स्थायित्व, लचीलापन और विभिन्न ऐतिहासिक युगों में भी टिके रहने की अभूतपूर्व क्षमता थी। इसी के कारण भारतवसी किसी राजनीतिक केन्द्र और प्राधिकार के बिना रहने के अभ्यस्त हो गए। मुसलमानों के शासन ने कुछ प्रशासनिक सुधार तो किए, पर महान मुगल साम्राज्य भी सारे भारत को एक राजनीति के केन्द्र के तहत नहीं ला पाया। उनके द्वारा भारतीय समाज पर कोई बुनियादी असर नहीं डाल पाया। मुस्लिम शासन के दौर में राजसत्ता छिन जाने के कारण हिन्दू समाज इस दौरान अंतर्मुखी हो गया। अंग्रेज़ों के आने के बाद उसे एक बार फिर अपने प्राचीन गौरव की दावेदारियों के आधार पर सामाजिक, राजनीतिक पुनर्जागरण का मौका मिला।

सात समुन्दर पार से आए अंग्रेज़ भारतवासियों केलिए कोई विश्वशांति अथवा मैत्री का संदेश लेकर नहीं आए थे, अपितु व्यापार केलिए बाज़ार और अपने उद्योग केलिए कच्चे माल के भौगोलिक खजानों की खोज करनेवाले थे। वे अत्यंत चालाक थे साथ ही धूर्त एवं कूटनीतियुक्त विदेशियों का समूह था। इन्हों ने विलासिता एवं आंतरिक षड्यंत्रों में दिनों दिन पतित होते जा रहे कमज़ोर देशी राजाओं तथा रजवाडों के भीतर अत्यंत नपे तुल कदमों से प्रवेश किया। फिर उन्हें आपस में लडने-काटने-मरने में लगाकर पहले उन्हें सलाहकार बने, सैन्य सहायक एवं भाग्यविधाता बने,बाद में उन्हीं को दबाकर इस समूचे भारतवर्ष के महान अधिपति बन गए। "भारत में अंग्रेज़ों का आरंभिक आवास व्यापार के केंद्र थे, जिनमें कारखाने थे, दूकानें थीं और गोदाम थे। इन आवासों में से, प्राय: सब-के-सब या तो समुद्र के किनारे पडते

थे या किनारे से बहुत समीप । पश्चिम में उनके आवास सूरत , अहम्मदाबाद और कालिक्कट में थे तथा पूर्व में उनके केन्द्र मद्रास, मछलीपट्टम, गंजाम, बालसोर और कलकते में ।"[1] संक्षेप में कहें तो अंग्रेज़ सर्व प्रथम भारत भूमि पर एक व्यापारी का चोला पहनकर अवतरित हुए । कालांतर में उन्हों ने पहले सैनिक का और बाद में शासक का रूप धारण किया । उपनिवेशवादी अंग्रेज़ों के इस बहुरूपियेपन ने सर्वप्रथम इस देश के अदूरदर्शी सत्ता धारियों को ठगा और फिर उन्हें धराशायी करने के बाद यहाँ की मूक जनता की निर्ममतापूर्वक लूट प्रारंभ कर दी । इसकेलिए उन्होंने आवश्यक नीतियों का भी सृजन किया था जो पूरे देश के शोषण पर आधारित नीतियाँ थीं । उनकी इन शोषण नीतियों ने पूरे भारतवासियों के मन में घृणा एवं विद्रोह की भावना को जागृत किया । ये अपनी चरम सीमा पर पहूँचकर सन् 1857 की जनक्राँति में परिणत हो गया ।

अंग्रेज़ों ने भारत को पुनः सृजित करने की कोशिश शुरू में की थी । लेकिन 1857 के विद्रोह से घबराकर उन्हों ने भी भारतीय समाज को पुनर्व्यवस्थित करने की इच्छा त्याग दी । सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का केन्द्रीय प्रयास वहाँ रुक गया । लेकिन अंग्रेज़ पूरे उपमहाद्वीप को एक राजनीतिक केन्द्र और समरूप प्रशासन के तहत लाने में कामयाब रहे । 1757 के प्लासी युद्ध के बाद अंग्रेज़ ने भारत पर अपना अधीशत्व स्थापित किया । यहाँ की जनता को अपने काबू में रखने और राज करने केलिए उन्हों ने कई नियम और शासन तंत्रों की रचना की । जिसकी वजह से तत्कालीन जनता अत्यंत अमानवीय जीवन जीने केलिए मज़बूर होनी लगी । राजनीतिक दृष्टि

[1] दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृ-420

से तत्कालीन भारत की स्थिति अत्यंत दुर्बल थी । देशी राजाओं की आपसी फूट एवं झगडों ने अंग्रेज़ों को अपनी सत्ता स्थापित करने और बरकरार रखने केलिए उपयोगी मंच तैयार किया । इस प्रकार "अंग्रेज़ पूँजीपति देश के जिस हिस्से को दखल करते, उसके किसानों और कारीगरों को बेतरह लूटते थे । कच्चा और तैयार माल सस्ते से सस्ते दाम में लेते और ज़मीन का लगान बढ़ा देते ।"[1] अंग्रेज़ों की दमन नीति एवं शोशण तंत्रों से पीडित जनता में एक प्रकार की विद्रोह भावना जागृत हो गयी । प्रत्येक जनता में आयी यह जागृति जब सामाजिक चेतना में परिणत हो गयी तो शोषित अपने सर्व शक्ति संभालकर शोषकों के विरुद्ध खडे होने लगे । यह सच्चे अर्थों में एक राष्ट्रीय बोध का प्रस्फुटन था । इसके पीछे अंग्रेज़ी शिक्षा और संपर्क की महान भूमिका है । अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त और पश्चिमी बौद्धिकता के स्पर्श से भारत में एक शहरी मध्यवर्ग का जन्म हुआ था जिसने धीरे-धीरे राजनीति करना सीखा तथा उन्में राष्ट्रीय भावना जाग उठी । वे उपनिवेश प्रतिरोध के अगुआ बने । "सामाजिक चेतना ही वह गुण है जो आज के औसत भारतवासी को प्राचीन अथवा मध्ययुगीन भारतवासी से विभक्त करता है और यह चेतना भारत को यूरोपीय संपर्क से मिली है ।"[2]

प्रत्येक देश का इतिहास यही बताता है कि राष्ट्र या राज्य के गढ़न में राजनीति की अपनी अहम भूमिका है जिससे समाज व व्यक्ति का एक व्यापक हित की पूर्ति होती है । राजनीति शब्द 'राज' और 'नीति' दो शब्दों के योग से बना है । इसका अर्थ हुआ राजा अथवा राज्य संबन्धी नीति । नीति साधारणतया नैतिक मूल्यों से संबन्धित होती है, परंतु जब राज शब्द लगाकर

---

[1] अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम, पृ-302

[2] दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृ-428

राजनीति शब्द बन जाता है तो इसका अर्थ राज्य को सफलतापूर्वक चलाने की नीति बन जाता है । राजनीति राजा का सफल हथियार है, जिससे वह शासन करता है या अपनी मनमानी करता है । भारत के राजनीतिक इतिहास की ओर नज़र डाले तो शासन के क्षेत्र में, विशेष रूप से अंग्रेज़ों की ओर से , हुई मनमानी का पता चल जाएगा । भारत एक स्वयंभू राष्ट्र न होकर विभिन्न राज्यों का एक समूह है तथा विभिन्न राजनीतिक परिस्थितियों के कारण वह एक राष्ट्र के रूप में कभी रहा ही नहीं ।

पृथ्वी के इस भूखण्ड में अंग्रेज़ों के आने के पहले छोटे-छोटे बहुत से राष्ट्र हुआ करते थे और उनपर पहले अंग्रेज़ों ने विजय पायी । फिर उनके द्वारा इस भूभाग को औपनिवेशिक स्वार्थों की रक्षा केलिए एक संयुक्त राजनीतिक स्वरूप प्रदान कर दिया गया और इसी संयुक्त स्वरूप को ही भारतीय संविधान में भारत कह दिया गया है । लेकिन भारत को एक संयुक्त राजनीतिक स्वरूप प्रदान करने के पीछे उपनिवेशवादी ताकतों के शोषण तंत्र एवं दमन तंत्र छिपे हुए थे । अंग्रेज़ी शासन की शुरुआती दौर में यह उतना दृष्टव्य नहीं था । लेकिन धीरे-धीरे इसकी स्पष्ट झलक दिखाई देने लगी ।

जिस प्रकार साहित्य और समाज एक दूसरे से अलग नहीं है, उसी प्रकार राजनीति और समाज एक दूसरे से अलग नहीं है । अत: रजनीति भी समाज की ही उपज है । इसलिए हम कह सकते हैं कि साहित्य का जो संबन्ध समाज से है, वह राजनीति से भी । रजनीति चाहे वह क्रांतिकारी हो या प्रतिक्रांतिकारी, वह समाज के विभिन्न वर्गों के संघर्ष का प्रतिफलन है, कुछ व्यक्तियों की कार्यवाही नहीं ।

साहित्यिक गतिविधियँ

एक सजग एवं सर्वाधिक संवेदनशील प्राणी होने के कारण साहित्यकार को सामाजिक परिस्थितियों की उपेक्षा करना असंभव है । साहित्य को जब समाज का दर्पण माना जाता है तो उसमें युगीन राजनैतिक चेतना के भी दृश्य अवश्य मिल जाते है । इसी दृष्टि से देखे तो उपनिवेशकालीन भरतीय जीवन की ज्वलंत सच्चाइयों को दर्शाने की महत्वपूर्ण कोशिश कई साहित्यकारों ने की है । उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से यह भी स्थापित किया कि साहित्य में केवल रंगीली कल्पना मात्र नहीं, करोडों शोषितों, किसानों और मज़दूरों की पुकार और उनके संघर्ष का चित्रण भी किया जाता है ।

हिन्दी साहित्यिक विधा में उपन्यास एक ऐसी सशक्त एवं महान विधा है जो मानव चरित्र के विभिन्न पहलुओं जैसे सामाजिक, राजनैतिक और साँस्कृतिक क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं का जीवन्त चित्रण करने में सक्षम सिद्ध हुई है । इसी कारण उपन्यास सम्राट प्रेमचंद "उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र-समझता है और उसका उद्धेश्य-मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना-मानता है ।"[1] हिन्दी उपन्यास का आविर्भाव सामाजिक और राजनीतिक चेतना को लेकर हुआ है । हिन्दी उपन्यास का इतिहास ही हमारे लोक जीवन में व्याप्त राजनीतिक चेतना का इतिहास है । इन्हें अभिव्यक्त करने में कई उपन्यासकार सफल निकले हैं । इनमें प्रमुख हैं- मुंशी प्रेमचंद, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, नागार्जुन, विष्णुप्रभाकर, देवेन्द्र

[1] प्रेमचंद : कुछ विचार, पृ.47

सत्यार्थी, अमृतराय, फणीश्वरनाथ रेणु, बलभद्र ठाकुर, गुलशेर खाँ शानी, गिरिराज किशोर, भीष्म साह्नी, विवेकी राय, कृष्णा सोबती आदि । इन्होंने अपनी रचनाओं के ज़रिए भरत के एक ऐसे भीषण समय का चित्रण किया जिसमें करोडों लोग उपनिवेशवादी शक्तियों के शोशणभरी वातावरण में जीने केलिए लड रहे थे । यह उपनिवेशवाद के विरुद्ध में हुए एक प्रकार का साहित्यिक प्रतिरोध था । भारत भूमि पर लंबी अवधी तक कायम रहे साम्राज्यवादियों के राजनीतिक शोषण के विरुद्ध के औपन्यासिक प्रतिरोध को आगे विश्लेषण किया जाएगा ।

उपनिवेशी राजनीतिक शोषण और औपन्यासिक प्रतिरोध

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और सामाजिक प्राणी होने साथ साथ वह एक राजनीतिक प्राणी भी है । समाज यदि मानव का चरण है तो राजनीति उसका मस्तिष्क है । दोनों के मिलन में ही जीवन की गति संभव है । ' जो व्यवस्था समाज के विकास में सहायक होती है उसे समाजनीति और जो राज्य का विकास करती है उसे राजनीति कहा जाता है ।' जब शासक जनता की इच्छा के विरुद्ध खडे होकर अपनी मनमानी करने लगता है तब राजनीति कूटनीति में परिणत हो जाती है । उस राजनीति में जनता देश का भविष्य नहीं देख पाती उसके बदले अपनी और देश की दुर्गति को देखती हैं । ऐसी अवस्था में देश में वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह पैदा होता है । उपनिवेशी शासन काल में अंग्रेज़ों की नीतियों के विरुद्ध इसलिए जागरण पैदा हुआ था । अपने शासनकाल में किए गए विभिन्न राजनीतिक शोषण एवं कूटनीतियों को और उसके विरुद्ध उठे छोटे-छोटे प्रतिरोधों से

लेकर एक संगठित प्रतिरोध तक का जीवंत चित्रण स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने किया है । इसलिए हम कह सकते है कि आधुनिक हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना के क्रमिक विकास की कलात्मक अभिव्यक्ति है ।

डॉ.बद्रीदास के अनुसार "हिन्दी उपन्यास उन्नीसवीं सदी की देन है । साहित्य के इस रूप का जन्म नए भारत के जन्म के साथ हुआ और नए भारत की भाँति ही यह अंग्रेज़ी संपर्क की देन है । अंग्रेज़ संपर्क से उपन्यास की विधा ही नहीं मिली, उससे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, साँस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्रों में वे परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई जिनसे उपन्यास का विकास संभव हुआ ।"[1] यह पूर्णत: सही है कि इस नए युग की नई विधा के सृजन में अंग्रेज़ी उपनिवेशवाद की अहम भूमिका है । भारत में यंत्र युग का आगमन अंग्रेज़ों के आगमन से हुआ था । इससे भौतिक विकास शुरू हुआ साथ ही साहित्यिक क्षेत्र में भी नई विधा की शुरूआत हुई । बाद में इसी नई विधा के ज़रिए साम्राज्यवादी शोषण नीति के खिलाफ आवाज़ उठाने लगे । उपनिवेशवादी अंग्रेज़ों के शोषण के विरुद्ध आवाज़ हिन्दी उपन्यासों में सबसे पहले लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरू' से शुरू होता है । डा.गोपाल राय के शब्दों में- "परीक्षागुरू हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसमें अंग्रेज़ बनियों का चरित्र की पोल खोली गयी है । "[2] ऐसे परीक्षागुरू से शुरू होकर आधुनिक हिन्दी उपन्यास तक की एक लंबी परंपरा में इस उपनिवेश विरोधी स्वर को हम देख सकते हैं । समकालीन उपन्यास में आकर यह प्रतिरोध नवउपनिवेशवाद का प्रतिरोध बन गया है ।

---

[1] डॉ. बद्रीदास : हिन्दी उपन्यास पृष्टभूमि और परंपरा, पृ -12

[2] डॉ.गोपाल राय : हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ - 54

राजनीतिक शोषण के विभिन्न आयाम

दो सौ सालों तक भारत की भूमि पर अपना अधीशत्व स्थापित कर शासन और शोषण करते हुए साम्राज्यवादियों ने अपने देश की आर्थिक और भौतिक प्रगति केलिए काम किया । इस शोषणयुक्त शासन केलिए उन्होंने अपनी मर्ज़ी के अनुसार आवश्यक नियम भी बनाए और उसके अनुसार वे राज करने लगे थे । अपनी राज करने की इस नीति में भारतीय जनता का हितकारक कोई तत्व नहीं था, उसके बदले अहित एवं अनीति का बोलबाला था । अंग्रेज़ अपने शासन काल में जिन नियमों के तहत शासन करने लगे थे वे भारतीयों को अपने देश में दूसरे नागरिक का दर्जा देनेवाले थे । इसलिए उन्हें इन नियमों के अनुसार जीना मुश्किल था अत: इसके खिलाफ का जागरण पैदा हुआ । कालांतर में यह एक राष्ट्रीय भावना में परिवर्तित हो गया । वे संगठित होकर संघर्ष करने लगे ।

ब्रिटिश साम्राज्य के अत्याचारों, बाढ, सूखा और अकालों का बोझ भारत को सहने की सीमा के परे थे । ये सब उनके शोशणयुक्त राजनीति के फलस्वरूप हुआ था । इसलिए लोगों के मन में अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध कटुता और घृणा का भाव उत्पन्न होने लगा । शासक और शासित के बीच की दूरी प्रतिदिन बढती रही । समाज में नई-नई समस्याएँ घटित होने लगी । राजनीतिक स्तर पर भारतीय जनता दमित एवं शोषित होती रही । ब्रिटिश शासन ने अपने शासन को सुदृढ करने केलिए भारत में अनेक नवीन वर्गों को जन्म दिया । यह उनके शोषण की राजनीति का महत्वपूर्ण अंग था । इस वर्ग में ज़मीन्दार, भूमिपति, जोतदार, मज़दूर, व्यापारी और साहूकार मुख्य थे । इनके द्वारा इन्होंने एक नई शासन व्यवस्था को जनम दिया वह पूर्णत: शोषण

युक्त थे । इससे भारत की सारी संपत्ति को उन्होंने अपने दोनों हाथों से लूटा । इससे असंतुष्ट जनता इसका विरोध करने लगी । ऐसे कई संघर्ष हुए जिसका मार्गप्रशस्त किया काँग्रस ने । प्रत्येक साहित्य रचना में राजनीति के अणु किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान होते हैं । साहित्यकार युगीन जीवंत तत्वों को अपनी कृति में ग्रहण करता है । "किसी भी देश के राष्ट्रीय संघर्ष के वैविध्यपूर्णजीवनगत प्रवृत्तियों से प्रभावित औपन्यासिक रचना का ही दूसरा नाम राजनीति है ।" [1] स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में अंग्रेज़ी शासनकाल के भारतीय समाज की राजनीतिक दासता और उससे हुई विराट शोषण व्यवस्था का चित्रण सफल एवं सशक्त ढंग से हुआ है । इसलिए कुछ उपन्यासों को राजनीतिक उपन्यास कह सकते है।

उपनिवेशकालीन राजनीतिक यथार्थ को साहित्यिक रचना में चित्रित करने की प्रेरणा पुनर्जारण से मिली । उपन्यास नामक विधा की शुरूआत में तिलस्म, रोमांस, ऐयारी और जासूसी जैसे रूप साहित्य क्षेत्र में हुए थे । प्रेमचंद के हिन्दी में आगमन के पूर्व तक यह परंपरा बनी रही । उपन्यासों में पुनरुद्धानवादी आन्दोलन और समाज सुधार आन्दोलन वर्ण्य विषय थे । इस युग के उपन्यास कल्पना प्रधान थे । क्योंकि उपन्यासों का मूल उद्धेश्य मनोरंजन था । प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारतीय राजनीति में एक नवीन हलचल दिखाई देने लगी । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रस के नेतृत्व में साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष होने लगा । देश में राष्ट्रीयता की लहर उडने लगी । राजनीति के क्षेत्र में गांधी का आगमन एक महत्वपूर्ण घटना थी । अंग्रेज़ों की शोषण

[1] डॉ.देवीदत्त तिवारी : हिन्दी उपन्यास स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध आयाम, पृ-70

नीति और उसके खिलाफ उठे राष्ट्रीय विद्रोह का स्वर उपन्यासों का कथ्य बनकर नवीन शिल्प में ढलने लगा।

असहयोग आन्दोलन बनाम उपनिवेश प्रतिरोध

उपनिवेशी शासकों ने अपने उपनिवेशों में अप्रधिरोध्य सत्ता कायम रखना चाहा। इसकेलिए उन्होंने कई नीतियों को अपनाया। लेकिन ये नीतियाँ उनकी कूटनीति युक्त शासन प्रणाली के तहत आनेवाली थीं। यही उनकी राजनीति थी। उनकी नीतियाँ भारत की जनता के ऊपर प्रहार करते रहे। इसी की वजह से देशी नेताओं का ब्रिटिश सरकार से मोहभंग हुआ। ब्रिटीश सरकार की निर्मम शोषण नीति से पीडित जनता में उनके विरुद्ध की विद्रोह भावना जागृत उठी। इसी विद्रोह भावना कई प्रकार के आन्दोलनों को जन्म दिया। इस तरह भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में तत्कालीन उपनिवेशी शासन व्यवस्था के खिलाफ का असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ। यह एक महान एवं सशक्त आन्दोलन था जिसने साम्राज्यवादी अंग्रेज़ की जडों को हिलाने का काम किया।

असहयोग आन्दोलन की योजनाएँ

असहयोग आन्दोलन की कई महत्वपूर्ण योजनाएँ थीं। ये उपनिवेश प्रतिरोध की सशक्त योजनाएँ थीं। इनमें प्रमुख थीं – "

क. सरकारी उपाधियों तथा वैधानिक पदों को छोड दिया जाय और म्यूनिसिपल बोर्ड तथा अन्य संस्थाओं में जो लोग नामज़द हुए हो, वे इस्तीफा दे दें।

ख. सरकारी दरबारों आदि द्वारा किए जानेवाले सरकारी और अर्द्ध सरकारी उत्सवों में भाग लेने से इनकार किया जाय।

ग. राजकीय तथा अर्द्ध राजकीय स्कूलों तथा कालेजों से छात्रों को धीरे-धीरे निकाल लिया जाय।

घ. वकीलों तथा मुवकिलों द्वारा ब्रिटिश अदालतों का धीरे-धीरे बहिष्कार किया जाय और पंचायती अदालतों की स्थापना की जाय।

ङ. फौजी, क्लार्की तथा मज़दूरी करनेवाले लोग मोसोपोटेमिया में नौकरी करने केलिए भर्ती होने से इनकार करें।

च. नई काऊंसिलों के चुनाव केलिए खडे हुए उम्मीदवार अपने नाम उम्मीदवारी से वापस ले लें, और

छ. विदेशी माल का बहिष्कार किया जाय।"[1]

असहयोग के सन्दर्भ में गान्धीजी का कहना था कि अगर लोग निष्ठा के साथ इस कार्यक्रम को अपना ले तो स्वराज्य एक साल में ही मिल जाएगा। इस आन्दोलन ने सारे राष्ट्र में नई हलचल पैदा की। इन सब का चित्रण आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में सशक्त ढंग से हुआ है। उपनिवेश्कालीन भारत में साम्राज्यवादियों के खिलाफ की आवाज़ को लिपिबद्ध करने का काम आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों ने किया।

सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना से उत्पन्न विचार जगत का परिवर्तन तत्कालीन साहित्य में भी परिलक्षित होने लगा था। शिक्षा के प्रसार के कारण पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति से संपर्क बढा। अंग्रेज़ी शिक्षा और साहित्य अनुशीलन में वृद्धी हुई। साधारण जनता भी नागरिक अधिकारों के

[1] डॉ. बी. पट्टाभी सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रस का इतिहास, पृ-210-11

प्रति सजग हो उठी । सन् 1920 में गान्धी जी के आगमन के बाद राजनीतिक गतिविधियाँ तीव्र गति से चलने लगी और स्वाधीनता प्राप्ति तक का यह युग राजनीतिक संघर्ष का काल रहा । राजनीतिक जागृति ने कांग्रस के साथ हिन्दुमहासभा, मुस्लिम लीग और कम्यूनिस्ट पार्टी को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया । इसका जनसाधारण और उपन्यास पर अपेक्षित प्रभाव पडा । इस प्रकार देश की राजनीतिक परिस्थितियों ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को भी प्रभावित किया । इसका सफल परिणाम था प्रेमचंद युगीन और परवर्ती उपन्यास साहित्य ।

इसमें प्रेमचन्द और उनके उपन्यासों का प्रमुख स्थान है । वे एक युगदृष्टा रचनाकार थे । उनकी रचनाओं में गांधीवादी विचारधारा गंभीर रूप में प्रकट हुआ है । वे सच्चे अर्थों में एक साम्राज्यवाद विरोधी रचनाकार थे । डा.रामचन्द्र तिवारी के अनुसार "वे गान्धीवादी आदर्श जीवन प्रणाली तथा सत्य और अहिंसा के प्रबल समर्थक थे । उन्होंने सांप्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, ग्रामसुधार, स्त्रियों की उन्नति, राष्ट्र भक्ति, राष्ट्र भाषा और निजभाषा प्रेम, किसानों-मज़दूरों के प्रति सहानुभूति आदि कार्यों पर बल दिया । प्रेमचंद के उपन्यासों पर गान्धीवादी जीवनदृष्टि का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है ।"[1] उनकी रचनाओं जैसे प्रेमास्त्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि और गोदान में इसी विचारधारा को हम देख सकते हैं ।

साहित्य केवल शब्दों का समूह नहीं है । उसमें राजनीति और संस्कृति का समावेश होता है । उपन्यासकार प्रेमचन्द ने प्रेमाश्रम और उसके बाद के उपन्यासों में देश की राजनीति के यथार्थ को तथा राजनीतिक दासता को

---

[1] डॉ. रामचंद्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ-161

उसके व्यापक आयामों और जटिलता के साथ प्रस्तुत किया । उनकी रचना में उपनिवेशी शासन के प्रति आक्रोश एवं प्रतिरोध के जीवंत चित्रण हुआ है । डा.गोपाल राय के शब्दों में "देश की आज़ादी की समस्या प्रेमचंद केलिए मात्र भावनात्मक अथवा राष्ट्रप्रेम की समस्या नहीं थी, वरन् वह देश के आर्थिक शोषण और दमन से जुडी हुई थी । उन्होंने अपने उपन्यासों में औपनिवेशिक शासन के प्रति अपने विरोध भाव को व्यक्त करने में कोई समझौता नहीं किया है ।"[1] क्योंकि वे एक सशक्त रचनाकार थे । उनके पास शब्द रूपी औजार थे जिनके माध्यम से उन्होंने जनता को जगाया और साम्राज्यवादी शासन के विरोध में खडा कर दिया । इससे अंग्रेज़ी शासक डरते थे । इसका परिणाम था प्रेमचंद की रचनाओं पर रोक लगाना और उनको जेल में डालना ।

साम्राज्यवादी शोषणनीति के खिलाफ उठे असहयोग आन्दोलन को जनता का पूर्ण सहयोग मिला । वे एक जुड होकर इसकेलिए रणभूमि पर उतरी । असहयोग के इस महान आन्दोलन का चित्रण स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में हुआ है । भगवतीचरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' में इसकी स्पष्ट झलक हमें मिलती है । असहयोग पर देश की जनता का पूरा विश्वास था । इसी विश्वास को अपने उपन्यास में भगवतीचरण वर्मा शीतलप्रसाद के वक्तव्य से ऐसे व्यक्त करते है "हमें गान्धी जी का साथ देना चहिए । अगर पूर्ण रूप से हमारा असहयोग सफल हो जाए तो ये दो लाख अंग्रेज़ दूसरे ही दिन जहाज़ों पर लाद कर रवान हो जाएँगे ।"[2] असहयोग आन्दोलन में देश के सभी वर्ग शामिल हुए थे । सारी जनता में एक प्रकार की राष्ट्रीयता का भी रूपायन हुआ था । इसके एक प्रमुख वर्ग था व्यापारी वर्ग । देशी मिल मालिकों का व्यापारी वर्ग चाहे

[1] डॉ. गोपाल राय : हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ-133

[2] भूले बिसरे चित्र : पृ – 445

उन्होंने अपने स्वार्थ सिद्ध हेतु असहयोग को प्रोत्साहन दिए थे, एक संगठित प्रतिरोध केलिए काफी हद तक वे उपयोगी सिद्ध हुए । स्वदेशी आन्दोलन से विलायती माल का लोप होने के कारण देशी मिल मालिकों के व्यापार में वृद्धि हुई और इसी स्वार्थ सिद्धि केलिए वे कांग्रेस को आर्थिक सहयोग देने में पीछे न हुए । 'भूले बिसरे चित्र' के सर लक्ष्मीचन्द्र इसकेलिए उदाहरण है ।

नवीन वैज्ञानिक सुविधाओं और अस्त्र-शस्त्रों सहित निर्ममतापूर्वक शासन कर रहे अंग्रेज़ी उपनिवेशवादियों के सामने भारतीयों का प्रतिरोध कभी – कभी पराजित होता जा रहा था । ऐसी अवस्था में तत्कालीन शासन और सत्ता के प्रति अपनी असहमति प्रकट करते हुए असहयोग आन्दोलन रूपी महान प्रतिरोध का आविर्भाव हुआ था । जिसने पूरे देश में हलचल मचा दी । जनता में एक नयी उमंग आयी । वे अपने पदों को खोने, सरकारी स्कूलों-कालेजों का बहिष्कार करने, अदालतों का बहिष्कार करने केलिए तैयार हो गए । ऐसे देश भर में असहयोग की ज्वाला व्याप्त हो गयी । डा.देवीदत्त तिवारी के शब्दों में "ब्रिटिश सरकार से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग न करना और सत्य पर डटे रहकर अपनी वास्तविक मांग मनवाना ही असहयोग सत्याग्रह कहलाता था ।" [1]

अंग्रेज़ अपने उपनिवेश में शासन को बरकरार रखने और शोषण करने केलिए हिन्दुओं के अलावा देश के मुसलमानों को भी अच्छे-अच्छे पद दिया करते थे । लेकिन समय आने पर उन्होंने अपना असली रंग दिखाया उनकी शोषण नीति से हिन्दू और मुसलमान दोनों बच नहीं सकते थे । इस प्रकार समाज के कुछ सुविधाभोगी वर्ग जो अंग्रेज़ों के नियंत्रण पर रहा था उनके मन

[1] डॉ.देवीदत्त तिवारी : हिन्दी उपन्यास स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध आयाम, पृ-160

में भी विद्रोह भावना पैदा हुई थी । इसी भावना ने बाद में शासन के प्रति असहमति का रूप धारण किया । ऐसे देश की स्वतंत्रता के आन्दोलन में हिन्दू और मुसलमान ने एकजुड होकर भाग लिया । इसका जिक्र करते हुए भूले बिसरे चित्र के ज्ञानप्रकाश कहता है "असहयोग एक तरह से आरंभ हो गया है । इस असहयोग को खिलाफत आन्दोलन से बहुत बडा बल प्राप्त हुआ है । देश के मुसलमानों में इस समय अंग्रेज़ों के विरुद्ध प्रबल भावना जाग उठी है । मद्रास में जो खिलाफत परिषद हुई थी, उसमें देश के मुसलमानों ने असहयोग आन्दोलन के सिद्धांतों को स्वीकार कर लिया है । ये मुसलमान मूलत: भारत वर्ष के निवासी हैं, यह भी मुसलमानों ने अनुभव कर लिया है ।"[1] ऐसे साम्राज्यवाद के विरोध में किए गए असहयोग आन्दोलन में हिन्दु-मुस्लिम एकता को वर्मा जी ने दर्शाया है ।

शोषण और दमन की नीति जहाँ भी हो वहाँ उसके प्रति विद्रोह पैदा होना ज़रूरी है । उपनिवेशवादी अंग्रेज़ों की कूटनीति का प्रतिरोध भारत वासियों ने अपने असहयोग से किया । दिसंबर 1920 के नागपुर अधिवेशन में काँग्रज़ ने जो निर्णय लिया था वह धेरे-धीरे काम में लाने लगे थे । लोग सरकारी उपाधियों का परित्याग करने लगा, धारा सभाओं, अदालतों और शिक्षा संस्थाओं का बहिष्कार करने लगा और घर-घर में इसके बारें में चर्चाएँ भी चलाने लगीं । वर्माजी अपने उपन्यास में इस चेतना की अभिव्यक्ति कुछ पात्रों के माध्यम से यों करते हैं "फरहत्तुल्ला ने ऐलान कर दिया कि महात्मा गांधी और काँग्रस के हुक्म से उन्होंने आज से वकालत छोड दी । यही नहीं थानेदार विक्रम सिंह ने अपनी नौकरी से इस्तीफा दे दिया । जुलूस खत्म होने

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ-347

के बाद बडी शान्दार मीटिंग हो रही है, उसी में अभी-अभी ये ऐलान हुए है। मैं तो उलटे पाव भागा वहाँ से, क्योंकि एक दफा मेरी जी में आया कि मैं भी इस्तीफा दे दूँ ।क्या जोश था वहाँ, क्या सरगर्मी थी ।"[1] यह एक मामूली घटना नहीं थी । देश भर में ऐसे अनेक घटनाएँ घटी जो अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध का सख्त विद्रोह था । इस आन्दोलन ने उपनिवेशी शासन के मर्म पर चोट लगायी ।

साम्राज्यवादी शासन के विरोध में जता संगठित होकर विद्रोह करने लगी । इन सबका चित्रण वर्माजी ऐसे करते हैं - "हडतालें हो रही थीं, चरखा चलाया जा रहा था । जुलूस निकलते थे और खुल्लम-खुल्ला सरकार की निन्दा की जाती थी, अंग्रेज़ों को गालियाँ दी जाती थीं ।"[2] इस प्रकार देश भर में असहयोग की लहर उड रही थी, अंग्रेज़ उससे तडपते थे । लेकिन बीच में उन आन्दोलनों को उपनिवेशवादी अंग्रेज़ ने अपनी दमन नीति के तहत कुचलना शुरू किया । सरकार कडी से कडी दमन चक्र से आन्दोलनों को दबाने की कोशिश कर रही थी । लेकिन जनता में उमड आये आन्दोलन का जोश एवं साम्राज्यवाद के खिलाफ का संघर्ष भावना में कोई बदलाव नहीं आया । वे लिखते हैं – "सरकार जितना ही इस आन्दोलन को दबाने का प्रयत्न कर रही थी उतना ही यह आन्दोलन बढता जा रहा था ।"[3]

कांग्रस के नेतृत्व में चले इस असहयोग आन्दोलन जनता की सक्रिय भागीदारी से ज़्यादातर स्थानों में सफलता के शिखर तक आ गया था । तभी तो इस असहयोग के विरोध में ब्रिटिश सरकार ने अपनी दमन नीति और तीव्र

---

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ-360

[2] भूले बिसरे चित्र : पृ 369

[3] भूले बिसरे चित्र : पृ 376

कर दी । परंतु देश के नवयुवकों ने ब्रिटिश सरकार को सरकार मानना अस्वीकार कर दिया । 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में भगवती चरण वर्मा ने कानपुर की अदालत का चित्र खींचा है, जिसमें अपराधियों ने न्याय और न्यायाधीश दोनों की अवहेलना की है । गंगाप्रसाद ज्वाइंट मजिस्ट्रेट ने जब सफाई सुननी चाही तो जगमोहन नामक कैदी ने कहा- "मैं इस विदेशी शासन की अदालत को नहीं मानता । यह ब्रिटिश सरकार जुल्म पर जुल्म करती जाती है । जालियँ वाला बाग का हत्याकांड इसने किया, इसने बंबई की निहत्थी जनता की भीड पर गोलियाँ चलायीं ।"[1] ऐसे असहयोग रूपी उपनिवेश प्रतिरोध को वर्मा जी ने अपने उपन्यास में कई स्थानों में चित्रित किया है ।

साम्राज्यवादी अंग्रेज़ की कूटनीति युक्त शासन प्रणाली, शोषण और उसके प्रति भारतीय जनमानस में जागृत उठी विद्रूहभावना एवं प्रतिरोध को बाबा नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है । उनका 'बाबा बटेश्वर नाथ' केवल मात्र ऐसा उपन्यास है जिसमें अंग्रेज़ों की साम्राज्यवादी शोषण नीति व उनके द्वारा ढाए गए जुल्मों का चित्रण हुआ है । समय की दृष्टि से भी यह उपन्यास ही उनका ऐसा उपन्यास है, जो एक लंबे कालखंड को समेटता है और अंग्रेज़ी उपनिवेशवाद के शोषण की कथा कहता है । 'बाबा बटेश्वरनाथ' में भी अंग्रेज़ी शोषण नीति के विरोध में पनप उठे असहयोग आन्दोलन का सजीव अंकन हम देख सकते हैं । इस में सारी कहानियाँ एक वटवृक्ष के माध्यम से नागार्जुन ने कहलवाई है ।

---

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ-392

'बाबा बटेश्वर नाथ' में उपन्यासकार ने सन् 1920 के असहयोग आन्दोलन के बारें में लिखा है –'सन् 1920 के अंत में कांग्रस ने असहयोग और बहिष्कार का नया लडाकू प्रोग्राम अपनाया था। बडे नेताओं के इस निर्णय से साधारण जनता में उत्साह की अनोखी लहर फैल गयी। राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम की धारा लोग चेतना के समतल में उतर आयी।' इस प्रकार एक शक्तिशाली महान आन्दोलन को लेकर भारत की जनता ने शोषणकारी एवं दमनकारी अंग्रेज़ राज्य के प्रति अपना सख्त विद्रोह व्यक्त किया। तत्कालीन कुशासन के खिलाफ उभर आए असहयोग का वर्णन बाबा यों करता है – "उन दिनों असहयोग की धूम मची हुई थी....कोई अपनी नौकरी से इस्तीफा दाखिला कर रहा था, कोई कालेज की पढाई छोड रहा था, कोई प्रोफसरी और मास्टरी पर लात मार रहा था। असहयोग की बातों को लेकर पढे-लिखे लोग में खूब चहल-पहल थी।"[1] सच्चे अर्थों में असहयोग का यह आन्दोलन उपनिवेशवादी नीतियों के खिलाफ का सशक्त प्रतिरोध था। इसमें देश की जनता ने अपना तन और मन पूर्ण लगन के साथ अर्पित किया। क्योंकि उपनिवेशकालीन भारत की जनता कई सालों से साम्राज्यवादियों के निर्मम शोषण सहते आ रहे थे।

देश भर में आग के समान फैल गये इस असहयोग के आन्दोलन को भारतवासियों ने आत्मसात कर दिया। इसलिए यह आन्दोलन तेज़ी से व्याप्त होने लगा। अंग्रेज़ी शासक इससे डरने लगे थे। उन्हें अपनी नीतियों को काम में लाने और अपनी मर्ज़ी के अनुसार शासन करने में कठिनाइयाँ आने लगीं।

---

[1] बाबा बटेश्वरनाथ : पृ-90

असहयोग के समय का वर्णन बाबा यों करता हैं – "असहयोग का वह ज़माना अद्‌भुत था । देश का हर हिस्सा नई चेतना से स्पन्दित होकर अंगडाइयाँ ले रहा था । आसाम, बंगाल रेलवे में हडताल हुई । मिदनापौर के किसानों ने लगानबंदी का आन्दोलन छेड दिया । दक्षिण मलाबार के मोपलों ने बगावत कर दी । पंजाब में सरकार के पिट्ठू महत्तों के खिलाफ अकाली सिखों की घृणा भडक उठी ।"[1] भारत की निहत्थी जनता के इस आन्दोलन को अंग्रेज़ सरकार समय समय पर दमित करती रही । उनमें देशी नेताओं सहित सभी स्वाधीनता सेनानियों को दण्ड सहना पडा ।".....गांधी को छोडकर तमाम प्रमुख नेता गिरफतार कर लिए गए – मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु, चित्तरंजन दास, लाला लजपत राय वगैरह । उन्हें जेलों में बन्द कर दिया गया । स्वराजी कैदियों की तादाद तीस हज़ार तक पहूँचा गयी थी ।"[2] ऐसे एक शक्तिशाली देश की शोषण नीतियों के विरुद्ध भारतवासियों ने जिस महान आन्दोलन को जन्म दिया था वह इतिहास के पन्नों में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है ।

इस प्रकार देश में असहयोग रूपी साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन बडे जोश पर चल रही थी । जनता उसमें सक्रिय भाग ले रही थी । अंग्रेज़ी सरकार को उसे जल्द ही जल्द समाप्त कर देने की इच्छा थी लेकिन वे कर नहीं पाए । जनता के इस संगठित प्रतिरोध के जोश को नागार्जुन ने अपने उपन्यास में वाणी दी । बटेश्वरनाथ कहते है- "बबुआ, यह कोई चोरी-छिनारी की गिरफतारी तो थी नहीं, यह स्वाधीनता संग्राम की गौरवमय परंपरा का एक सामान्य प्रदर्शन था । गिरफ्तार होना, जेल के अंदर कैद काटना, लाठियों की

---

[1] बाबा बटेश्वरनाथ : पृ-93

[2] बाबा बटेश्वरनाथ : पृ-93

चोट बर्दाश्त करना, पुलीस और मिलिटरी की फौजी बूटों से कुचला जाना.....इन बातों से ज़रा भी नहीं खबराते थे लोग । सत्याग्रह और पिकेटिंग त्योहार बन गए थे । पुलीस एक को गिरफ्तार करती तो उस एक की जगह पर सौ जवान खडे हो लेते । खरवाले सत्याग्रह या पिकेटिंग केलिए जाते हुए अपने आदमी को माला पहनाकर और टीका लगाकर विदा करते मानो वह शादी करने जा रहा हो । गजब का जोश था बेटा, वह उत्साह का वातावरण था रे !"[1]ऐसी सजीवता ने असहयोग आन्दोलन को महान बनाया ।

असहयोग के इस आन्दोलन ने अंग्रेज़ी उपनिवेशवादियों को जगाया । वे इसको दबाने और व्याप्त होने से रोकने केलिए कई प्रकार की नीतियों को अपनाया । इसका परिणाम था जनता पर हुए निर्मम दमन चक्र । इसके अलावा विभिन्न प्रकार के नियमों एवं कार्रवाइयों को भी उन्हों ने अपनाया था । फिर भी आन्दोलन चलता रहा । इसको 'बाबा बटेश्वरनाथ' में ऐसा चित्रित किया है- "साम्राज्यशाही दमन की कोई सीमा नहीं थी । ओर्डिनेंस् पर ओर्डिनेंस् निकल रहा था । कांग्रेस और उससे संबन्धित संगठन गैर कानूनी करार दिए गए । दस महीने के अंदर नब्बे हज़ार मरदों,औरतों और बच्चों को कैद की सज़ा दी गयी । जेलें ठसा ठस भर चुकी थीं । बेंतें, हंटरों, लाठियों और गोलियों का सिलसिला चला, लेकिन जनता की हिम्मत नहीं टूटी । खबरों पर सख्त सेंसर थी, अखबार ज़्यादातर बन्द कर दिये गए थे । जिनमें सरकार ने ताला जड दिया था; वैसे छापाखानों की भी कमी नहीं थी । आन्दोलन का विस्तार फिर भी कम नहीं हुआ ।"[2] इस प्रकार एक शक्तिशाली देश की सशस्त्र

---

[1] बाबा बटेश्वरनाथ : पृ-101

[2] बाबा बटेश्वरनाथ : पृ-96

सेना के आगे कई प्रकार के शोशण एवं दमन से पीडित जनता ने असहयोग के महान आन्दोलन को छेड दिया ।

'बाबा बटेश्वरनाथ' के ज़रिए उपन्यासकार बीते युग की शोषण व्यवस्था के रोमांचकारी प्रसंगों के वर्णन द्वारा विभिन्न प्रकार के जुल्मों को अनावृत करके अंग्रेज़ों के प्रति घोर घृणा एवं विद्रोह को जगाता है । सच्चे अर्थों में यह विद्रोह उपनिवेशवादी अंग्रेज़ के खिलाफ का सशक्त प्रतिरोध है । उनकी दृढ धारणा थी कि साम्राज्यवादी नीतियों एवं अमानुषिक व्यवहार के द्वारा जुल्म ढाए गए है । इसलिए इसके विरुद्ध की प्रतिक्रिया उभर आना समय की आवश्यकता थी ।

नमक कर नीति और प्रतिरोध

ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारत को छल, कपट, पैशाचिक हिंसा तथा बर्बर बल प्रयोग द्वारा पराधीन किया था । यही उनकी राजनीति थी । ऐसे ब्रिटिश पूँजीपतियों, व्यापारियों और गोरे शासकों ने भारत की सारी संपत्ति को सदियों तक अपने दोनों हाथों से लूटा । अंग्रेज़ों के इस औपनिवेशिक शासन ने भारतीय किसानों, आदिवासियों, मज़दूरों और कारीगारों का निर्मम शोषण किया । भारतीय जनता के साधनों और श्रम के शोषण के बल पर ब्रिटिश पूँजीवाद ने द्रुतगति से अपना विकास करके साम्राज्यवाद का स्वरूप ग्रहण कर लिया । भारतीय संसाधनों की लूट में साम्राज्यवादी अंग्रेज़ ने देशी जनता के नित्योपयोगी नमक को भी नहीं छोडा । देशी जनता की अवश्य वस्तु पर टैक्स एवं नियंत्रण रखकर अंग्रेज़ी सरकार ने अपनी निर्मम शोषण नीति को ज़ारी रखा । उनके ये नियम राष्ट्रवादियों एवं देशप्रेमियों के खून को

उबाल दिया । वे इसके विरुद्ध संघर्ष करने लगे । साम्राज्यवादी शासन ने न केवल भारत का शोषण और भारतीय जनता का उत्पीडन किया बल्कि उसने भारत के स्वाभाविक विकास के मार्ग में अनेक बाधाएँ खडी कीं ।

देशी जनता की नित्योपयोगी वस्तु नमक पर लगाए गए टैक्स एवं नियंत्रण ने लोगों में असंतोष एवं विद्रोह पैदा किया । वे संगठित होकर अंग्रेज़ों की इस राजनीति के विरुद्ध संघर्ष की भूमि पर उतरे । देश भर में इसकी लहरें उठीं । जनता एक साथ मिलकर नमक पर लगाए काले कानून के प्रति अपना प्रतिरोध व्यक्त करने केलिए तैयार हो गए । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रस और गांधी जी ने उसका नेतृत्व किया । देश के कई स्थानों में लोगों ने नमक कानून भंग करने का आन्दोलन चलाया । अंग्रेज़ सरकार की इस कूटनीति के खिलाफ सशक्त प्रतिरोध के रूप में देश भर जत्था, धरणा, सत्याग्रह आदि चलाने लगे ।

उपनिवेशवादियों के कुशासन के फलस्वरूप हुई आर्थिक मंदी ने भारतीय किसान की रीढ की हड्डी तोड दी थी । उन्हों ने नमक जैसी महत्वपूर्ण सर्व सुलभ वस्तु को भी कर के बोझ से दुर्लभ कर दिया । नमक पर लगी कर का कानून सबको अप्रिय एवं सहने के परे थे । अंग्रेज़ों के ऐसे अन्याय को बापु सह न सकते थे । उन्होंने नमक कनून का विरोध करने केलिए दंडी की यात्रा की । दंडी पहूँचकर उन्होंने नमक बनाकर सत्याग्रह आरंभ किया । सारे भारत में 'नमक कानून तोडो' आन्दोलन फैल गया । गान्धीजी ने इस आन्दोलन में आर्थिक प्रश्न को भी जोड दिया, जिससे व्यापारी वर्ग, ट्रेडयूनियन संस्थाओं, मज़दूर एवं कृषकों का सहयोग अधिक मात्रा में मिला । ऐसे एक महान आन्दोलन के रूप में नमक आन्दोलन देश भर में फैल गया । उपनिवेशवादी

अंग्रेज़ के कूटनीतिपूर्ण शासन के विरुद्ध एक और संगठित प्रतिरोध था नमक आन्दोलन।

औपनिवेशिक शासन की शोषण नीति के फलस्वरूप हुए नमक कर नीति ने भारतीय जनता को उत्तेजित कर दिया। उन्हों ने कई तरीकों से इसके विरुद्ध संघर्ष किया । विवेच्य काल के हिन्दी उपन्यासों में इस महान आन्दोलन का गंभीर चित्रण महत्वपूर्ण ढंग से हुआ है।

भगवतीचरण वर्मा एक ऐसा उपन्यासकार है जिन्होंने अपने युगीन सामाजिक यथार्थ एवं इतिहास को मिलाकर एक विशाल चित्रफलक पर चार पीढियों के माध्यम से सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का अंकन किया है। इसमें तत्कालीन भारतीय जनता के जीवन संघर्षों का चित्रण हुआ है । वह संघर्ष एक औपनिवेशिक सत्ता के शोषण भरे शासन के विरुद्ध हुए संघर्ष था । उपन्यास में जिस काल का चित्रण हुआ है वह अंग्रेज़ों का शासन काल था। देश पराधीनता में तडप रहा था। साम्राज्यवादी सत्ता की निर्मम शोषण नीति ने जनता में विद्रोह भावना पैदा कर दी । वे स्वदेशी, असहयोग, सत्याग्रह आदि के ज़रिए औपनिवेशिक शासन के खिलाफ संघर्ष करने लगे। इन्हीं संघर्षों का इतिहास भी है 'भूले बिसरे चित्र'।

साम्राज्यवादी अंग्रेज़ की शोषण नीति के विरुद्ध देश भर में आन्दोलन उभर आने लगा । उसके विभिन्न रूप भी दिखाई पडने लगा । लाहौर अधिवेशन के बाद ब्रिटिश सरकार की छल-कपट भरी नीति के खिलाफ काँग्रस के द्वारे गांधीजी के नेतृत्व में सत्याग्रह आन्दोलन चलाने लगे। उसमें देश के नवयुवक भी शामिल थे। उनमें उमंग थी , उत्साह था, संघर्ष के प्रति मोह था और प्राणों की बाजी लगाने का शौक भी था । गांधी जी ने अपने सत्य,

अहिंसा और त्याग के सिद्धांतों पर अडिग रहकर विद्रोह करने का आह्वान दिया । वे कहते थे "घृणा मत करो, लेकिन भयानक विद्रोह करो; हिंसा मत करो, लेकिन जीवन मरणवाला युद्ध करो ; सबकुछ छोड दो, लेकिन अपने अधिकारों को ज़बर्दस्ती ले लो ।"[1] सत्याग्रह जैसे संगठित प्रतिरोधों से तत्कालीन जनता उपनिवेशवादियों के विरुद्ध खडी हो गई । वे निडर होकर साम्राज्यवादी नीतियों का सामना करने लगी । ऐसी परिस्थिति में विभिन्न प्रकार के प्रतिरोधों के परिणाम स्वरूप नमक कानून भंग करने का आन्दोलन चला । अंग्रेज़ सरकार ने अपने आर्थिक शोषण के तहत नमक जैसी ज़रूरी वस्तुओं पर अधिक कर लगाकर देश का शोषण कर रहा था । इसके विरुद्ध जनता अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगी । इसका सशक्त चित्रण वर्मा जी ने प्रस्तुत उपन्यास में ज्वालाप्रसाद के भाई एवं उच्च शिक्षा प्राप्त काग्रसी कर्यकर्ता ज्ञानप्रकाश और गंगाप्रसाद के सुपुत्र चौथी पीढी के नवल किशोर, विद्या नामक युवती को केन्द्र बनाकर उनके कार्यकलापों से किया है ।

भारत परतंत्रता की चक्की में पिस रहा था । जनता अपने को अपने मंज़िल तक पहूँचने केलिए विभिन्न प्रकार के कष्ट उठा रही थी । साम्राज्यवादी नीतियाँ अपनी विकरालता पर पहूँच चुकी थी । किसानों की हालत दिन प्रति दिन बढती जा रही थी । करों की अदायकी में पडकर भारतीय जनता शोषित होता जा रहा था । ऐसे अवसर पर उपनिवेशवादियों के विरुद्ध की प्रतिक्रिया अनिवार्य थी । इसलिए भारतवासियों ने मिलकर नमक आन्दोलन चलाने का निश्चय किया । यह आन्दोलन कांग्रस ने बहुत सोच समझकर ही किया था । इसकेलिए जनता को जगाने में वे सफल हुए । लाहौर अधिवेशन में अंग्रेज़ से

---

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ-509

पूर्ण स्वतंत्रता को माँगना काँग्रस ध्येय घोषित किया गया । इसकेलिए नेतृत्व के रूप में गांधीजी को कार्यभार सौंपा गया । अधिवेशन में उन्होंने कहा - "मनुष्य स्वतंत्र हैं, अन्याय का सक्रिय विरोध करना मनुष्य का कर्तव्य है, जीवन संघर्ष है, कर्म है ।"[1] गांधीजी ने अपने आह्वान में साम्राज्यवादियों से मुक्ति एवं देश की स्वतंत्रता केलिए जनता से सक्रिय विरोध करने और संघर्ष करने को कहा ।

भारत को अपने कब्जे में करने के बाद उस पर शासन करने केलिए अंग्रेज़ सरकार ने नए-नए शासन तंत्रों और नीतियों का सृजन किया । इसके पीछे आय में बढोत्तरी, भारत के ऊपर के अधिकार ब्रिटेन केलिए अनुकूल बनाना, अपना नियंत्रण बरकरार रखना और ज़्यादा मज़बूत बनाना जैसे लक्ष्य काम कर रहे थे । उनकी यह राजनीति पूर्णत: शोषण पर आधारित थी । इसी के द्वारा वे जनता को सता रहे थे । इसी उद्धेश्य से अंग्रेज़ों ने भारत का शासन तंत्र बनाया था । अपने वाणिज्य अच्छी तरह बढाने तथा उससे खूब पैसा कमाने तथा इंग्लैंड को देने केलिए ज़्यादा कर वसूल करने में उन्होंने ज़ोर दिया था । इसलिए ही जनता की अवश्यवस्तु नमक पर भी कर लगाने और वसूल करने की नीति को उन्होंने अपनाया था ।

साम्राज्यवादी सरकार की कर नीतियों के विरुद्ध काम करने का महान निर्णय 1929 के लाहौर अधिवेशन में लिया था । उसके तहत कांग्रस के नेतृत्व में सिविल नियमों का भंग कर जनता एक औपनिवेशिक शक्ति के प्रति अपना आक्रोश एवं विद्रोह व्यक्त करने लगी । अंग्रेज़ अपनी शोषण नीति के अनुरूप बनाए गए कई प्रकार के कनूनों में सबसे निर्मम एवं भारतीयों के अहितकारी

---

[1] भूले बिसरे चित्र – पृ-524

कानून था नमक कनून । इस कानून को गांधीजी ने सबसे निष्ठूर और अमानवीय घोषित किया । मार्च 2 तारीख को गान्धीजी ने नमक कनून के संबन्ध में वाइसराय को एक खत लिखा । उसमें ऐसा सूचित किया कि "बढती शोषण नीति के कारण जनता दिनों दिन दरिद्र बनती जा रही हैं ... राष्ट्रीय स्तर पर इस नीति ने हमें चापलूसी में धकेल दिया है .... उसने हमारी संस्कृति की आधारशिला को भी उखाड फेंका है .... और वह हमें आद्मीय अध:पतन की ओर उन्मुख किया है ।"[1] उस खत में उन्होंने नमक कनून भंग करने के आगे के कार्यक्रमों के बारें में बताया था । उन्होंने सशक्त शब्दों में सूचित किया कि सरकार की इस कूटनीति के खिलाफ हज़ारों लोग रणभूमि पर उतरेंगे और वे इस काले कानून का भंग करके देश की स्वतंत्रता केलिए संघर्ष करेंगे ।

देश भर में नमक कनून भंग करने का संघर्ष चलने लगा । सरकार इससे डरती थी क्योंकि वे तय नहीं कर पा रही थी कि इस आन्दोलन को कैसे दमित करें । जनता में एक प्रकार का अदम्य जोश आया था । गांधीजी ने जनता को आह्वान दिया कि सरकार के कानूनों का भंग करके अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करें । उपन्यास में ज्ञानप्रकाश कहते है – "स्थिति बहुत साफ तो नहीं है, लेकिन दिखता ऐसा है कि महात्मा के इस पत्र का कोई असर नहीं होना । सत्याग्रह करना पडेगा । सबरमती में चुने हुए सत्याग्रही एकत्रित हो रहे है । बारह मार्च को वे सब महात्मा गांधी के साथ दंडी में नमक कानून भंग करने केलिए निकल पडेंगे ।"[2] इस प्रकार कांग्रस ने औपनिवेशिक शक्ति के

---

[1] बिपनचन्द्र : भारत का मुक्ति संग्राम, पृ-293

[2] भूले बिसरे चित्र : पृ- 348

विरुद्ध सशक्त संघर्ष किया । यह निस्सन्देह साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ का सशक्त पतिरोध है ।

पराधीन देश की जनता में भडक उठी इस विद्रोह भावना को गांधी जी के अहिंसात्मक आन्दोलन ने आत्मबल प्रदान किया । उपनिवेशवादी शासन के खिलाफ नए किस्म की लडाई लडने लगे । उपन्यास में ज्ञानप्रकाश कहता है "जो गलत है उसका विरोध करना हमारा धर्म है । लेकिन यह विरोध अहिंसात्मक होगा । नए किस्म की लडाई लड रहे हैं हम लोग ।"[1] ज्ञानप्रकाश के इन शब्दों में अन्याय के विरुद्ध का आक्रोश हम सुन सकते हैं । इस आक्रोश एवं विद्रोह भावना में तत्कालीन पढी-लिखी युवा पीढी की नई चेतना की झलक है । नवल किशोर नमक आन्दोलन केलिए तैयार होता है । ज्वालाप्रसाद और रुक्मिणी ने उसे रोकने की कोशिश की लेकिन नवल उनकी बातों को माननेवाला नहीं था । वह आन्दोलन में भाग लेने और जेल जाने के अपने निर्णय पर अडिग रहा ।

भारत के इस स्वतंत्रता संग्राम में हज़ारों लोग अपना सब कुछ त्याग करके भाग लेने लगे । नवल किशोर नमक स्त्याग्रह के पहले जत्थे में जाने का तय लेता है । ज्ञानप्रकाश ने उसका नाम दूसरे जत्थे में प्रविष्ठित किया था पर नवल ने कहा, - "नहीं ज्ञान बाबा, पहले जत्थे में मैं जाऊँगा । आपको तो कम-से-कम एक सप्ताह जेल से बाहर रहना चाहिए । इस आन्दोलन को संगठित भी तो करना है ।"[2] नवल में संग्राम में भाग ले ने का अदम्य उत्साह था, उमंग थी और वह पूरी निष्ठा के साथ भाग लेता भी है । नवल क्या करने जा रहा है इसके संबन्ध में घर की स्त्रियों को कोई जानकारी नहीं थी । उन्हों ने सोचा कि

---

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ- 352

[2] " : पृ- 353

इस नवल को नमक बनाने की क्या ज़रूरत पडी है, नमक तो लुनिया बनाते हैं । उपन्यास में ज्वालाप्रसाद अपनी बहिन भीखू को समझाता है कि –"तुम समझे नहीं भीखू ! वह नमक बनाने का पेशा नहीं अपना रहा है, वह तो नमक बनाकर कनून तोड रहा है – जेल जाने केलिए ।"[1] ऐसी तत्कालीन अमानवीय व्यवस्था के विरुद्ध एक नया आन्दोलन खडा करके युवा पीढी औपनिवेशिक शक्ति के हाथों से देश को मुक्त कराने का प्रयत्न कर रही थी ।

इतिहास ने यह साबित किया है कि महान लक्ष्यों की प्राप्ति केलिए व्यक्ति को अपने वैयक्तिक सुख-सुविधाओं को त्यागना ज़रूरी है । देश की स्वतंत्रता केलिए लडनेवाले नवल को भी अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं को खोना पडता है । पहले वह विलायत जाकर पढने की सुविधा का इनकार करता है फिर रायबहादुर कामतानाथ की बेटी उषा के साथ के संबन्ध को तोड देता है । इस प्रकार सारे बंधनों से मुक्त होकर वह आन्दोलन में सक्रिय भाग लेता है । उषा जब आन्दोलन से उसको पीछे हटाने की कोशिश करती है तब नवल कहता है – "नहीं उषा रानी कदम आगे बढ चुका है, अब पीछे लौटना असंभव है । सब तैयारी कर ली है मैं ने ।"[2] नवल अपने जीवन को संघर्ष ही मानता है, उपनिवेशवादी ताकतों के विरुद्ध का संघर्ष ।

साम्राज्यवादियों के विरुद्ध के संघर्षों एवं सत्याग्रह के उद्देश्य और स्वरूप को समझने केलिए एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया जाता है । उपन्यास में इस प्रकार के एक आयोजन केलिए नवल किशोर भी ज्ञानप्रकाश

---

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ- 554

[2] " : पृ-539

के साथ चल पडता है । उसका विवरण यों दिया है – "जिस समय वे दोनों सभा स्थल पर पहूँचे वहाँ एकत्रित भीड ने जय-जयकार के साथ उनका स्वागत किया । मंच पर सत्याग्रह करनेवाली टोली के लोग बैठे थे, नवल भी वहाँ जाकर बैठ गया । हज़ारों आखें देश पर बलिदान होने वाले उन लोगों को देख रही थीं ।"[1] ऐसे अवसर पर नवल के अंदर एक नयी उमंग धीरे-धीरे उमडने लगी, उसमें असीम उल्लास भरने लगा । उसने निश्चय किया कि वह ब्रिटेन के खिलाफ संघर्ष करेगा और कानून तोड कर जेल जाने केलिए पूर्णत: तैयार है । औपनिवेशिक सत्ता के खिलाफ हुए इस निर्णय के समय वह सब कुछ भूल जाता है, अपने परिवार को, अपने सगे संबन्धियों को तथा अपने चाचा ज्ञानप्रकाश को भी भूल जाता है । सत्याग्रहियों को वहाँ उपस्थित विशाल जनसमूह का समर्थन और आशीर्वाद मिल रहा था । जनता के मन में अंग्रेज़ों के प्रति घोर विद्रोह भावना पैदा हुई थी । वे मिलकर औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध संग्राम में भाग लेने लगे ।

'भूले बिसरे चित्र' का नवल किशोर एक ऐसा युवक है जो अपने सब कुछ त्याग कर कांग्रस के देशव्यापी लहर में धुलमिल जाता है । नमक आन्दोलन में भाग लेकर उसने विदेशी दासता से मुक्ति का संघर्ष किया । इसकेलिए उसने सक्रिय रूप में आन्दोलन में भाग लिया था । नवल का चुने हुए सत्याग्रहियों के साथ जुलूस में भाग लेने का चित्रण वर्मा जी ने यों किया है – "नवल के बंगले पर प्राय: साढे दस बजे यह जुलूस पहूँचा । उस समय तक जुलूस में प्राय: बीस हज़ार आदमियों की भीड हो गयी थी । वे तरह-तरह के नारे लगा रहे थे । भीड एक स्वर में चिल्ला उठी नवल किशोर ज़िन्दाबाद !

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ- 541

नवल किशोर की जय ! ....रुक्मिणी ने काँपते हाथों से नवल का तिलक किया और उसकी आरती उतारी ।"[1] ऐसे नवल सत्याग्रहियों में शामिल हो गया । उनके साथ विद्या भी जाती है । जुलूस आगे बढा । वे सब नमक कानून भंग करने केलिए आगे बढे । उनके मन में अंग्रेज़ों के विरुद्ध सख्त नफरत थी । उन्होंने सत्याग्रह को अपने प्रतिरोध का औजार बनाया । इस प्रकार उपनिवेशी नीतियों के खिलाफ के आन्दोलन ने सशक्त रूप धारण कर लिया ।

भारतीय युवा मन में अंग्रेज़ी हुकूमत के खिलाफ उभर आयी विद्रोह भावना और उससे बनी नयी चेतना को भगवती चरण वर्मा ने पूरी जीवंतता के साथ चित्रित किया है । इन्हीं चेतनाओं के चित्रण के साथ-साथ उस समय की पुरानी पीढी के चिंतन को भी उपन्यास में उभारा गया है । वर्मा जी नयी पुरानी पीढी के विचारों को, युगीन यथार्थ एवं नयी सामाजिक क्रांति को समझते हुए तथा समझाते हुए उपन्यास के अंत में अपना वक्तव्य यों व्यक्त करते हैं – "दो बूढे, जिन्हों ने युग देखा था, ज़िन्दगी के अनेक उतार चढाव देखे थे जिन्होंने, जिनके पास अनुभवों का भंडार था, विवश थे, निरुत्तर थे । और दूर हज़ारों, लाखों, करोडों आदमी जीवन और गति से प्रेरित नवीन उमंग और उल्लस लिए हुए एक नवीन दुनिया की रचना करने केलिए चले जा रहे थे ।"[2]

हर गौरवपूर्ण आन्दोलन के पीछे किसी न किसी ज्वलंत समस्या का होना अनिवार्य है । देशी जनता के जीवन को झकझोर करनेवाले नमक कानून के विरुद्ध हुए संघर्ष के पीछे भी शोषण रूपी महान समस्या रही थी ।

---

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ- 503

[2] भूले बिसरे चित्र : पृ- 542

इसलिए इसके प्रति लोगों में चेतना आयी और वे प्रतिरोध की भूमि पर उतर आए।

औपनिवेशिक शासनकाल में भारतीय जनता पर थोपे गए काले नियम 'नमक कानून' और उसके विरुद्ध लोगों में आए प्रतिरोधी चेतना और संघर्ष का चित्रण **'मैला आँचल'** में फणीश्वरनाथ रेणु ने अत्यंत मार्मिक ढंग से किया है। 'मैला आँचल ' उपन्यास का कथ्य काल भारत की आज़ादी के कुछ साल पहले के और कुछ साल बाद के हैं। इसमें चित्रित स्थान तो देश के सर्वाधिक पिछडे राज्य बिहार के पिछडे जिले पूर्णिया के उत्तर में मेरीगंज नामक गांव से जुडा है। इस उपन्यास में रेणु ने उस अंचल के निवासियों की निर्धनता, उनका मानसिक पिछडापन, ज़मीन्दार और तहसीलदार का शोषण, जातिगत आधार पर आपसी फूट और कमीनगी आदि का चित्रण किया है। वहाँ की जनता की महान समस्या है अंधविश्वसग्रस्तता और अशिक्षा। उस ग्रामीण अंचल की निर्धनता का कारण सदियों से विदेशी और भारतीय सामंतों द्वारा किए गए शोषण है। इसके अलावा वहाँ की जनता विभिन्न प्रकार की बिमारियों से तडप रही हैं। इसमें पिलही, काला ज्वर, मलेरिया, गठिया आदि रोग मौजूद हैं। इसी के कारण कई लोग मर जाते हैं लेकिन गांववाले इसको किसी डायिन के कारण समझते हैं। यहाँ इस गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास, रूढिवादिता आदि का कारण ज़मीन्दार, तहसीलदार और धनी किसानों द्वारा किए गए गरीबों का शोषण है।

पराधीन भारत में किसान और आम आदमियों की ज़िन्दगी अत्यंत शोचनीय थी। वे विभिन्न प्रकार के शोषण के शिकार होते जा रहे थे। एक ओर अंग्रेज़ों की निर्मम दमन और शोषण नीति दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में हो

रहे विभिन्न शोषण । जो भी हो तत्कालीन जनता अमानवीय जीवन जीने केलिए अभिशप्त थी । ऐसी स्थिति में तत्कालीन शासन एवं व्यवस्था के खिलाफ ग्रामीण जनता में थोडी सी चेतना आई थी । इसका कारक बने महात्मा गांधी । उस समय देश भर में स्वतंत्रता आन्दोलन ज़ोर पकड रहा था। गांधी जी के नेतृत्व में गांव-गावों में चेतना की चिंगारियों को देशप्रेमियों ने फैलाया । मैला आँचल में "किसानों की आर्थिक, सामाजिक दशा के साथ उनमें आती राजनीतिक चेतना को भी रेणु ने पर्याप्त विस्तार और समझ के साथ चित्रण किया है । इस राजनीतिक चेतना का ग्रामीण जीवन में प्रवेश गांधी जी के नमक सत्याग्रह आन्दोलन से होता है ।"[1] उपन्यास के बालदेव चुन्नी गोस्सी, बावनदास, कालीचरण आदि पात्रों के माध्यम से रेणु ने समकालीन राजनीति के अनेक पक्षों का चित्रण किया है।

रेणु जी का पहला उपन्यास है 'मैला आँचल' । इसमें चित्रित भारत पराधीन और स्वाधीन दोनों समय का है । इसलिए उपनिवेश काल की कुछ ज्वलंत समस्याओं का अंकन होना ज़रूरी है । इसमें 'मेरीगंज' गांव की सुन्दरता और कुरूपता दोनों का समान रूप से चित्रण किया गया है । स्वयं रेणु ने इसके संबन्ध में कहा है – "इसमें फूल है, शूल भी, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड भी है , चंदन भी, सुन्दरता भी है , कुरूपता भी – मैं किसी दामन को बचाकर नहीं निकल पाया ।"[2] इसी वाक्य से ही पूरे उपन्यास की कथा हम अनुमान कर सकते हैं ।

---

[1] गोपाल राय : हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ- 243

[2] फणीश्वरनाथ रेणु : मैला आँचल, पृ- 5

उपन्यास में सन 1930 की कुछ राजनीतिक घटनाओं का सजीव चित्रण मिलता है। रेणु ने दिखाया है कि सन 1930 में चम्पानपट्टी में गांधीजी की एक सभा आयोजित की गयी, जिसका आयोजन जिले की राजनीति के जनक राधाकृष्ण चौधरी की धर्मपत्नि श्रीमति आभाराणी गांगुली ने किया था। इस सभा में एक गीत गाया गया था। वह इस प्रकार है-

"गंगा रे जमुना की धार
नयनवाँ से नीर वही।
फूटल भरथिया के भाग,
भारत माता रोयी रही।"[1]

इस गीत को सुनकर और उससे प्रभावित होकर बावनदास, बालदेव, चुन्नीदास गोसाई आदि सुराजी पार्टी के सदस्य बन गए। इससे यह व्यक्त होता है कि साम्राज्यवादी शासन के खिलाफ के संग्राम में, लोकगीत, जागरण का प्रमुख माध्यम था। इसके द्वारा रेणु ने यह दिखाने का प्रयास किया कि राष्ट्रीय चेतना की लहर किस तरह देश में फैल रही थी।

उपन्यास की सबसे बडी शक्ति है समृद्ध जीवनानुभवों की अभिव्यक्ति। इन अभिव्यिक्तयों को सामाजिक जीवन की सच्चाइयों के प्रति रचनाकार का समर्पण मान सकते हैं। स्वाधीनता प्रप्ति के बाद उपन्यास तो बहुत सारे लिखे गए। लेकिन उनमें से कम उपन्यास ही उपलब्धि के शिखर तक पहूँचे हैं। 'मैला आँचल' को स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की एक ऐसी कृति मानता है जिसने न केवल उपन्यास को नई शुरूआत दी बल्कि स्वयं एक उपलब्धि बन

[1].फणीश्वरनाथ रेणु : मैला आँचल,पृ-104

गयी । इसमें साम्रज्यवाद के विरुद्ध आम जनता के संग्राम को भी । रेणु ने वाणी दी है ।

उपनिवेशकालीन ज्वलंत समस्याओं को पूरी सजीवता के साथ चित्रित करने में, उसी के द्वारा जनता में राष्ट्रीय भावना पैदा करने में तथा उनमें साम्राज्यवादी शोष्ण नीति के खिलाफ विद्रोह अभिव्यक्त करने में उपन्यास विधा ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है । उपन्यास के ज़रिए रचनाकारों ने उपनिवेशवादी शक्तियों के खिलाफ जो आवाज़ उठाई है वह अत्यंत सराहनीय हैं । ऐसे औपनिवेशिक प्रतिरोध करते रहे कई उपन्यासकार हिन्दी में सक्रिय रहे थे । इन उपन्यासकारों में प्रमुख स्थान अलंकृत करनेवला उपन्यासकार है नागार्जुन । उनके **'बाबा बटेश्वरनथ'** नामक उपन्यास औपनिवेशिक प्रतिरोध को अभिव्यक्ति देनेवाला सशक्त एवं श्रेष्ठ उपन्यास है ।

अंग्रेज़ी उपनिवेशवादी शक्तियों ने दो सौ सालों तक भारत को अपने अधीन में रखकर पूरा का पूरा शोषण किया । इसकी वजह से एक सुसंपन्न देश की स्थिति बदत्तर हो गयी । उनके कुशासन एवं दमन नीति ने भारतीय जनता के आत्मबल को तहस-नहस कर दिया । जनता अमानवीय जीवन जीने केलिए अभिशप्त बन गई । ऐसी स्थिति में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रस तथा अन्य राष्ट्र प्रेमियों के आयोजन में एक ऐसी प्रतिक्रिया यानी संघर्ष उभर आया जिसने साम्राज्यवादियों को देश से भगाने का सशक्त आन्दोलन चलाया ।

नागर्जुन का 'बाबा बटेश्वरनथ' एक ऐसा उपन्यास है जो औपनिवेशिक दासता के विरुद्ध के संघर्ष का सजीव अंकन प्रस्तुत करता है । उसमें अंग्रेज़ों की साम्राज्यवादी शोषण नीतियों व उनके द्वारा ढाए गए जुल्मों का चित्रण हुआ है । समय की दृष्टि से भी यह उपन्यास ही उनका एकमात्र उपन्यास है,

जो एक लंबे कालखंड को समेटता है और अंग्रेज़ी उपनिवेशवाद के शोषण की कथा कहता है । अंग्रेज़ों द्वारा किए गए शोषण तथा अत्याचारों और उसके विरुद्ध हुए संघर्ष की कहानियां उपन्यासकार ने वटवृक्ष द्वारा कहलवाई हैं।

उपनिवेशी शासन काल में जनता दमघोंटु वातावरण में जीने केलिए मज़बूर थी । इसलिए वे धीरे-धीरे इससे मुक्ति चाहने लगी थी । यह एक प्रकार का राष्ट्रीय जागरण था । इसके पीछे उपनिवेशवादी ताकतों के विरुद्ध की विद्रोहभावना काम करती थी । ऐसे उभर आए एक महान प्रतिरोध था नमक कर नीति के खिलाफ का आन्दोलन । 'बाबा बटेश्वरनाथ में' नमक कर नीति के प्रति हुए महान अन्दोलन का चित्रण नागार्जुन ने यों किया है – "दस वर्ष बाद 1930 में फिर कांग्रस ने मोर्चाबंदी की । जनविरोधी कानूनों से ऊबे हुए लाख-लाख लोग फिर मैदान में निकल आए । फिर गांधी ने कहा कि अहिंसा में बट्टा न लगे तो मुझे हार भी कबूल होगी । .... इस बार महात्मा अपने आश्रमवासी चेलों के सथ नमक कनून तोडने निकले । लेकिन कानून तोडने का यह आन्दोलन थोडे ही अरसे में ज़ोर पकड गया ।"[1] गांधीजी के नेतृत्व में चले यह आन्दोलन अंग्रेज़ों के काले नियम के विरुद्ध हुए सशक्त आन्दोलन था । इसको देश की जनता का समर्थन और सहयोग बहुत जल्दी ही मिला थ । क्योंकि नमक जैसी सर्वसुलभ एवं नित्योपयोगी वस्तु पर भी लगाए गयी कर नीति अथवा काली नीति को जनता सह न सकती थी ।

अंग्रेज़ी उपनिवेशवादियों की शोषण नीति ऐसे भारतीय समाज के सभी वर्गों को सताते रहे । नमक कर नीति के आगमन से समाज के निम्न स्तर के लोग भी अत्यंत दुर्घट जीवन जीने केलिए मज़बूर बने । लोगों ने अपने

---

[1] बाबा बटेश्वरनाथ : पृ-97

सबकुछ राष्ट्रवादी आन्दोलन में न्योछावर कर दिया । इसकेलिए गांधी जी के अहिंसा और स्त्य के आधार पर चले आन्दोलन ने उन्हें प्रेरित किया । इस प्रकार गांव और शहर के सभी लोग नमक आन्दोलन की ओर आकृष्ट हुए और साम्रज्यवादी शोषण नीति के खिलाफ संघर्ष करने चले । उपन्यास में सत्यवान और उनके साथियों द्वारा किए गए आन्दोलन का जिक्र बटेश्वरनाथ यों करते हैं -"नमक कानून तोडने का यज्ञ जिले में कहीं न कहीं आए दिन होता ही रहता था । दयानाथ ने सावन की पूर्णिमा के दिन यहीं मेरे छाँह में नमक बनाना शुरू किया । दारोगा को खबर दी जा चुकी थी । पाँच-साथ चौकीदार, दो दफादार, पाँच कांस्टेबल और दारोगा मौके पर हाज़िर थे ..... बूढे, बच्चे और जवान सैकडों की तादाद में तमाशा देखने आए थे । काफी दूर पर उधर अलग खडी औरतें भी 'गांधी बाबा' का यह यज्ञ देखने आई थीं ।"[1] एक निर्मम शोषणकारी, दमनकारी विदेशी सत्ता के खिलाफ के इस आन्दोलन में देशी जनता की भागीदारी अविश्वसनीय थी । क्यों कि इसकेलिए समाज के सभी तबके के लोग उतरे थे ।

"उपन्यास एक कल्पित यथार्थ है, पर उसका बीजाधार है अनुभव ।"[2] शंभुनाथ की यह उक्ति उल्लेखनीय है । अपने सामाजिक जीवन के अनुभवों से जो पाठ रचनाकार को मिलते है उससे वे महान एवं सशक्त रचनाओं का सृजन करते है । उसमें अपने या किसी अन्य देश का इतिहास, वर्तमान और भविष्य के प्रति आशा निहित होती हैं । रचनाकार समाजोन्मुख होने के कारण सामाजिक समस्याओं का अंकन रचना में होना अनिवार्य है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकार भी ऐसे थे जिन्हों ने अपने देश की

[1] बाबा बटेश्वरनाथ : पृ-99

[2] वर्तमान साहित्य : जुलाई 2011

समस्याओं के प्रति सजग थे । साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के चित्रण करने में भी वे सक्रिय रहे थे । इसका सफल परिणाम था 'बाबा बटेश्वरनाथ' जैसे उपन्यास । इसमें – "औपनिवेशिक शासन में किसानों पर ज़मीन्दारों और सरकारी अमलों, विशेषकर पुलिस के अत्याचारों, किसानों की निर्धनता, अकाल और भुखमरी, बाढ और उससे उत्पन्न तबाही स्वाधीनता की लडाई आदि का इतना जीवंत चित्रण अन्यत्र नहीं मिलता ।"[1] नागार्जुन केलिए औपनिवेशिक काल के इस इतिहास का चित्रण आसान था क्योंकि उनकेलिए यह भोगा हुआ यथार्थ था ।

देश की जनता ने नमक कर नीति के विरुद्ध अपना तन और मन लगाकर संघर्ष किया । उनके यह संघर्ष अपनी स्वाधीनता का संघर्ष था । इसलिए वे स्वाधीनता आन्दोलम की बलिवेदी पर संगठित होकर एकत्रित हुए । इसकेलिए तत्कालीन कांग्रसी और देशप्रेमि नेताओं ने आमरण प्रयत्न किया । 'बाबा बटेश्वरनाथ' के दयानाथ नमक नीति का भंग करते हुए नमक बनाते है । नमक बनाने के बाद दयानाथ ने कहा- "भाइयों, इसे आप मामूली मिट्टी न समझो । यह तो स्वाधीनता दिलानेवाली दवा है । इसके ज़र्रे-ज़र्रे से अंग्रेज़ सरकार खौफ खाती है । इस नमक की एक चुटकी एक ओर ज़ालिमों का सौ मन बारूद दूसरी ओर वह इसकी बराबरी नहीं कर सकता । यह नमक नहीं है ..... लीजिए, दो आने में एक दोना मिलेगा ... यह खाने का नमक नहीं है, तावीज़ में डालने का नमक है ।"[2] इतने में अंग्रेज़ी अफसर आकर बंद करने की आज्ञा देता है और उन लोगों के हाथ में हथकडी डालते हैं तो उन्होंने

---

[1] गोपालराय : हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ- 218

[2] बाब बटेश्वरनाथ : पृ- 98

ऊँची आवाज़ में चिल्लाए... "अंग्रेज़ी राज नाश हो !" इस प्रकार एक विदेशी सत्ता की शोषणभरी कूटनीति के विरोध में भारतीय जनता ने कांग्रस के नेतृत्व में महान संग्राम चलाया। इन सबका जीवंत चित्रण नागार्जुन ने 'बाबा बटेश्वरनाथ' में कियाहै।

देशी जनता की अवश्य वस्तु पर लगाए कर नीति के विरोध में देश भर में आन्दोलन चला। इस आन्दोलन की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि पहले स्वाधीनता की यह लडाई कुछ पढे-लिखे मध्यवर्ग तक सीमित थी। लेकिन गान्धीजी के नेतृत्व में हुए इस नमक आन्दोलन में पूरे समाज का योगदान हम देख सकते हैं। उपन्यास में बाबा कहते हैं - "आज़ादी केलिए जो समझदारी पहले थोडे-से पढे-लिखे लोगों तक सीमित थी उसे गांधीजी आम पब्लिक तक ले आए। यहाँ उनकी सबसे बडी खूबी मैं मनता हूँ।"[1] ऐसे एक ताकतवार उपनिवेशी शक्ति के खिलाफ भारत की जनता ने संगठित होकर संघर्ष किए। यह सच्चे अर्थों में साम्राज्यवाद के विरुद्ध का प्रतिरोध था।

एक पराधीन देश में तत्कालीन शासन के प्रति जनता में विद्रोह आना स्वाभाविक है। इन विद्रोहों और आन्दोलनों को अंग्रेज़ी शासक बडे लगन के साथ देखते थे। इसलिए वक्त आने पर उसे रोकने केलिए वे मज़बूर बने। उनकी एक समस्या यह थी कि जनता अहिंसा और सत्य के मार्ग पर चलकर ही सघर्ष कर रहे है। इसलिए उनके ऊपर जल्द ही जल्द एक आक्रमण और दमन करने की क्षमता अंग्रेज़ों में नहीं थी। इसपर अपना नियंत्रण रखने केलिए उन्होंने आन्दोलनकरियों को अधिकाधिक मात्रा में गिरफ्तार करके जेलों में रखा और रौलट एक्ट जैसे नए नए काले नियमों को बनाकर

---

[1] बाब बटेश्वरनाथ: पृ- 95

आन्दोलन को दमित करते रहे कई लोगों को इस प्रकार जेल जीवन भोगना पडा था । उपन्यास में कहा है- 30-33 के आन्दोलन में जानू राउत दो महीने जेल भी रह आया था । नमक कनून तोडने के दिनों में बस्ती रूपउली के तीन आदमी गिरफ्तार हुए थे । 'जानु राउत,दयानाथ राय और वीरभद्र झा- जितने लोगों को पकडकर जेलों भरा देते थे उसके दुगुने और चुगुने आन्दोलन में भाग लेते रहे थे । इस प्रकार एक महान आन्दोलन भारत भूमि पर चला जो उपनिवेशी शोषण व्यवस्था की जडों को हिलाने का ताकतवाला आन्दोलन था ।

समग्र रूप से स्वाधीनता के बाद का हिन्दी उपन्यास भारतीय इतिहास के बहुत से स्तरों और आयामों को अभिव्यक्त करने में सफल हुआ है । स्वतंत्रता पूर्व एवं परवर्ती भारत के इतिहास को कथाफलक में स्थान देकर एक श्रेष्ठ उपन्यास की रचना करने में उपन्यासकार अमृतराय सफल हुए । उनका **'बीज'** एक ऐसा उपन्यास है जिसमें भारत की स्वतंत्रता केलिए किए विभिन्न आन्दोलनों का सजीव चित्रण है । एक ताकतवार देश के शोषण और आतंक से पीडित जनता के विद्रोह को समग्रता में चित्रित करने का प्रयास अमृतराय ने 'बीज' में किया है ।

उपन्यासकार अपने समय की ज्वलंत समस्याओं को बडे जोश के साथ अभिव्यक्त करते हैं । उसमें इतिहास भी होता है और वर्तमान भी । जो भी हो वह मानव जीवन की विभिन्न झाँकियों को प्रस्तुत करता है । अज्ञेय जी के अनुसार - "ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो 'उपन्यास' मानव के अपनी परिस्थितियों के साथ संबन्ध की अभिव्यक्ति के उत्तरोत्तर विकास का

प्रतिनिधित्व करता है ।"[1] उपन्यास में सामाजिक जीवन के हर पहलू जैसे उसके विकास, परिवर्तन आदि प्रतिबिंबित होता है । तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं को वाणी देने में उपन्यास नामक विधा को जो स्थान है वह अन्य साहित्यिक विधा में नहीं है । उपन्यासकार अमृत राय नेभी अपने समय की राजनीतिक समस्याओं का सही अंकन किया है ।

'बीज' उपन्यास में उपनिवेशित भारत के सामंतीय समाज और उस समय की राजनीति से पनपनेवाली समस्त विदेशी ताकतों के खिलाफ क्रांति के बीज वर्तमान है । "सामाजिक और राजनीतिक जडता के विरुद्ध जनवादी चेतना के स्वर को बुलंद करने केलिए हिन्दुस्तानी स्वराज्य आन्दोलन के युग में जो बीज बोये गए थे,वे ही 'बीज' उपन्यास के कथ्य है ।"[2] उपन्यास के ज़रिए रचनाकार यह साबित करना चाहता है कि जब तक क्रांति के बीज बार-बार नहीं बोए जाएँगे तब तक आज़ादी हाज़िल नहीं हो सकेगी । 'बीज' में स्वतंत्रता आन्दोलन की कथा अंकित है जिसमें अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध संघर्षरत देशप्रेमी और आन्दोलनकारी व्यक्तियों की उपनिवेश विरोधी बुलंद आवाज़ हैं । उपन्यास का नायक सत्यवान एक संघर्षशील ओजस्वी पुरुष है । वह अंग्रेज़ी हुकूमत से कडी नफरत करता है । वह अपने वतन की आज़ादी केलिए कुरबानी देने को तैयार है ।

सत्यवान पहले गांधीवादी बनकर साम्राज्यवादी शक्ति के खिलाफ के संघर्ष में उतरते हैं । लेकिन बाद में वह वीरेन्द्र के परिचय में आकर मार्क्सवाद से आकृष्ट होकर साम्यवादी बन जाता है और अपने औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध के संघर्ष को और भी तीव्र बना देता है । "देश के प्रति गहरा प्यार,

---

[1] अज्ञेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ-84

[2] डा. बदरी प्रसाद : प्रगतिवादी हिन्दी उपन्यास, पृ-146

अंग्रेज़ों से उतनी ज़बर्दस्त नफरत, सादा जीवन और देश केलिए कोई भी कुरबानी बडी नहीं है - ये चंद बातें उसके चरित्र का अंग हो गयी थी । यही उसकी राजनीति का ककहरा भी था ।"[1] यही सत्यवान अपने लडकपन में गांधीजी के नमक आन्दोलन से प्रभावित होकर देश केलिए संघर्ष करने में उतर आए थे । उनकी यादों में बचपन में हुए उस महान आन्दोलन के लोमहर्षक, जोश भरे दृश्य झांकने लगे.... "जब अशर्फी पार्क में नमक बनाया जाता था और सडकों पर हज़ारों आदमियों के जुलूस निकलते थे ..... जब वालंटीयर 'आज़ादी या मौत' का बिल्ला सीने पर लगाए जुलूस के आगे-आगे चलते थे .... जब मीटिंग से ज़रा हटकर बिसाती गांधी और जवाहर, सरदार, भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त के बैज बेचते थे जिन्हं नौजवान बडी आन बान से अपने सीने पर टाँग लेते थे ।"[2] ऐसे देश भर में चले नमक कर नीति के खिलाफ के आन्दोलन को अत्यंत सजीव ढंग से 'बीज' में अमृतराय ने चित्रित किया है ।

एक पराधीन देश की जनता में आयी चेतना पूरे देश पर व्याप्त होने लगी थी । अंग्रेज़ी हुकूमत ने इस चेतना को अपनी निर्मम दमन नीति के द्वारा दमित करने का प्रयास किया । लेकिन यह आन्दोलन यूँ ही दबने में तैयार न था । उसमें बच्चे-बूढे जवान सभी शामिल थे । क्योंकि उनकेलिए यह संग्राम केवल नमक की उपलब्धि केलिए किए गए संघर्ष न होकर अपने देश की स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता का संघर्ष था । सत्यवान पुरानी यादों में आकर सोचते है "कैसा मज़ा आता था गला फाड-फाडकर नारे लगाने में : अशर्फी

---

[1] बीज : पृ – 17

[2] बीज : पृ -17

पार्क में वह जब नमक बनाया जा रहा था तब उस नमक के कडाहे केलिए पुलीसवालों और वालंटीयरों में कैसी छीना-झपटी हुई थी ! वह दिन भी मज़ेदार थे !"[1] इस प्रकार अपनी पुरानी यादों के द्वारा उस गौरवमय अतीत को चित्रित कर साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को अमृतराय ने 'बीज' द्वारा हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया। यह उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता की स्पष्ट झलक है। जीवन में चाहे कोई भी परिवर्तन आए हो हमें अपने इतिहास को न भूलना चाहिए।

यशपाल के सन् 1974 में प्रकाशित एक महत्वपूर्ण उपन्यास है **'मेरी तेरी उसकी बत'**। इसमें उन्होंने आधुनिक भारतीय इतिहास के एक विस्तृत फलक को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसमें अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद के विरोध में चले स्वाधीनता आन्दोलन के गांधी युग के कथा संसार के रूप में अनावृत हुआ है। परधीन भारत की ज्वलंत समस्याओं का सजीव अंकन करने के साथ-सातह उसके फलस्वरूप देश में पनप आये उपनिवेश विरोधी संग्रामों का भी चित्रण यशपाल जी ने अपने उपन्यास में किया है। डा. रणवीर रांग्रा के अनुसार - "यह प्रथम महायुद्ध से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक के हमारे राष्ट्रीय जीवन का चलचित्र है और हमारे दीर्घकालीन राजनीतिक संघर्ष की इस दु:खद परिणति को बडी बारीकी से उकेरता है कि आज़ादी के जिन रंगीन सपने को संजोये असंख्य नौजवान हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर झूल गए थे।"[2] इसमें स्वदेशी आन्दोलन, नमक आन्दोलन, भारत छोडो आन्दोलन आदि आते हैं।

---

[1] बीज : पृ-18

[2] डॉ. रणवीर राँग्रा :समकलीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका, पृ- 33

एक शोषण व्यवस्था के तहत चल रही साम्राज्यवादी कूटनीति के विरुद्ध देश की जनता में आए संगठित प्रतिरोध था नमक कर नीति के विरुद्ध का आन्दोलन । उसमें पूरे देशवासियों ने आत्म समर्पण के साथ उतर आया । गांधीजी ने उनको चेतना दी और मार्गदर्शक भी बना । उपन्यास में उसका जिक्र ऐसे हुआ है -"गांधीजी ने जनता को सूचना दे दी, हमारे सविनय अहिंसात्मक सत्याग्रह संघर्ष का यह अंतिम धावा है । संघर्ष नमक कानून की सविनय अवज्ञा अर्थात् बिना कर दिए नमक बनाने के सत्याग्रह से आरंभ होगा परंतु इस संघर्ष का अंत गुलामी से पूर्ण स्वतंत्रता का लक्ष्य प्राप्त करने पर ही होगा । इस सत्याग्रह संघर्ष में भाग लेनेवाले सभी प्रकार की यातना और अत्याचार सहने और प्राणों तथा सर्वस्व बलिदान केलिए प्रस्तुत होकर आगे बढें । सत्याग्रह का आरंभ मैं करूँगा । मेरे गिरफतार हो जाने या मर जाने पर जनता संघर्ष को स्वयं चलाएगी..... ।"[1] इस प्रकार एक संगठित प्रतिरोध के रूप में नमक कर नीति के विरुद्ध का आन्दोलन पूरे देश में फैला । औपनिवेशिक शासन के खिलाफ का एक संगठित प्रतिरोध यहाँ हमें देखने को मिलता है ।

सभी भारत वासी इस महान आन्दोलन में बडे जोश के साथ भाग लेने लगे । उनके मन में अपने देश के प्रति प्यार था इसलिए उन्होंने अपना सबकुछ त्यागकर आन्दोलन में भाग लिया । अंग्रेज़ सरकार की ओर से जो भी कदम आगे बढे थे और जितनी कठिनाइयाँ उन्हें झेलने पडी थी फिर भी वे अपने निर्णय से पीछे नहीं हटे । क्योंकि नियमों का तोडना और जेल जाना उनकेलिए एक गौरवमय एवं महान कार्य था । इसकेलिए उन्होंने पूरी निष्ठा

---

[1] मेरी तेरी उसकी बात : पृ-90

के साथ कदम बढाए थे। नमक कर नीति के भंग करने की बात को यशपाल ने यों चित्रित किया है - "पुलीस काली मन्दिर के समीप नमक सत्याग्रह केलिए नियत स्थान पर मौजूद थी। कुछ कल्लर मिट्टी पहले बटोर कर तैयार थी। उसमें कुछ नमक भी डाल लिया गया था। हरिभैया ने दो तोला नमक बनाने का अनुष्ठान पूरा किया और जयकार के बीच गिरफतार हो गए। इसी प्रकार गूँगे नवाब पार्क में स्वामि रामानंद और गोमती तट पर मिसेज़ चाट्टर्जी ने मालाएँ पहन स्वयं गिरफतारी का वरण किया।" [1]

उपन्यासकार यशपाल एक ऐसा व्यक्ति है जिन्हों ने स्वाधीनता आन्दोलन में स्वयं भाग लिया है और उस समय की और उस समय की कठिनाइयों को स्वयं झेला भी है। इसलिए उनके लेखन में उपनिवेशवादी शासन के खिलाफ की जो आवाज़ बुलंद है वह अत्यंत सशक्त एवं मार्मिक हैं। यशपाल ने अपने उपन्यासों में गांधीजी के राजनीति के क्षेत्र में आगमन से लेकर भारत की स्वाधीनता प्राप्ति तक के काल की राजनीतिक चेतना को अंकित किया है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन एक लंबा और गौरवशाली इतिहास है। इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना, भारत विजय के पश्चात अंग्रेज़ी शासन की स्थापना और अंग्रेज़ों द्वारा शोषण आदि प्रमुख कारण विद्यमान रहे। जिनकी प्रतिक्रिया स्वरूप लग-भग पूरे सौ वर्ष तक देश में जनता ने क्षेत्रीय स्तरों पर सशस्त्र विद्रोह किए। परंतु योजनाओं, संसाधनों और समझ के अभाव में ये विद्रोह कभी विफल होते रहे और कभी सफल भी।

---

[1] मेरी तेरी उसकी बात: पृ-96

हिन्दी उपन्यास साहित्य में सामाजिक, ऐतिहासिक उपन्यासों के समान राजनीतिक उपन्यासों की भी एक परंपरा है । इन राजनीतिक उपन्यासकारों ने मनुष्य के बाह्य जीवन का चित्रण किया है और उसके द्वारा समाज की आर्थिक और राजनीतिक विषम स्थितियों की अभिव्यंजना की है। इसमें से एक प्रकार की राजनीतिक क्रांति का संदेश भी हमें मिलता है। वह पूर्णत: एक साम्राज्यशाही सत्ता के शोषण एवं दमन के प्रति हुई क्रांति थी।

रौलट एक्ट और प्रतिरोध

एक उपनिवेश बनने के बाद भारत को बहुत सारी कठिनाइयों को सहना पडा था । जनता दिनों दिन विभिन्न प्रकार की पीडाएँ सहने केलिए मज़बूर होती जा रही थी। छल कपट और अस्त्र-शस्त्रों की सहायता से भारत पर विजय प्राप्त कर अंग्रेज़ ने यहाँ की संपत्ति को खूब लूटा । ये शोषण एवं दमन जब साधारण जनता को भी सहने की सीमा को पार कर अत्यंत तीव्र बना तब एक संगठित प्रतिरोध का जनम हुआ। ऐसे उभर आए प्रतिरोधों से सत्ता को कई प्रकार का नुक्सान हुआ। जनता में आए राष्ट्रीय बोध को और उनके विद्रोह को दबाने केलिए अंग्रेज़ी सत्ता ने काले कानूनों का निर्माण कर उसे लागू किया । ऐसा एक कानून था 'रौलट एक्ट' । इसके द्वारा उपनिवेशवादी अंग्रेज़ ने अपने शोषण एवं दमन चक्र चलाया।

"सन 1918 में जस्टिस रौलट की अध्यक्षता में स्थानीय सेडिशन कमेटी के कुछ एक सिफारिशों का सम्मिलित रूप था 'रौलट एक्ट' । इसको 6 फरवरी और 8 मार्च 1919 के बीच तमाम गैर सरकारी भारतीय सदस्यों के एकजुड विरोध के बावजूद इंपीरियल लेजिस्लेटीव काउंसिल में शीघ्रता से

स्वीकार कर लिया गया । यह कानून विशेष न्यायालयों की ओर किसी को बिना मुकदमा चलाए दो वर्षों तक बंदी रखने की व्यवस्था के द्वारा युद्धकाल में नागरिक अधिकारों पर लगाए गए प्रतिबंधों को स्थायी बनाने का एक प्रयास था । "[1] इस नियम के तहत राज्यद्रोहात्मक घोषित की गयी सामग्री रखने मात्र पर भी लोगों को बंदी बनाते थे । इस एक्ट का सीधा प्रभाव तो केवल सक्रिय राजनीतिज्ञों पर ही पडा था । पुलिस और शासकों ने इसका खूब इस्तेमाल किया । इसकी वजह से भारत की जनता विशेषत: स्वतंत्रता संग्राम के कार्यकर्ताओं ने बहुत कुछ भोगा ।

भारतीय राजनीतिक जनमत के सभी स्तरों पर 'रौलट एक्ट' के प्रति गहरा आक्रोश था, किंतु अखिल भारतीय स्तर पर इसका सार्वजनिक विरोध करने का एक अनूठा और व्यावहारिक ढंग गांधीजी ने सुझाया । इसमें सत्ताधारियों से याचना या प्रार्थना के ढंग को तो छोड दिया गया, किंतु इसका लक्ष्य अनियंत्रित अथवा हिंसक होना नहीं था । "विप्लववाद के दमन के बहाने भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष की भवना को धूलधूसरित करने केलिए 'रौलट कमेटी' की स्थापना की गयी थी । उस नए कानून के द्वारा ब्रिटिश शासकों को भारत में राजनीतिक आन्दोलन को दबाने का बेलगाम अधिकार दिया गया था । देश के सभी वर्गों ने उस कानून का तीव्र विरोध किया । सारे देश काले कानून के विरोध में चत्तान की तरह उठ खडा हुआ । " [2] साम्राज्यवादियों की दमन नीति से तंग आकर भारत की जनता ने सशक्त प्रतिरोध किया । क्योंकि वे अपने देश में विदेशियों की चपलूस बनकर जीने केलिए तैयार नहीं थी ।

---

[1] सुमित सरकार : आधुनिक भारत, पृ-221

[2] डॉ: डी.डी. तिवारी : हिन्दी उपन्यास; स्वतंत्रता संग्राम के विविध आयाम, पृ-41

उन्हें अपने देश के प्रति गहरा प्यार था और उस देश केलिए प्राणों की बाजी लगाने केलिए भी वे तैयार थी।

गांधीजी ने इस नियम के विरुद्ध विरोध दिवस की तिथि निश्चित कर दी परंतु जनता के धैर्य ने उस तिथि तक इंतज़ार नहीं किया, उसका अतिक्रमण कर आगे बढा। निर्धारित तिथि से पूर्व ही अमृतसर के जालियं वाला बाग में एक विशाल जनसभा का आयोजन किया गया। भारतीय जनता के राष्ट्रीय बोध ने लोगों को रणभूमि पर ला खडा कर दिया। भारतीय राष्ट्रीयता और साम्राज्यवाद में घात-प्रतिघात आरंभ हुआ। निहत्थे, शांत एवं अहिंसाप्रिय लोगों की विशाल सभा के ऊपर औपनिवेशिक सत्ता के दमनकारी अफसर जनरल डायर ने गोलियों की बौछार की। मानवता उस क्रूर दृश्य को देख कर सिहर उठी। पूरे देश में इसके फलस्वरूप संग्राम हुए। साम्राज्यवादियों का दमन चक्र और तेज़ हो गया। लोगों को कडी सज़ा दी गयी। मृत्युदंड दिया गया और देश से निकाला दिया गया। फिर भी औपनिवेशिक सत्ता की नीतियों के विरुद्ध का प्रतिरोध कमज़ोर नहीं बना।

उपनिवेशवादियों की शोषण नीति के शिकार बने लोगों की ज़िन्दगी को, उनके प्रतिरोधों को चित्रित करने में आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। अंग्रेज़ों की कूट नीति 'रौलट एक्ट' का प्रभाव और उसके विरुद्ध के आन्दोलनों को वाणी देने का कार्य भी उन्हों ने अपने उपन्यासों के ज़रिए किया है। क्रांतिकारी एवं उपन्यासकार यशपाल ने अपने उपन्यास 'मेरी तेरी उसकी बात' में 'रौलट एक्ट' का व्योरा इस प्रकार प्रस्तुत किया है – "विदेशी सरकार ने 1919 के आरंभ में क्रांति के गुप्त प्रयत्नों को कुचलने केलिए कठोर कनून 'रौलट एक्ट' ज़ारी किया। इस कानून के अनुसार

विरोधी या विद्रोही प्रयत्नों का दमन करने केलिए पुलिस अफसरों का अधिकार बहुत बढा दिए गए। इससे देश के राजनीतिक क्षेत्र में हाहाकार मच गया। निराशा और असंतोष प्रकट करने केलिए गांधीजी और अनेक नेताओं ने सरकारी सम्मान और पद-ओहदें वापस कर दिए। गांधीजी और कांग्रेस ने इस काले कानून के विरोध में देशव्यापी हडताल और प्रदर्शन का आदेश दिया।"[1] यों गांधीजी और कांग्रेस के नेतृत्व में अमानवीय नीति के खिलाफ देश भर में आवाज़ उभर आई। उसमें उसके पहले के आन्दोलनों से अलग एक ऊर्जा काम करती थी जिसने सभी भारतवासियों को साम्राज्यवादी अंग्रेज़ के विरोध में ला खडा कर दिया।

'रौलट एक्ट' के विरोध में देश भर में हुए आन्दोलनों एवं प्रतिरोधों में गांधीजी का अहिंसा वाली सिद्धांत ज़्यादा समय तक नहीं चला। ये आन्दोलन अपना रूप बदल कर एक विदेशी सत्ता की बर्बर नीति के खिलाफ अपना सशस्त्र आक्रोश प्रकट करने लगे। यशपाल कहते हैं –"काले कानून के विरुद्ध देशव्यापी हडतालें और प्रदर्शन हुए। अनेक स्थानों पर रेल की पटरियाँ उख़ाड दी गयीं, रेल स्टेशन और डाक खाने जला दिए गए। प्राय: सभी बडे नगरों कल्कत्ता, दिल्ली, बंबई में अनेक लोग विरोध प्रदर्शन में पुलिस की गोलियों के शिकार हुए थे। पंजाब में हडतालें और प्रदर्शन अधिक उग्र हुए। कई स्थानों में सरकारी इमारतों को नुक्सान हुआ। अमृतसर में दो अंग्रेज़ मारे गए।"[2] इस प्रकार एक निर्मम शोषण नीति पर आधारित औपनिवेशिक राजनीति के प्रति देशी जनता ने आक्रामक एवं सशस्त्र विद्रोह किया।

---

[1] मेरी तेरी उसकी बात , पृ-40

[2] " -पृ-61

उपनिवेशी नीतियाँ ऐसे ही पूरे भारत पर छा गयी थी । उनका लक्ष्य भारतवासियों की राष्ट्रीय भावना को तहस-नहस कर देना था । इसकेलिए उन्होंने आवश्यक नियम भी बनाए । यही उनकी शासन प्रणाली थी । लेकिन एक महान परंपरा वाले वीरों के देश की जनता विदेशी हुकूमत के पैरों पर अपना सब कुछ न्योछावर करने केलिए तैयार नहीं थी । वे इन नीतियों के विरुद्ध लडी । थोडा नुक्सान तो अवश्य हुए, फिर भी वे पीछे नहीं हटे । वे देश की स्वतंत्रता केलिए संग्राम भूमि में चल पडे ।

उपन्यास में शेरे पंजाब के आखिरी ऐलान का जिक्र करते हुए श्रीवास्तव उत्तेजना से कहता है-"सज्जनों, शेरे पंजाब के इस चलैंच का मतलब बहुत साफ है । उन्हों ने अपने सीने पर पुलीस की लाठियाँ बर्दाश्त करके हमारी आज़ादी के जंग का आखिरी दौर शुरू कर दिया है । अब हमारी जनता ज़ालिमों की लडाई ही नहीं, बन्दूकों की गोलियाँ, फाँसी और सभी जुल्मों को बर्दाश्त करके उस वक्त तक आगे बढती जएगी जब तक हम इस देश से अपनी गुलामी और विदेशी हुकूमत का जनाज़ा नहीं निकाल देते । "[1] यहाँ अपने देश की आज़ादी केलिए मर मिटने केलिए तैयार होनेवाले देशप्रेमियों को हम देख सकते हैं । उनका एक ही लक्ष्य यह था कि साम्राज्यवाद का नाश हो और भारत का स्वराज हो ।

भारत में पनप उठी विप्लववादी राजनीतिक गतिविधियों से ब्रिटिश शासन तंत्र परेशान हो गया था । क्रांतिकारी आन्दोलन, विशेषकर 'गदर' का पुन: आगमन को रोकने केलिए एक कमेटी के निर्देशों के अनुसार 'रौलट एक्ट' काम में लाते थे । इस कानून के मुताबिक अंग्रेज़ ने भारत पर अपना शासन

---

[1]मेरी तेरी उसकी बात : पृ-61

और भी तीव्र बना दिया था । इसकी परिणाम था 'जालियं वाला बाग' का हत्याकांड । अमृतसर में जनता पर जो दमन चक्र चला था उसका चित्रण करते हुए भगवतीचरण वर्मा लिखते हैं –" रैसों की कोडे लगवाए गए, उनसे नाक रगडवाई गई-जनरल डायर ने या पंजाब के सैनिक अधिकारियों ने पंजाब सरकार ने जो किया उससे कहीं अधिक नादिरशाह कर गया है । "[1]

अप्रैल 1919 में देश में इस एक्ट के विरुद्ध जो तूफान उठा और जो 1857 के बाद भारत में सबसे बडा अंग्रेज़ विरोधी आन्दोलन था, उसकी संगठनात्मक तैयारी बहुत सीमित, छिटपुट और अत्यंत अपर्याप्त थी । इसमें निम्न मध्यवर्गीय समूहों एवं कारीगरों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण रही । 30 मार्च और 6 अप्रैल को भारत के अधिकांश नगरों में हडताल रही, लेकिन इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होनेवाले उपद्रवों का सबसे अधिक प्रभाव अमृतसर, लाहौर, गुजरवाला, और पंजाब के अनेक छोटे नगरों में, अहम्मदाबाद, दिल्ली, बंबई और कल्कत्ता की कुछ सीमा तक पडा ।

"लाहौर में, जहाँ 6 और 9 अप्रैल को हुई शांतिपूर्ण हडतालों एवं प्रदर्शनी में अनूठी साँप्रदायिक एकता देखने को मिली थी, जब पंजाब में गान्धीजी के प्रवेश निषेध एवं अमृतसर की घटनाओं की खबर पहूँची तो 10 अप्रैल को जनता एवं पुलीसवालों के बीच हिंसक संघर्ष हुए । 14 अप्रैल को अंग्रेज़ दल बल समेत लौट आए, जन समिति के नेताओं को निष्कासित कर दिया गया और 'मार्शल लो' लगाकर आन्दोलनों को कुचल दिया गया ।"[2] इस प्रकार रौलट एक्ट के विरुद्ध हुए संघर्ष को अंग्रेज़ी सत्ता ने दमित किया फिर

---

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ-432

[2] बिपनचन्द्र : आधुनिक भारत, पृ-305

भी उपनिवेशवादियों के कटु नियमों के प्रति हुए आन्दोलन को भारत के राष्ट्रीय संग्राम मेंप्रमुख स्थान है।

सत्ता के प्रतिनिधियों का बहिष्कार

क. साइमन कम्मीशन बहिष्कार

ब्रिटिश सरकार ने 1927 में अपनी शासन नीति के तहत 'इंडियन स्टाटूटरी कम्मीशन' का सृजन किया। यह भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के नए दौर केलिए प्रेरक बना। "ब्रिटिश अफसर सर साइमन की अध्यक्षता में रूपीकृत 'साइमन कम्मीशन' नामक 'इंडियन स्टाटूटरी कम्मीशन' को भारत की शासन प्रणाली में आवश्यक सुझाव एवं परिष्कार केलिए नियुक्त किया था। उस समिति के सभी सदस्य अंग्रेज़ी थे।"[1] इस प्रकार के एक कम्मीशन की नियुक्ति ने सारे भारतवासियों में अतृप्ति एवं विद्रोह पैदा की। अपने स्वाधिकार एवं स्वशासन संबन्धी निर्णयों को कब्जे में करने केलिए नियुक्त इस कम्मीशन के विरुद्ध जनता खडी हो गयी। ब्रिटिश सरकार के ये निर्णय भारतीयों केलिए अपने स्वाभिमान के ऊपर हुए कडा प्रहार एवं अवहेलना थे। इसलिए सन 1927 के डॉ.अंसारी की अध्यक्षता में चले मद्रास अधिवेशन में राष्ट्रीय कांग्रेस ने ऐसा निर्णय लिया कि 'इस कम्मीशन को किसी भी अवस्था में किसी भी तरीके से' से बहिष्कार करें। इस निर्णय को मुस्लिम लीग एवं हिन्दु महासभा का भी समर्थन मिला। इस प्रकार उपनिवेशवादी अंग्रेज़ की कूटनीति के खिलाफ देश के विभिन्न राष्ट्रीय दल एवं संगठनों ने कन्धे से कन्धा मिलाया।

---

[1] बिपनचन्द्र : आधुनिक भारत,, पृ-330

साइमन कम्मीशन के विरुद्ध आल पार्टी कांफेरेंस में भी विद्रोही स्वर उभर आया था। लेकिन इससे भी ज़्यादा जनता ने इसके विरुद्ध काम किया था। कम्मीशन के भारत आगमन ने बडे सशक्त प्रतिरोध एवं आन्दोलन को जनम दिया। उससे जनता में एक नए जोश तथा एकता की भावना जागृत उठी। कम्मीशन के बंबई आगमन के दिन पूरे भारत में हडताल का आयोजन किया गया। जहाँ-जहाँ कम्मीशन गया वहाँ-वहाँ काले झण्डे से उन्हं स्वागत किया गया। उसी के साथ 'साइमन गो बैक' वाले नारे भी लगाए। ऐसे एक सशक्त आन्दोलन के रूप में उभर आए 'साइमन कम्मीशन बहिष्कार' को साम्राज्यवादी शासक अपनी क्रूर दमन नीति से दबाने की कोशिश भी करता रहा।

ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय जनजागरण को कुचलने में अपने को असमर्थ पाकर उठते हुए राजनीतिक तूफान शांत करने केलिए 'साइमन कम्मीशन' की नियुक्ति की थी, जिसमें जनता के आत्मनिर्णय की मांग का कोई उल्लेख नहीं था। इसके द्वारा एक नया विधान लादने का प्रयत्न किया जानेवाला था। इसके विरुद्ध जनता का क्रोधित होना स्वाभविक था क्योंकि उस कम्मीशन में कोई भी भारतीय न था। सारे भारत में 'साइमन गो बैक' वाले नारे गूँज रहे। तत्कालीन सभी राजनीतिक पार्टियों ने कम्मीशन का बहिष्कार जुलूस और हडतालों द्वारा किया।

औपनिवेशिक भारत की जनता के ऊपर थोपे गए काले नियमों एवं समितियों के प्रति देशी जनता ने संगठित होकर प्रतिरोध किया। देशी जनता को एक नागरिक की हैसियत से भी उडा देनेवाली नीतियों के प्रति विद्रोह पूरे देश में व्याप्त हुआ। साम्राज्यवादी अंग्रेज़ के शोषण एवं दमन भरी शासन

व्यवस्था के साथ-साथ इस प्रकार के कम्मीशनों की नियुक्ति ने लोगों के मन में अंग्रेज़ों के प्रति नफरत और विद्रोह की आग को जला दिया। वे इसकेलिए एक साथ संग्राम भूमि में उतर आए। "सन 1928 फरवरी 8 की तारीख को साइमन और अन्य सदस्यों के बंबई आगमन के दिन से ही प्रतिरोध एवं विद्रोह शुरू हुआ था। उस दिन पूरे शहर में हडताल मनाया। जनता बडे-बडे जत्था-जुलूसों में भाग लेकर सडक पर उतरी। सब कहीं काला झंडा फहराया गया। कई स्थानों में लोगों ने पुलीस के साथ संघर्ष किया। कलकता, लाहौर, लखनाऊ, पूने, विजयवाडा आदि स्थानों में कम्मीशन का बहिष्कार हुआ।"[1] यह एक सुसंगठित प्रतिरोध था जिसने न केवल कम्मीशन का बहिष्कार किया बल्कि उपनिवेशवादी कूटनीति के खिलाफ प्रतिरोध किया।

अंग्रेज़ सरकार द्वारा गढा हुआ साइमन कम्मीशन के बहिष्कर आन्दोलन को आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में सशक्त ढंग से चित्रित किया है। औपनिवेशिक शासन के शोषण की शिकार बनी जनता को कम्मीशन का बहिष्कार करना अपने अस्तित्व केलिए अनिवार्य था। लोगों ने इस बहिष्कार आन्दोलन में पूरी निष्ठा के साथ भाग लिया। जोश भरी इस स्वधीनता की लडाई का चित्रण आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में हमें देखने को मिलते हैं।

भारत पर एक नया शासन तंत्र लादने केलिए सात सदस्यों का एक कम्मीशन भारत आया, उसका नेतृत्व किया सर जान साइमन ने। उसमें भारतीय सदस्य का न आना उस कम्मीशन के बहिष्कार केलिए कारण बना। भारत के सभी राष्ट्रीय दलों से मिलकर कम्मीशन का बहिष्कार किया गया।

---

[1] Bipan Chandra : Indias Struggle for Independence, P- 283

आन्दोलन को कुचलने केलिए अंग्रेज़ों द्वारा लाठियाँ चलाई गयीं । कई लोग घायल हुए । कम्मीशन का बहिष्कार कांग्रेस के नेतृत्व में चला । भगवतीचरण वर्मा ने अपने भूले बिसरे चित्र में इसका चित्रण किया है । उपन्यास का कामतानाथ एक पूँजीपति है और ज्ञानप्रकाश कांग्रेस का कार्यकर्ता । दोनों के बीच का संवाद प्रस्तुत करते हुए कम्मीशन बहिष्कार की बात को वर्मा जी ने यों चित्रित किया है-" 'जी वे स्वराज देने आए, और ये उन लोगों से बात न करें, कितनी बडी हिमाकत है । 'रय बहादुर कामतानाथ ने अपनी ऊँची आवाज़ में कहा , 'हिन्दुस्तान को स्व-क्या कद्दू मिलेगा ।' – ज्ञानप्रकाश मुस्कुराए, - राय बहादुर साहब, मिलने के नाम तो कद्दू ही हाथ लगेगा । इसलिए हम लोगों ने साइमन कम्मीशन का बहिष्कार किया । उन लोगों से मिलने से कोई फायदा होता तो हम लोग ज़रूर मिलते ।"[1] अपनी स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता को छीननेवाले नियमों के विरुद्ध लडना स्वतंत्रता सेनानियों केलिए बडे गौरव का कार्य था । इसलिए इस प्रकार के कम्मीशनों का बहिष्कार कई तरह की कठिनाइयों के झेलने पर भी उन्हों ने किया ।

'भूले बिसरे चित्र' में अंग्रेज़ों की उपनिवेशी शासन नीति के विरुद्ध उठी राष्ट्रीयभावना की अभिव्यक्ति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के आन्दोलनों के चित्रण के रूप में हुई । विरोधी परिस्थिति में लोगों में नई चेतना आई और उस चेतना के तहत वे एक शक्तिशाली देश के अमानवीय शोषण के खिलाफ संघर्ष करने लगे । डा. लक्ष्मी सागर वाषर्णेय के अनुसार 'भूले बिसरे चित्र वाले युग में एक ओर जीवन के परंपरागत मूल्य निस्सार और निष्प्राण हो गए थे तो दूसरी ओर धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक , आर्थिक और साहित्यिक चेतना

[1]भूले बिस्रे चित्र , पृ-654

नित नूतन रूप धारण कर भारतीय वसुंधरा को जीवन प्रदान कर रही थी ।' यह पूर्णत: सही है क्योंकि सदियों से अनीति एवं अत्याचार से पीडित जनता ने स्वतंत्रता केलिए सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर स्वावलंबी बनने केलिए तैयार होकर संघर्ष भूमि पर उतरी थी । इसकेलिए उन्होंने विभिन्न प्रकार के बहिष्कार एवं असहयोग रूपी आन्दोलन को अपना लिया ।

सरकारी नीतियों, शासन तंत्रों के खिलाफ आवाज़ उठाना और जेल जाना आन्दोलनकारियों केलिए आम बात बनी । वे अंग्रेज़ी सरकार की अनीतियों के विरुद्ध जत्था, सम्मेलन आदि चलाते थे । सरकार कडे-से-कडे व्यवहार से उन्हें दबाने का निरंतर परिश्रम भी करती रही । लेकिन जनता अपने मार्ग से विचलित नहीं होने वाले थे । वे नियमों का उल्लंघन, कम्मीशनों,अफसरों तथा राजा-रानियों के बहिष्कार का आन्दोलन करते रहे । इसी के तहत कईयों को जेल जीवन भुगतना पडा था । जेल जाना दंड सहना आदि वे अपनी माँ की रक्षा हेतु करनेवाला कर्तव्य समझते थे । स्वतंत्रता का स्वप्न देखनेवाली जनता सदैव जेल जाने केलिए तैयार थी । क्योंकि पराधीनता की ज़िन्दगी जीने केलिए वे तैयार नहीं थी । इसलिए वे विद्रोह एवं संघर्ष करती थी ।

ख. प्रिंस आफ वेल्स का बहिष्कार

गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस द्वारा चलाए गए बहिष्कार आन्दोलन में लोग सत्ता के प्रतिनिधियों का भी बहिष्कार करते रहे । ऐसी एक प्रमुख घटना है ब्रिटेन के युवराज का बहिष्कार । इसके पीछे साम्राज्यवादियों की निर्मम शोषण नीति के विरुद्ध की चेतना कार्यरत थी । बहिष्कार आन्दोलन से जनता में अद्‌भुत उत्साह बढता जा रहा था । लोग आन्दोलन केलिए उतावले हो रहे

थे । ऐसी ही समय 17 नवंबर सन 1921 को 'प्रिंस आफ वेल्स' का भारत आगमन होता है । कांग्रेस ने उनके बहिष्कार की योजना बनाई । फलत: भारत भर में हडतालों एवं विरोधी जुलूसों से युवराज का स्वागत किया । भूले बिसरे चित्र में इसका चित्रण भगवती चरण वर्मा ने यों किया है – "दिसंबर के तीसरे सप्ताह में बंगाल तथा समस्त उत्तर भारत में क्रिमिनल लो अमेंडमेंट एक्ट लागू कर दिया गया । बंगाल तथा युक्त प्रांत के समस्त प्रमुख कांग्रेस नेता गिरफतार कर लिए गए । 25 दिसंबर को युवराज कलकत्ता में पहूँचे, लेकिन वहाँ जितनी बडी हडतालें हुई और जो प्रदर्शन हुए उनसे हालत और भी चिंताजनक हो गयी ।"[1] इस बहिष्कार आन्दोलन में लोगों ने बडे जोश के साथ भाग लिया था । हज़ारों आदमी सडकों पर घूम रहे थे । बीच बीच में भीड और पुलिस में मुडभेडें होती रहीं ; दंगे हुए और खून-खराबा हुआ । कुछ लोग मरे, कई लोग घायल हुए फिर भी जनता अपने बहिष्कार एवं प्रतिरोध से पीछे नहीं हटी ।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि अंग्रेज़ी उपनिवेशवादियों की शासन नीति तथा उसका उद्देश्य लोक कल्याणकारी न होकर ब्रिटिश साम्राज्य की जडों को सींचनेवाली व्यवस्था पर आधारित था । अपने उपनिवेश को बनाए रखने केलिए अंग्रेज़ों ने शासन के तले जिन शोषण नीतियों का सृजन किया था उसको सच्चे राष्ट्र प्रेमी आम जनता ने नहीं माना । वे उसके विरुद्ध उडी । ये लडाइयाँ एक पराधीन देश की साम्राज्यवाद विरोधी प्रक्रियाओं का सशक्त

[1] भूले बिसरे चित्र , पृ-376

आवाज़ हैं । उपनिवेशवादी अंग्रेज़ के अनीति एवं अत्याचार के विरुद्ध हुए संघर्षों का ज्वलंत दस्तावेज़ है आधुनिक हिन्दी उपन्यास । उसमें इन प्रतिरोधों को अत्यंत रोचक तथा जीवंतता के साथ रचनाकारों ने प्रस्तुत किया है । इन उपन्यासों को पढने पर हमें मालूम हो जाएगा कि ये रचनाकार सच्चे राष्ट्रप्रेमी थे जो एक ताकतवार देश की उपनिवेशवादी कूटनीतियों से सख्त नफरत करते थे । अपनी रचना के माध्यम से साम्राज्यवाद विरोधी गौरवपूर्ण अतीत का चित्रण कर भारत को पुन: वैदेशिक अधीशत्व की गिरफ्त में न पडने केलिए ये उपन्यासकार हमें जागृत करते हैं ।

अध्याय तीन

सांप्रदायिक शोषण और प्रतिरोध

उपनिवेशित भारत के भीषण यथार्थ था यहाँ पनपी साँप्रदायिकता । अपने शसन के दौरान भारत में सांप्रदायिकता के बीज बोने में अंग्रेज़ सफल निकले । 200 सालों तक के विदेशी शासन ने भारत को पूर्णत: तहस-नहस कर दिया । मुगलों के समय तक भारत एक ऐसा देश था जिसमें साँप्रदायिकता की समस्या नहीं के बराबर थी । लेकिन जब शासन का बागडोर अंग्रेजों ने संभाला तो उन्होंने अपनी सत्ता को कायम रखने केलिए यहाँ की जनता के मन में साँप्रदायिकता के बीज बोये । लोगों के मन में आपसी वैमनस्य पैदा करने के पीछे अंग्रेजों की कूटनीति काम करती थी । क्यों कि उस समय भारतीय जनता में अंग्रेज़ों के साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध जागरण पैदा हुआ था । यह एक प्रकार की राष्ट्रीय भावना थी । यह राष्ट्रीय भावना भारत में अपने अस्तित्व केलिए खतरनाक बन जाएगी, ऐसा अंग्रेज़ समझते थे । इसलिए उन्होंने अपनी 'फूटो और राज्य करो' वाली नीति के तहत भारत का शासन करना शुरू किया ।

भारत में साँप्रदायिकता एक अभिशाप के रूप में जनता के ऊपर पडी थी । उसने यहाँ पर कायम रहे अमन को हमेशा केलिए बरबाद कर दिया । तब तक देशी जनता धार्मिक एवं साँस्कृतिक विविधता के होते हुए भी एकता की लीक से चल रही थी । इसी एकता ही सदियों से चली आ रहे अमानवीय शोषण एवं दमन के विरुद्ध रणभूमि पर निकली थी । लेकिन उपनिवेशवादी

शक्तियों ने यह समय पर पहचाना और उसे जडों से उखाड फेंकने केलिए एक महान योजना बनायी। वह थी अंग्रेजों की फूटो और रज्य करो वाली नीति के परिणामस्वरूप आयी साँप्रदायिकता । प्रो.मंजुल राणा के शब्दों में "साँप्रदायिकता एक ऐसा विध्वंसात्मक स्वरूप है, जो आदमी को उसकी आदमीयत से काटकर केवल घृणा का प्रारूप बना देती है। धर्म और संस्कृति , जिनका निर्माण मनुष्य ने अच्छा जीने और एकजुट होकर, मिल-बैठ कर जीने केलिए किया था, उन्हीं का दामन पकडकर यह मनुष्य को मनुष्य के खून का प्यासा बना रही है। इतिहास के सीने पर जितने खून के छीं टे साँप्रदायिकता ने लगाए हैं, उतने किसी अन्य भावना ने नहीं । "[1] भारत के सन्दर्भ में यह पूर्णत: सही निकला कि यहाँ साँप्रदायिकता ने अपने विध्वंसात्मक रूप धारण किया था । इसकी वजह से जनता में आपसी फूट एवं द्वेष पैदा हुआ और मारकाट भी होने लगी। इसी साँप्रदायिकता ने इंसान से अपनी इंसानियत को उखाड फेंका। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि दो धर्मों के बीच की टकराहट और सदियों से संभाल रखे साँप्रदायिक सौहार्द का सत्यनाश।

साँप्रदायिकता हमारी सबसे बडी समस्या है । इसने संपूर्ण राष्ट्र की अस्मिता को छिन्न-भिन्न कर दिया । भारत जैसे देशों में, जहाँ विभिन्न संस्कृतियों वाले धुलमिल कर रहते हैं, इसी भावना ने पूरे देश को रोगग्रस्त कर दिया है। 'संप्रदाय' शब्द बहुधा धर्म के साथ जुडकर आता है, जिससे यह भ्रम पैदा होता है कि दोनों पर्याय हैं , पर वास्तव में वह ऐसा नहीं है। धर्म में जहाँ व्यापक, विस्तृत एवं विशाल विचारधारा का समावेश होता है तो वहीं संप्रदाय में सीमित एवं खण्डित विचारधारा काम करती है । संप्रदाय का

[1] प्रो.मंजुल राणा : दसवें दशक के उपन्यासों में साँप्रदायिक सौहर्द, पृ- आमुख

संबन्ध और आधार धर्म में ही केंद्रित होत है। परंतु जब इसमें राजनीति का प्रवेश हो जाता है तो राष्ट्र और समाज पर उसका बुरा असर पडने लगता है। धर्म की आड लेकर स्वार्थी लोग समाज में उथल-पुथल मचाते हैं। धर्म की ऐसी सीमित और खण्डित विचारधारा संप्रदाय कहलाती है। उपन्यासकार असहर वजाहत ने कहा है कि किसी संप्रादाय विशेष में दूसरे संप्रदाय विशेष केलिए धार्मिक विश्वासों या इतर कारणों से घृणा, द्वेष तथा हिंसा की भावना का प्रदर्शन सांप्रदायिकता कही जाएगी। अंग्रेजी राज के दौरान भारत में जन्मी सांप्रदायिकता भी ऐसी घृणा , द्वेष तथा हिंसा की भावना से मिली-जुली थी।

सांप्रदायिकता का बीजांकुर

भारत की अपनी एक महान असांप्रदायिक परंपरा थी। उसमें विभिन्न धर्मों के बीच की समन्वय भावना विद्यमान थी। किंतु मुस्लिम राज्यकाल में भारत की यह धर्मनिरपेक्ष नीति धीरे-धीरे समाप्त हो गयी। हिन्दु-मुसलमानों के बीच साँप्रदायिक रूप में दरार होने लगी। इसी के साथ तत्कालीन रजनीतिक स्थितियों ने जनता में साँप्रदायिक विद्वेष केलिए उर्वर जमीन बनायीं। उसमें उपनिवेशवाद की देखरेख में बोये गये साँप्रदायिक विद्वेष के बीज अपने राजनीतिक हितों के स्वार्थ जल से सिंचित होने लगे। साँप्रदायिकता के ये बीज उग कर महान वृक्ष बनने केलिए आवश्यक खाद भी अंग्रेजों ने समय-समय पर डाला था। 1857 की क्रांति में वैसे तो हिन्दु और मुसलमान दोनों ने मिलजुल कर भाग लिया था पर क्रांति के असफल हो जाने पर अधिकतर मुसलमानों को अंग्रेज़ों का कोपभाजन बनना पडा। अंग्रेज़ों के

मन में यह बात बैठ गयी थी कि मुसलमानों ने अपने खोए हुए साम्राज्य को फिर से हासिल करने केलिए 1857 की क्रांति को बढावा दिया था । इसलिए "अंग्रेज़ों ने योजनाबद्ध तरीके से हिन्दु-मुस्लिम एकता को वैमनस्य में बदलने और भेद-भाव पैदा करने की नीति का अनुसरण किया, पहले मुसलमानों के खिलाफ होकर और बाद के शासन काल में उन्हें बढाव देकर ।"[1]

उपनिवेशित भारत के आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में कई परिणाम हुए । एक परिणाम तो यह हुआ कि भारतीय जनता की एक राष्ट्र के रूप में संयोजन की लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया आरंभ हुई । दूसरा परिणाम था राष्ट्रवादी, साम्राज्यवद विरोधी आन्दोलन का उदय । राष्ट्रीय आन्दोलन का आधार भारत के एक राष्ट्र के रूप में विकसित होने की प्रक्रिया तो थी ही, किंतु साथ ही राष्ट्रीय आन्दोलन स्वयं इस प्रक्रिया का प्रबल कारण था । लोगों में आई इस चेतना के पीछे मूलभूत हित था कि साम्राज्यवाद के उन्मूलन केलिए संघर्ष किया जाए । इसके फलस्वरूप विभिन्न सामाजिक वर्गों और श्रेणियों तथा विभिन्न धर्मों, जातियों के लोगों और विभिन्न भाषाएँ बोलनेवाले लोगों में राष्ट्रीय और साम्राज्यवाद विरोधी चेतना का उदय भी अलग-अलग समय में असमान रूप से हुआ । लेकिन इसमें एक बडी बाधा यह थी कि राष्ट्रीयता के साथ-साथ साँप्रदायिकथा का भी उदय हुआ । इसका एक कारण भारतीय मुसलमानों में उभरी असंतोष की भावना थी । तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों में , चाहे वह मुस्लिमबहुल प्रदेश क्यों न हो, मुसलमानों को आवश्यक स्थान नहीं मिला था । इतने में वे इसके विरुद्ध

[1] कृपाशंकर सिंह : आलोचना- जुलाई-दिसंबर, 2002

काम करने लगे । यह हिन्दु और मुसलमानों के बीच आपसी वैमनस्य पैदा करने का कारण बना ।

भारतीय समाज में औपनिवेशिक शासन से हुई ठोकर एवं उसके विरुद्ध लडने की आवश्यकता से उत्पन्न परिवर्तनों के फलस्वरूप देश में साँप्रदायिकता का उद्भव हुआ था । भारत में साँप्रदायिकता के उद्भव के पीछे औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का बडा हाथ है । उपनिवेशित भारत की जनता की आर्थिक स्थिति अत्यंत शोचनीय थी । इससे लोगों की जिन्दगी दिनों दिन बदत्तर होने लगी थी, विशेषत: मध्यवर्ग के । नौकरी के क्षेत्र में और सामाजिक क्षेत्र में भी भेदभाव होने लगे । लोगों में असंतोष बढने लगे । इसके परिणामसवरूप देश में साँप्रदायिकता का जनम हुआ ।

उपन्यासों में सांप्रदायिक शोषण और विद्रोह

उपनिवेशकालीन भारत की साँप्रदायिक समस्याओं को तथा उसके विरुद्ध उठे साहित्यिक प्रतिरोध को आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में हमें देखने को मिलते हैं । देश में वर्तमान साँप्रदायिकता की भीषण अवस्था को चित्रित करने में तथा उपनिवेशवाद के विरुद्ध की विद्रोह भावना को अभिव्यक्त करने में प्रेमचंद, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, भैरवप्रसाद गुप्त, भीष्म साहनी जैसे महान उपन्यासकारों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है ।

असल में भारत में उपनिवेश स्थापित होने के बाद ही उपन्यास विधा का विकास शुरू होता है । भारत में 1857 ई के विद्रोह के बाद राज्य सत्ता सीधे साम्राज्ञी के हाथों में आयी । तब उसी के समानांतर एक साहित्यिक विधा के रूप में उपन्यास का विकास 19 वीं सदी के सातवें दशक से आरंभ

हुआ । उपनिवेश की स्थापना के खिलाफ प्रतिरोध और राष्ट्रवाद से उपन्यास का विकास जुडा हुआ है । इसमें उपनिवेशवादी मन की विशेषताओं के साथ देशी राष्ट्रवाद की दुर्बलता का चित्रण भी किया गया है । 20 वीं सदी के पूर्वार्ध में उपनिवेशवाद के खिलाफ प्रतिरोध सभी उपनिवेशी देशों में शुरू हुए थे । इनका लक्ष्य स्वाधीनता की प्राप्ति थी । उपनिवेशवादियों ने गैर यूरोपीय क्षेत्रों में अपनी जागीर को स्थायित्व प्रदान करने केलिए साँप्रदायिक विभेद की रणनीति का सहारा लिया । यह उनका कारगर हथियार था । अपनी इस रणनीति को पूर्णत: काम में लाने केलिए उन्होंने भीषण दमन चक्र का सृजन किया जिसमें मानवता का अंश नहीं था ।

साहित्य जीवनानुभूतियों की अभिव्यक्ति है । रचनाकार को ये जीवनानुभूतियाँ समाज से ही मिलती हैं । नवजागरणकालीन साहित्य से हम इन जीवनानुभूतियों को देख सकते हैं । ये जीवनानुभूतियँ जो है एक साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध की सशक्त आवाज़ थीं । डॉ.शिवकुमार मिश्र के शब्दों में- “नवजागरण की नई चेतना के फलस्वरूप पराधीनता के गहरे अहसास तथा अपने स्वत्व के प्रति जाग्रत उतने ही गहरे बोध का साहित्य भी है । यह साहित्य ब्रिटिश राज के बहुआयामी अनेक किस्म के अनाकांक्षिक दबावों का प्रतिकार करते हुए अपनी अस्मिता को बचाए रखने तथा नव जागरण की चेतना से उपजी नई आकाँक्षाओं और नई संभावनाओं की ओर अपने को यथाशक्ति अग्रसर करनेवाला साहित्य भी है ।”[1] उपनिवेशकालीन रचनाकारों को कई प्रकार के जीवन यथार्थों का सामना करना पडा था । उसमें से एक भीषण यथार्थ थी साँप्रदायिकता । साँप्रदायिकता एक विशेष

---

[1] डॉ. शिवकुमार मिश्र : आलोचना – जुलाई/सितंबर-1987

स्थिति, एक विशेष समाज, अर्थव्यवस्था तथा राज्यव्यवस्था का उत्पाद है, जो अपने लोगों केलिए समस्याएँ उत्पन्न करती हैं, ऐसी समस्याएँ जिनके कारण को समझने में लोग सक्षम नहीं है। भारत में साम्राज्यवादी अंग्रेज़ों ने भी यही किया था। अपने विशेष समाज और राज्य व्यवस्था को कायम रखने तथा अपनी अर्थव्यवस्था को संतुलित रखने केलिए साँप्रदायिकता जैसी चीज़ को उन्होंने खूब प्रोत्साहन दिया।

उपनिवेशित भारत का साँप्रदायिक संकट एवं शोषण का चित्रण आधुनिक हिन्दी उपन्यास में प्रेमचंद ने सशक्त ढंग से पूरी जीवंतता के साथ किया है। "प्रेमचंद का रचना संसार पराधीन भारत की विषम परिस्थितियों का सजीव चित्र है। उन्हों ने भारत के अतीत और वर्तमान को बहुत गहराई से समझकर भविष्यदर्शन केलिए अपनी प्रतिभा और प्रज्ञा का रचनात्मक प्रयोग किया था।"[1] यदी कोई व्यक्ति 20 वीं शताब्दी के पूर्वार्थ में पराधीन भारत का सही रूप देखना चाहे, उसके मानस के हलचलों, आवेशों, विद्रोही स्वरों तथा शक्तियों से साक्षात्कार करना चाहे, तो उसे प्रेमचंद के उपन्यास पढने केलिए बाध्य होना पडेगा। उनका प्रथम उपन्यास 'रूठी रानी' एक अत्यंत सामान्य कृति है। लेकिन उसमें वीर और देशभक्त क्षत्रियों की आपसी फूट, ईर्ष्या-द्वेष आदी के कारण पराधीनता का अंधकार भारत में प्रवेश करता हुआ दिखाई देता है।

पराधीन भारत में पनपी साँप्रदायिक तनाव का चित्रण प्रेमचंद के महत्वपूर्ण उपन्यास 'रंगभूमि' में सशक्त ढंग से हुआ है। गांव को केन्द्र बनाकर लिखे गए इस उपन्यास में साँप्रदायिकता से उत्पन्न संकट एवं उसके समाधान

---

[1] रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' : उपन्यासकार प्रेमचंद और समकालीन बोध, पृ 168.

के चित्र मिलते हैं । लेकिन मूल समस्या पूंजीवाद के विस्तार की ही दिखाई देती है । इस उपन्यास का मुख्य पात्र सूरदास गांव का एक अंधा भिखारी है । गांव में उसके पूर्वजों की कुछ ज़मीन है, जो पशुओं केलिए चारगाह का काम आती है । एक ईसाई पूंजीपति अच्छे दामों पर सूरदास की ज़मीन खरीदना चाहता है । लेकिन भिखारी होते हुए भी सूरदास गांव के हित को ध्यान में रखकर अपनी ज़मीन नहीं बेचता । इसकेलिए अंत में उसको अपनी जान भी देनी पडती है । लेकिन वह हारता नहीं । भारत में अपनी सत्ता को बरकरार रखने केलिए अंग्रेज़ों ने कई प्रकार की शासन नीतियाँ अपनाई थीं । ये नीतियाँ आम जनता केलिए असह्य थीं । अंग्रेजी राज आतंग का राज था । रंगभूमि में अग्रेज़ों की नीति को उद्घाटित करते हुए प्रेमचंद मि. क्लार्क से कहलाते हैं- "हमारा साम्राज्य तभी तक अजेय रह सकता है, जब तक प्रजा पर हमारा आतंक छाया रहे । अगर साम्राज्य को रखना ही हमारे जीवन का उद्देश्य है, तो व्यक्तिगत भावों और विचारों का यहाँ कोई अस्तित्व नहीं । साम्राज्य केलिए हम बडे से बडे नुक्सान को उठा सकते हैं.....हमें अपना राज्य प्रजा से भी प्रिय है और जिस व्यक्ति से हमें क्षति की लेशमात्र भी शंका हो, उसे हम कुचल डालना चाहते हैं, उसका नाश कर देना चाहते हैं ।"[1] इन विचारों में साम्राज्यशाही देश के दमन नीति की सूचना दृष्टव्य है । उपनिवेशवादी शक्तियों के शोषण एवं क्रूरता के विरुद्ध उठी राष्ट्रीयभावना को कुचल डालने केलिए इन्हीं विचारों ने ही साँप्रदायिकता का जनम दिया था ।

पहले सूचित किया गया है कि उपनिवेश कई उद्देश्यों की पूर्ति केलिये किया जाता है । जैसे साम्राज्य विस्तार केलिए या कच्चे मालों के नए श्रोतों

---

[1] रंगभूमि- भाग 2, पृ-27

केलिए । जो भी हो उसे बरकरार रखने केलिए अपने साम्राज्य को स्थिर रखना पडता है । इसलिए उपनिवेशवादी अंग्रेज़ों ने भारत को कई सालों तक शोषण और लूट का उपकरण बनाया । प्रेमचंद जी कहते हैं-"अंग्रेज़ जाति भारत को अनंत काल तक अपने साम्राज्य का अंग बनाए रखना चाहती है । कंजरवेतिव हो या लिबरल, राडिकल हो या लेबर, नेशनलिस्ट हो या सोशलिस्ट, इस विषय में सभी एक की आदर्श का पालन करते हैं । ....आधिपत्य त्यागने की वस्तु नहीं है ...उनका उद्देश्य है कि क्यों कर भारत वासियों पर हमारा आधिपत्य उत्तरोत्तर सुदृढ हो ।"[1] इसी आधिपत्य एवं दमन नीति ने जनता में जागरण पैदा किया । उसका परिणाम यह हुआ, लोगों में राष्ट्रीय भावना जगृत हुई जो उपनिवेशवादी शासन के विरुद्ध उठी विद्रोह भावना थी ।

तमस

भीष्म साह्नी के उपन्यास 'तमस' में भी साँप्रदायिकता के ज्वलंत दस्तावेज़ हम देख सकते हैं । मस्ज़िद की सीढियों पर पडी सुअर की लाश और उससे बनी समस्याओं से 'तमस' में साँप्रदायिकता का जन्म होता है । इससे आपस में मैत्री से जी रहे दो धर्म –हिन्दू और मुस्लिम –के लोगों के बीच दरारें होती है । ये दरारें विकसित होकर मारपीट, आगजनी, लूटपाट आदि में तब्दील हो जाते हैं । इन साँप्रदायिक समस्याओं के प्रायोजक अंग्रेज़ थे और उनके कुचाल थे । भारतीय जनता के मन में पनपी साँप्रदायिक विद्वेष के पीछे की अंग्रेज़ी हिस्सेदारी को भीष्म साह्नी जी ने यों अभिव्यक्ति दी है-कांग्रसी

[1] रंगभूमि- भाग-2, पृ-186

कार्यकर्ता बख्शी जी मन में यों सोचते हैं –"फिसाद करनेवाला भी अंग्रेज़, फिसाद रोकनेवाला भीए अंग्रेज़, भूखों मारनेवाला भी अंग्रेज़, रोटी देनेवाला भी अंग्रेज़ ।"[1] अंग्रेजी उपनिवेशवाद पर इतना सशक्त वाक्य और कहीं नहीं होगा । यह उनके स्वेच्छाचारिता, कुचाल एवं षड्यंत्र का जीवंत चित्रण है । उपनिवेशितों पर जितना ही आतंक छाया हुआ हो, जितनी ही क्षति उनमें हुई हो साम्राज्यवादी अपने और अपने देश की अभिवृद्धि केलिए अमानवीय शोषण एवं दमन चक्र करता रहेगा । उसकी विजय केलिए साँप्रदायिकता का साथ वे ले लेंगे ।

दो धर्मों के बीच होनेवाला साँप्रदायिक विद्वेष अपना विकराल रूप धारण कर मारपीट, आगजनी, लूट-पाट आदि बन जाता है । ऐसी मंडी में लगी आग पूँजीवादी राजनीति का घिनौना रूप है । अब एक दूसरे के खिलाफ अपने स्वार्थों, अहमों और संकीर्णताओं के कारण षड्यन्त्र में लगे रहते हैं । इस प्रकार के समाज में तमस ज़रूर फैलेंगे । लेकिन ऐसे अवसर पर औपनिवेशिक शक्तियाँ इसका लाभ उठाते हैं । 'तमस' का रिचार्ड ऐसे लाभ उठानेवालों का प्रतीक है । वह ज़रूर लाभ उठाएगा क्योंकि इस तमस की पूर्व शर्त विभाजन के बीज सुनियोजित ढंग से उपनिवेशकों ने बोये थे क्योंकि प्रजा के विभाजन में ही शासक की सुरक्षा होती है । हिन्दु-मुसलमानों के बीच उभरे तनाव के बीच रिचार्ड की सुरक्षा के प्रति चिंतित लिज़ा जब उससे पूछती है-"तुम्हें तो कोई खतरा नहीं है ना, रिचार्ड ? तब रिचार्ड उत्तर है- 'नहीं लिज़ा, अगर प्रजा आपस में लडे तो शासक को किस बात का खतरा है ।"[2]

---

[1] . तमस : पृ- 72

[2] तमस : पृ-47

अंग्रेज़ी शासक साँप्रदायिक वैमनस्य को बढावा देकर अपने साम्राज्य को दृढ करने का प्रयत्न कर रहे थे । इसलिए राष्ट्रीय आन्दोलन का एक अंग हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य स्थापना का प्रयत्न भी था । राष्ट्र के नेता गण अंग्रेज़ों के इस कुचाल को भी समाप्त करने केलिए प्रयत्नशील थे । प्रेमचंद जी ने अपने साहित्य द्वारा साँप्रदायिक एकता का सन्देश दिया है । वे कहते थे कि कर्तव्य के क्षेत्र में हिन्दु-मुसलमानों का भेद नहीं , दोनों एक ही नाव में बैठे हुए हैं । डूबेंगे तो दोनों डूबेंगे और बचेंगे तो दोंनों बचेंगे । साँप्रदायिक सद्भाव एवं एकता के बिना एक वैदेशिक शक्ति के खिलाफ संघर्ष नहीं कर सकते, यह तत्कालीन रचनाकार समझते थे । इसलिए समय समय पर लोगों को जागृत करने की कोशिश करते रहे ।

जब से साँप्रदायिकता का ज़हर भारत भूमि पर पडा तब से उसकी अखंडता नष्ट होने लगी । तभी तक भारतवासी बडे गौरव से जी रहे थे । उसी बीच कई विदेशियों ने आक्रमण किया था और शासन भी किया था । लेकिन अंग्रेज़ों की कूटनीति से भरे साम्राज्यवादी शासन ने भारत में तभी तक विद्यमान शांति को जडों से उखाड फेंका । “अगर हिन्दुस्थान की मिट्टी का धर्म समझ लिया जाय तो अल्प संख्यक, बहु संख्यका का सवाल ही पैदा नहीं होता । .....खून तो खयालों को रोशनी देने केलिए होता है । सुर्ख खून सडकों पर बहता हुआ भी उतना ही भयानक है जितना साँप्रदायिकता के ज़हर से काला खून किसी की रगों में चलता हुआ । यशपाल की रचना ‘झूठा सच’ हो या राही मसूम रज़ा का उपन्यस ‘आधा गाँव’ अथवा भीष्म साह्नी का उपन्यास ‘तमस’ ही क्यों न हो वे न केवल इन दोनों तरह के खूनों की गहरी

पहचान करते है बल्कि उस साजिश को भी बेनकाब करते हैं जो इन दोनों तरह के खूनों की राजनीति करती हैं।"[1]

झूठा सच

यशपाल कृत 'झूठा सच' की उत्कृष्टता इस बात में है कि इस में साँप्रदायिकता की ज्वलंत समस्या को सामने लाया गया। उसके पहले भाग 'वतन और देश' में यशपाल ने दिखाया कि साँप्रदायिक शक्तियाँ कहाँ से शक्ति ग्रहण करती हैं और कैसे –कैसे उनका प्रभाव क्षेत्र फैलता चलता है। उपन्यास का मुख्य विषय विभाजन से पूर्व के भारत के राजनीतिक परिदृश्य को सामने लाना है। उपनिवेशित भारत के शोषण भरे वातावरण में एक ओर कांग्रस के नेतृत्व में स्थानीय उभरते हुए पूंजीपति वर्ग की सहायता से राष्ट्रीय आन्दोलन तेज़ी पकडता है, दूसरी ओर ब्रिटेन की शक्ति क्षीण हो जाती है। साम्राज्यवादी शक्ति यह अच्छी तरह जानती थी कि कांग्रज़ के नेतृत्व में यदि राष्ट्रीय आन्दोलन सफल न हो सका तो आन्दोलन की बागडोर किसान और मज़दूर वर्ग के हाथ में आ जाएगी। साम्राज्यवादी शासक इसी में अपना हित समझता है कि जनता के सही निर्णय लेने से पहले, जनता के अंदर सही वर्ग चेतना न पैदा होने देने केलिए बार-बार उसपर साँप्रदायिकता के सवाल को उछाला जाय।

'झूठा सच' सन् 1942 से 1947 तक के काल खण्ड को घेरता है। वह देश विभाजन की पूर्ववर्ती पृष्ठभूमि, उसकी यथार्थ प्रक्रिया तथा परवर्ती परिणति,

[1] जगदीश नारायण स्रीवास्तव : उपन्यास की शर्त पृ-49

सभी को प्रस्तुत करता है। इसकेलिए लेखक ने लाहौर में भोलापाँधे की गली में रहने वाले निम्न-मध्यवर्गीय परिवारों और उनके विभिन्न सदस्यों के बाह्य जीवन, पारस्परिक व्यवहार और व्यक्तिगत आचरण, सामूहिक तथा वैयक्तिक संस्कार, चेतना और मान्यताओं के विभाजन के सन्दर्भ में - उससे पहले, दौरान तथा बाद में - देखा है और फलस्वरूप होनेवाले परिवर्तन या रूपांतरण को दिखाने का प्रयास किया है। "'झूठा सच' एक भयंकर विस्फोट के फलस्वरूप एक छोटी सी गली से बढकर महानगर बन जाने की तीखी यातनाभरी यात्रा की कहानी है।"[1] यह कथन पूर्णत: सही है। क्योंकि उपन्यास के प्रारंभ मे देश के सभी भागों के समान लाहौर और उस गली के जीवन में भी एक परंपरागत स्थिरता एवं जडता दिखाई पडती है। लेकिन दूसरे विश्वयुद्ध के बाद देश की राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन होता है इससे यहाँ की स्थिरता टूट जाती है। देश के संपूर्ण सामुदायिक और वैयक्तिक जीवन में भयानक उथल-पुथल होती है। समाज का हर व्यक्ति अपने मूल केन्द्र से उखडकर दिशाहीन बन जाता है। इस स्थिति का मूल कारण था देश में उपजी भीषण साँप्रदायिकता।

साँप्रदायिकता और उससे जुडी समस्याएँ उपनिवेशकालीन भारत की महत्वपूर्ण घटना थी। इसने पूरे देशवासियों के मन पर एक भयानक छाप छोडी है। यशपाल ने अपने 'झूठा सच' उपन्यास में साँप्रदायिक दंगे के समय मानव पर होने वाली क्षति और उसके भयंकर परिणामों को सामने रखा है। साम्राज्यवादी शासकों की साजिश से उपजी इस साँप्रदायिकता ने पहले जनता में फूट डाली और अंत में उसे दो देश के रूप में विभाजित कर दिया।

---

[1] नेमिचन्द्र जैन : अधूरे साक्षात्कार, पृ-116

विभाजन के समय में हुए आबादी की इस अदला-बदली के दौरान आगजनी, हत्याकाण्ड, ट्रेनों को रोककर हुए कत्लेआम, औरतों के अपहरण और बलात्कार की समूची विभीषिका को प्रस्तुत करते हुए उपन्यासकार ने इतिहास के औपन्यासिक आन्दोलन का प्रयास किया है । धर्म के खातिर रक्तपात से सराबोर एक खौफनाक इतिहास पर 'झूठा सच' का बयान महत्वपूर्ण है – वह इस प्रकार है- "रब्ब ने जिन्हें एक बनाया था, रब्ब के बन्दों ने अपने वहम और जुलम से दो कर दिया ।"[1] इसी के साथ यह टिप्पणी भी भारत की तत्कालीन स्थिति की महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है – "वह काफिला भी वतन छोडकर अपने देश को जा रहा है । मनुखों का देश धर्मों का देश बन गया ।"[2] समकालीन परिस्थिति में भारत की सामाजिक व्यवस्था को देखने पर हमें मालूम हो जाएगा कि यह कथन पूर्णत: सही है । अब मानव और मानवता नहीं जीवित है; उसके बदले धर्म, संप्रदाय और साँप्रदायिकता कायम है ।

देश के हिन्दू और मुसलमानों के मन में साँप्रदायिकता ने एक ज़हर के रूप में प्रवेश किया था । उसने समय पाते ही अपना नृशंस रूप अभिव्यक्त करता ही रहा था । नृशंसता के एक खौफनाक दृश्य को यशपाल की कुशल लेखनी प्रस्तुत करती है । उपन्यास के प्रमुख पात्र पुरी अपनी गवाही में कहता है- "बर्छा हाथों में लिए आदमी ने बर्छा बायें हाथ में ले दायें हाथ से जवान स्त्री के दुपट्टे सहित केशों को पकडकर उसे दर्वाज़े से लुटका दिया और लात के धक्के से नीचे गिरा दिया । बर्छा उठा और दोनें हाथ उठाए भय से रंभाती हुई

---

[1] झूठा सच : पृ- 520

[2] झूठा सच : पृ- 584

बुढिया के खुले मुँह और गले को फाडकर उठ गया ।"[1] यशपाल को साँप्रदायिकता की नृशंसता की अपना निजी अनुभव था । इसलिए उसको पूरी जीवंतता के साथ चित्रित करने में वे सफल बन गए थे ।

यशपाल साँप्रदायिकता के प्रसार का सारा दायित्व अंग्रेज़ पर आरोपित करते है । वह इसकी जडों की तलाश में जाते हैं और गली मुहल्लों की साधारण महिलाओं की आपसी बातचित से इसे पकडने की कोशिश करते हैं । ईस्वर कौर, ज्ञानदेवी, कर्तारो जैसी महिलाओं की आपसी बातचित को उपन्यासकार ने इस लक्ष्य की प्राप्ति केलिए ही चुना है । यशपाल ने यह बात भी अच्छी तरह से जान ली थी कि 'अन्धे साँप्रदायिक वैमनस्य और घृणा का नाश सभी संप्रादायों के लोगों को हिंसक पशु से भी बदत्तर बना देता है । गहरे विश्वास के साथ उन्हों ने सवाल उठाया था कि अंधी साँप्रदायिकता के आत्मघाती उन्माद से यह देश कब मुक्त होगा !

साँप्रदायिकता प्रगतिशील तबके के युवकों को भी अपने वश में कर लेती है । 'झूठा सच' के जयदेव पुरी और असद के माध्यम से यह हम देख सकते हैं । पुरी 1943 में एम .ए के दूसरे वर्ष में पढ रहा था, युद्ध विरोधी आन्दोलन में भाग लेने के कारण गिरफ्तार हो गया । उसका विश्वास था कि देश के दु:ख दूर होने से उसके अपने दु:ख भी दूर होंगे । परंतु वह छोटी-छोटी बातों में साँप्रदायिकता की रंगत देखकर खिन्न हो उडता है । असद भी प्रगतिशील है । फेडरेशन का सदस्य है, परंतु तारा को अपना प्यार पाने केलिए शर्त बंध जाती है कि वह पाकिस्तान में रहे और पाकिस्तान में रहने की शर्त है इस्लाम ग्रहण करना । इस प्रकार साँप्रदायिकता सभी के मन में रूढ

[1] झूठा सच : पृ- 470

होकर जीवित होने लगे । इसमें युव-युवति, बूढे-बूढी सभी शामिल होने लगे थे । इस साँप्रदायिकता के विरुद्ध काम करनेवालों की संख्या बहुत कम थे । जो कुछ लोग थे वे काँग्रसी, समाजवादी आदि बनकर साम्राज्यवादी शासन काल में ड्युअल राल अदा कर रहे थे । एक तो उपनिवेशवादी अंग्रेज़ के विरुद्ध की लडाई और दूसरा भारतीय हिन्दु और मुसलमानों के बीच हुए गृहयुद्ध के विरुद्ध की लडाई ।

उपनिवेशवादी शासक भारतीय समाज के बनते साँप्रदायिक दराजों को देख रहा था और अपने स्वार्थ केलिए इसका भरपूर इस्तेमाल कर रहा था । शक्तिशाली वर्ग समझ चुका था कि साँप्रदायिकता का प्रसार गरीब जनता को एक मंच पर संगठित होने देने की जगह बाँटकर रखने में बहुत असरदायक साबित होगा ।

दरअसल जब साम्राज्यवादी ताकतें सामंती ताकतों के साथ मिलकर समाज में आती है और साधारण जनता की परिवर्तन की कामनाओं – हलचलों को रोकने में असमर्थ होने लगती है, तो सत्ता धारी वर्ग उन्हें सुसंगत तरीके से संप्रदाय, धर्म, जाति के आधार पर तोडने लगता है । भारत में अंग्रेज़ों ने यही किया और आज का सत्ताधारी वर्ग भी यही कर रहा है । 'झूठा सच' में अनेक बार यह दिखाते है कि अशिक्षित और जड मानसिकतावाले समाज में यह भावना बडी आसानी से फैलाई और प्रचरित –प्रसारित की जाती है कि हिन्दु-मुस्लिम कभी एक दूसरे के नहीं रहे और न वे रह सकते हैं । पीढी-दर-पीढी भोलपाँधे की गली में शांतिपूर्वक रहनेवाले लोग दो शिक्षित-सी लगनेवाली महिलाओं के बहलाने-फुसलाने में आकर मुसलमानों को दंगाई

और घृणित मानने लगते हैं। वे तथ्यों को जाँचने-परखने की कोशिश भी नहीं करते। इतना विवेक भी उनमें नही है कि इस प्रकार दो संप्रदायों के तनाव का उनपर या उनके समाज पर क्या दुष्परिणाम होगा ?

इस प्रकार लूट-पाट, हिंसा, आगजनी का माहौल आसानी से बना दिया जाता है। लोग एक दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं। साँप्रदायिकता अपना भीषण रूप धारण करके ताण्डव करने लगती हैं। बच्चों को उनके माओं से छीन लिया जाता है, स्त्रियों के साथ नृशंस बलात्कार किया जाता है। तारा विवाह की पहली रात दंगों के बीच भागकर, इसकी विशेष शिकार बनती है। परिवार उसे अमानवीय स्थितियों में धकेल देता है , तो समाज उसकी पशु से बदत्तर हालत करता है। ऐसा होने पर भी वह हिम्मत नहीं हारती।

'झूठा सच' में स्वाधीनता पूर्व से शुरू हुई साँप्रदायिकता की भीषणता का सजीव अंकन हुआ है। लाहौर उसका केन्द्र था। वहाँ साँप्रदायिक उत्तेजना दिन-प्रति-दिन बढता जा रहा था। इसी की वजह से परस्पर विरोधी जुलूस निकलने लगे, संघर्ष के नारे लगाने लगे थे। इसी बीच पुरी और अन्य लोगों के नेतृत्व में पार्टी एकता के नारे लगाती थी और इस स्सँप्रदायिकता के उत्पादक प्रेरक अंग्रेज़ों को भारत से निकालने की कल्पना भी करने लगा था। लाहौर में जब साँप्रदायिकता की स्थिति बिगडी तो लोग 'हिन्दुस्तान-पाकिस्तान-ज़िन्दाबाद, मूर्दाबाद' के नारे लगाने लगे। मुसलमानों द्वारा भोला पाँधे के 'दौलू' मामा की हत्या ने हिन्दु-मुस्लिम विद्रोह को और भी बढा दिया।

इस प्रकार देश की जनता आपस में झगडा करते समय उपनिवेशी शासक अपनी आँखों के सामने का यह खेल खुशी से देख रहे थे। वे इसको बढावा देते ही रहे। जो भी इस साँप्रदायिकता के विरुद्ध बोलते थे उसको

अंग्रेज़ अपना शत्रु समझता था । और उसको कडी सज़ा भी दिया करता था । पुरी का जेल जाना इसी का उदाहरण है । वह पैरोकार में साँप्रदायिकता विरोधी लेख लिखता है । इससे उसे नौकरी से अलग कर देता है । लेख में अन्ध साँप्रदायिकता की ओर संकेत करने की वजह से उसे जेल जाना पडता है । इस प्रकार की अमानवीय राजनीति अंग्रेज़ों की साम्राज्यवादी शोषण नीति के कारण हुआ था । इसके विरुद्ध के संघर्ष की गाथा को यशपाल ने महत्वपूर्ण ढंग से अभिव्यक्ति दी है । ये संघर्ष उपनिवेशी शासन के विरुद्ध का संघर्ष था । इसलिए हम कह सकते है 'झूठा सच' महाकाव्य की भाँति विशाल पृष्ठभूमि पर लिखा गया, यथार्थवादी, राजनीतिक और ऐतिहासिक उपन्यास है । पूरे उपन्यास पर हम सोच विचार करें तो प्रो: कुंवरपाल सिंह का कथन सच निकलता है – "स्वतंत्रता केलिए लडी गयी लडाई में भारत की जनता ने जहाँ आत्मालोचन में आँखें खोलीं और स्वाभिमान तथा संघर्ष का पाठ पढा । वहाँ उन्हें साँप्रदायिकता की विष वेल को भी झेलना पडा ।"[1]

भारतीय जनता के मन में उमड आई इस साँप्रदायिकता ने देश में एक ऐसी स्थिति पैदा की जिसमें विभिन्न धर्मों के लोग दमघोंटु वातावरण में जीने केलिए अभिशप्त थे । इस प्रकार उमड आयी साँप्रदायिकता अपनी चरम सीमा पर पहूँचने पर भारत को दो हिस्सों में बांटना पडा । "भारत विभाजन के समय साँप्रदायिक संघर्ष में जो अमानुषिक नरसंहार हुआ वह बीसवीं सदी के भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व है । इस नरसंहार की अमानुषिकता आत्मा को दहशत में डाल देती है । इस घटना की छाप उस समय भारतीय रचनात्मकता पर व्यापक रूप से पडी । इस नरसंहार से स्वाधीनता का न केवल उल्लास

[1] प्रो . कुंवरपाल सिंह : यशपाल पुनर्मूल्यांकन, पृ 280

मिट गया वरन् उससे हमारे मूल्य भी घायल हो गए ।"[1] उपनिवेशवाद के विरुद्ध के संघर्ष में हमारे जो-जो आदर्शवादी मूल्य रचे गए थे वे सब रक्तरंजित हो गए । इससे रचनात्मकता को एक संघर्ष शील प्रेरणा मिली । तत्कालीन उपन्यासकार अपनी महत्वपूर्ण लेखनी से इस उपनिवेशी शासन और अमानुषिक नरसंहार के विरुद्ध काम करने लगे । इससे उपनिवेश प्रतिरोधी कई रचनाएँ सामने आईं जो जनता को आन्दोलित करनेवाली थी ।

उपनिवेशी शासन के विरुद्ध चली स्वाधीनता संग्राम एक महान आन्दोलन था । लेकिन उस आन्दोलन के ऊपर साँप्रदायिक उन्माद की काली छाया पडने पर उसकी महानता धीरे-धीरे नष्ट होने लगी । भारत की जनता हिन्दु, सिख और इस्लाम राज्य के नाम पर शस्त्र लेने लगे । परिस्थितिवश भयानक दंगे हुए, हर संप्रदाय के लोग अपने लोगों को इकट्ठा करके जंग केलिए तैयार हुए । यशपाल के झूठा सच में इसक सशक्त चित्रण हुआ है । अगस्त 1946 में कल्कत्ता में साँप्रदायिक दंगे होते हैं । लाहौर में अफवाहें फैलती हैं और प्रचार किया जाता है कि मुसलमानों ने कल्कत्ता में हज़ारों हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया । मुसलमान कहते हैं कि पाकिस्तान बनाएँगे इसी की तैयारी चल रही है । उपन्यास में ईस्वर कौर दृढता से मुट्ठी बाँधकर कहती है- "पंजाब हमारा है तो पंजाब में रहने केलिए मुसलमानों का मुकाबिला करना होगा । तुम सब ने देखा था न 16 तारीख को मुसलमानों ने कितना बडा जुलूस निकाला था । बंगाल में तो लडाई शुरू हो गई , अब पंजाब में होगी ।"[2] ऐसी जनता के बीच में आयी साँप्रदायिक भेद-भाव और

---

[1] विजेन्द्र नारायण सिंह : आलोचना, अप्रैल/सितंबर 2004

[2] झूठा सच – पृ- 72

उससे बनी विद्रोह भावना ने समस्या को आपसी झगडे तक ला खडा कर दिया । हिन्दु-मुस्लिम झगडे की अभिव्यक्ति यशपाल ने यों दी है ... "स्वर धीमा कर उसने बताया 'मुसलमान खूब तैयारी कर रहे है । पानी के नल काट कर बन्दूकें बना रहे हैं । मुसलमानियों ने भी छुरे रख लिए हैं । हमीं लोग सोए हुए हैं । तुम्हें चाहिए अपने घर के सभी मर्दों को उखाडॅ भेजो । सब लोग लठी, तलवार, बंदूकें चलाना सीखे नहीं तो तुम्हारी जायदादें कहाँ बचेंगी ? "[1] ऐसे एक ही देश की जनता रणभूमि पर उतरी, तत्कालीन शासक इसका फायदा उठाता रहा । उनका लक्ष्य था यहाँ पनपी राष्ट्रीयता को खत्म करना । इस प्रकार यशपाल ने झूठा सच में साँप्रदायिक दंगों के दौरान हुई मानव क्षति और उसके भयंकर परिणामों को सामने रखा है । यह एक ऐसी महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना थी जिससे पूरे देशवासियों के मन पर एक भयानक छाप छोडी है ।

साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है, अत: युगविशेष के सामाजिक जीवन की प्रमुख प्रवृत्तियाँ ही उस युग के साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ है । साँप्रदायिकता उपनिवेशित भारत की एक भीषण समस्या थी । इस ज्वलंत समस्या को युगीन रचनाकारों ने वाणी दी । इस प्रकार साँप्रदायिकता तत्कालीन रचना की एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में सामने आयी । समाज का संगठन मानव ने इसलिए किया था कि बली निर्बल को न सताए । निर्बल को भी जीने, खाने पीने, भोग विलास करने का समान अधिकार प्राप्त होना है । लेकिन सृष्टि के आदिम युग में मनुष्य में विद्यमान पशुता सदियों बाद के संस्कृत मानव में भी विद्यमान है और उसका रूप भी भीषणतम बन गया है ।

---

[1] झूठा सच – पृ-72

मानव की यही पाशविक वृत्ति ही अंग्रेज़ी उपनिवेशकों में काम करती थी । इसी की वजह से वे भारत जैसे निर्बली के ऊपर लडने लगे और भारतवासियों को आपस में लडाने की कोशिश करने लगे । छोटी छोटी समस्याओं के होते हुए भी भारत एक सुसंस्कृत एवं सामाजिक एकता पर बल देकर चलनेवाला देश था । लेकिन अंग्रेज़ी साम्राज्यवादियों के अमानुषिक एवं पाशविक चिंतन भारतीयों के ऊपर भी पडने लगे उसका एक दुष्परिणाम था यहाँ उपजी या उपजाई साँप्रदायिकता , जो आज भी भारत के किसी न किसी स्थानों में अवसर मिलते ही सिर उठाती हैं ।

अंग्रेज़ी उपनिवेशवादी साँप्रदायिकता को योजनाबद्ध ढंग से प्रयोग में लाते थे । साँप्रदायिकता एक सामाजिक व्यवस्था के तहत रची गई मानसिकता से उत्पन्न होती है । साँप्रदायिकता के आर्थिक कारण भी है । लोग पराई संपत्ति हडपने केलिए भी दंगा कराते हैं । एक आक्रामक तिजारती, बहशी सभ्यता आर्थिक लोभ से साँप्रदायिकता को बढावा देती है । दूसरे के घर और जायदाद को हथिया लेना उसका लक्ष्य होता है । भारत में अंग्रेज़ों ने साँप्रदायिकता को इसलिए बढावा दिया कि जनता आपस में लडें और उसी बीच अपना साम्राज्यवादी शोषण तंत्र आसानी से चलाता रहे । साँप्रदायिकता का हर खेल अमानुषता को दृढ करता है ।

'फूट डालो और राज्य करो' वाली नीति

1857 के असफल स्वतंत्रता संग्राम के बाद जाति,संप्रदाय, क्षेत्र, भाषा के आधार पर जनगणना की कवायद, एजुकेशन कम्मीशनों के गठन तथा उनके सामने एक दूसरे के विरुद्ध पिटीशनों का नाटक शुरू किया गया, वह

सब और कुछ नहीं , उपनिवेशवादियों द्वारा जाति , भाषा और क्षेत्र तथा संप्रदाय के नाम पर देशवासियों को बाँटने की संभावनाओं को तलाश करना था ता कि उपनिवेशित समाज को छोटे-छोटे उप खण्डों में सीधा विभक्त कर राज किया जा सके। यही थी उनकी 'डिवइड एण्ड रूल' वाली नीति।

उपनिवेशित भारत में हुई हिन्दु-मुस्लिम संघर्ष बीसवीं शदाब्दी की भारतीय राजनीति का एक महत्वपूर्ण अंग है। इस संघर्ष ने औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध हुए राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में सर्वधा बाधा पहूँचाई। भारतीय में मुसलमानों का आगमन एक महत्वपूर्ण घटना थी , जिसके आचार-विचार हिन्दुओं के आचार-विचार से सर्वधा भिन्न थे। दूसरी बात यह थी कि सदियों तक विशाल हिन्दु जाति पर मुसलमान शासन करते रहते थे। निर्वाचन पद्धति तथा जनतांत्रिक व्यवस्था में बहुसंख्यक जाति की ही प्रधानता रहती है। अतएव मुसलमानों ने जाति के आधार पर शासन में अपनी सीटों की माँग का प्रस्ताव रखा। हिन्दु सदैव इस माँग का विरोध करते रहे, लेकिन ब्रिटिश सरकार राष्ट्रीय शक्तियों के संगठन में फूट डालकर शासन करने के उद्धेश्य से मुसलमानों की उचित अनुचित माँगों का समर्थन करता रहा। फलत: दोनों जातियों में साँप्रदायिक वैमनस्य चरम सीमा पर पहूँच गया। इसकी वजह से सामाजिक जीवन की शांति भंग होने लगी। हमारे राष्ट्रीय संग्राम के अग्रदूत गांधी जी ने अपने राजनीतिक जीवन के आरंभिक दिनों में ही गोरों की काली नीति को समझ लिया था और इसलिए उन्होंने इस साँप्रदायिकता का प्रारंभ से ही विरोध किए थे। लेकिन उनको पर्याप्त सफलता नहीं मिल सकी। इससे राष्ट्रीय चेतना के विकास में बाधा पहूँची। अंग्रेज़ी उपनिवेशवादियों की कूटनीति से उत्पन्न साँप्रदायिकता और उसकी

भीषणता को भगवतीचरण वर्मा ने भी अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति दी है। उनके 'भूले बिसरे चित्र' , 'सामर्थ्य और सीमा' और 'सीधी सच्ची बातें' नामक उपन्यसों में इस समस्या को व्यापक परिवेश में उठाया है।

भूले बिसरे चित्र

उपनिवेशित यथार्थ को भगवतीचरण वर्मा ने महत्वपूर्ण ढंग से चित्रित किया है। उनका एक सशक्त उपन्यास है 'भूले बिसरे चित्र'। इस उपन्यास में उपनिवेशित भारत में एक साम्राज्यशाही देश के कूट नीतिपूर्ण शासन एवं शोषण के खिलाफ के संघर्ष को वर्मा जी ने वाणी दी है। डॉ.शशिभूषण सिंहल के अनुसार-"भूले बिसरे चित्र में 19 वीं शताब्दी के अंतिम चरण से लेकर बीसवीं शती के तीसरे दशक तक उपन्यासकार की दृष्टि जाती है। वह देश की मूल राजनीतिक चेतना-कांग्रस आन्दोलन-तक पहूँचने के क्रम में उस युग में व्याप्त साँप्रदायिक-सामाजिक चेतना , पारिवारिक व्यवस्था और व्यक्ति की जीवन पद्धति को नि:संग दृष्टि से देख जाता है।"[1] साँप्रदायिकता का बीज बोने के पहले सन् 1857 की महान क्रांति में भारतीय जनता हिन्दू-मुसलमान के भेद के बिना कन्धे से कन्धे मिलाकर अंग्रेज़ों के विरुद्ध लडी थी। लेकिन बाद में वे धार्मिक संकीर्णता से ग्रस्त हो गयी और अंग्रेज़ों की भेद-नीति की शिकार बनकर हिन्दुओं से वैमनस्य प्रकट करने लगी। फलत: मुस्लिम जनता हिन्दुओं से सदा केलिए दूर होती गयी। अंग्रेज़ों की पराधीनता स्वीकार करने के बाद भी वह हिन्दुओं के साथ समझौता न कर सकी क्योंकि हिन्दुओं पर वह सदियों तक शासन कर चुके थे। जिस पर उन्हों ने शासन किया उससे शासित

[1] शशिभूषण सिंहल : भारतीय स्वतंत्रता और हिन्दी उपन्यास, पृ-93

होने में अपना अपमान समझकर डोमिनियन स्टेट्स तक की माँग में मुस्लिम सहयोग न दे सके। उनकी इस मानसिकता को 'भूले बिसरे चित्र' में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है - डिप्टी अब्दुल हक कहते हैं- "डोमिनियन स्टेट्स, स्वराज्य इसके माने हैं अंग्रेज़ों की सरपरस्ती हिन्दु राज्य का कायम होना ठाकूर साहब ! यह जो डेमोक्रेसी है, वहाँ वोट पडते हैं , वहाँ हिन्दुओं की बन आएगी । क्योंकि उनकी तादाद हम मुसलमानों की तादाद से बहुत ज़्यादा है । ऐसी हालत में हम मुसलमानों को अंग्रेज़ों की जगह हिन्दुओं की गुलामी करनी पडेगी । तो एक हल्की-फुल्क गुलामी से निकलकर जनम-जनम तक अखरनेवाली गुलामी में हम बाँधने को तैयार नहीं।"[1] अंग्रेज़ों ने मुसलमानों की इसी भावना को प्रोत्साहित किया जिससे दोनों धर्मों के बीच भेदभाव की खाई सदैव बढती गयी । इन्हीं समस्याओं से महात्मा गांधी द्वारा किए गए सामाजिक भेदभाव और ऊंच-नीच मिटाने का हर प्रयत्न विफल रहा। क्योंकि इन्हीं प्रयत्नों में मुसलमानों को हिन्दू धर्म प्रचार की बू आती दिखाई दी थी।

गांधीवादी प्रतिरोध

उपनिवेश प्रतिरोधी संघर्ष में महात्मा गांधी का और उनके दर्शन की महान भूमिका है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गांधी जी के आगमन से एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। उन्हों ने अपने सत्य,अहिंसा, सत्याग्रह, बहिष्कार, अवज्ञा आदि के द्वारा एक शक्तिमान देश की शोषण और दमनकारी नीति के खिलाफ एक महान विद्रोह को रष्ट्रवादियों के सम्मुक रखा । गांधी जी के आगमन से ही भारतीय जनता में अचल विद्रोह भावना पैदा हुई थी। जनता

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ-145

उनके नेतृत्व में रण भूमि पर उतरे, एक जुड होकर । लेकिन ऐसी स्थिति ज़्यादा समय तक नहीं रहा । उतने में साँप्रदायिक भेद-भाव देश में जाग उठी थी । इसको प्रश्रय दिया स्वयं अग्रेज़ों ने । गांधी जी ने खिलाफत आन्दोलन को भारतीय स्वरतंत्रता आन्दोलन के साथ चलाया । इसके पीछे उनकी एकता वाली दृष्टि थी ।

गांधी जी का खिलाफत आन्दोलन जब तक चलता रहा मुस्लिम सहयोग देते रहे । परंतु जैसे-जैसे भारतीय राजनीति ने करवट बदली और अंग्रेज़ों ने उनके कान फूँकने शुरू किए, वह हिन्दुओं से दूर ही नहीं होते गए, अपितु बहुसंख्यक मुस्लिम स्वतंत्रता संग्राम के विरोधी हो गए । इसको व्यक्त करते हुए वर्माजी भूले बिसरे चित्र के अब्दुल हक के द्वारा कहते हैं-"एक हज़ार वर्ष तक हमने हिन्दुओं पर हुकूमत की है, अब स्वराज्य मिलने के माने है कि हिन्दु हम पर हुकूमत करेंगे, हम सताएँगे । हम किसी हालत में इस स्वराज्य पर राजी नहीं होंगे ।"[1] इस प्रकार देशी जनता अपनी धार्मिक कट्टरताओं और अधिकार लिप्सा के कारण दो पाटों में बाँटने लगे तो देश की राष्ट्रीय एकता नष्ट होने लगी । इससे उपनिवेशी सत्ता के विरुद्ध का संगठित प्रतिरोध भी क्षीण होने लगा ।

गांधी जी हिन्दु-मुसलमानों में एकता लाने की कोशिश करते रहे । क्योंकि वे जानते थे कि इसके बिना साम्राज्यवादियों के खिलाफ प्रतिरोध नहीं कर सके । इसलिए जनता के दो महान वर्ग - हिन्दु,मुस्लिम - में अग्रेज़ों द्वारा उत्पन्न की गयी भेदभाव पूर्ण नीति को असफल बनाकर गांधी जी ने एकता स्थापित की । देश में विघटित हो गयी एकता शक्ति स्थापित किए बिना

---

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ-332

अहिंसावादी सिद्धांत द्वारा एक विदेशी शक्ति का सामना करना कठिन ही नहीं असंभव है यह गांधी जी ने समझा था। इसलिए खिलाफत आन्दोलन में गांधी जी ने देश की हिन्दु-मुस्लिम जनता को समान रूप से भाग लेने केलिए प्रोत्साहित किया था। भूले बिसरे चित्र के ज्ञानप्रकाश सन् 1920 के राष्ट्रीय दिवस की विवेचना करते हुए कहता है – "कहते तो बरखुरदार ठीक हो। इस मुसलमान की जडें हिन्दुस्तान में नहीं है, इसकी जडें तुर्की में है और मक्का मदीना में है ; जब वह कहते हैं तब उनकी बात माननी ही पडती है। तो बरखुरदार इस भाई-भाई की आवाज़ से अगर हिन्दु-मुसलमानों में एकता हो जाय तो क्या बुरा है।"[1] यहाँ साँप्रदायिकता के विरुद्ध उठे विद्रोह को हम देख सकते है। गांधी जी ने हिन्दु-मुस्लिम एकता के प्रयत्न के साथ अन्य कई आन्दोलनों का मार्गप्रशस्त किया था। जिससे एक औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध संघर्ष होने लगा। इसकेलिए उन्हों ने सत्य और अहिंसा का मार्ग अपना लिया। जिससे विरोधियों को भी उनके सामने सिर झुकाना पडा। उनकी इस त्याग-तपस्या से कई हिन्दु, मुसलमान भी प्रभावित हुए थे और वे उनके अनुयायी भी बन गए थे। भूले बिसरे चित्र के फरहत्तुल्ला गांधी जी के व्यक्तित्व की महान गरिमा से अभिप्रेरित दिखाई पडता है, उनके शब्दों में "मैं इनसाफ और नेकी को नहीं छोड सकता-क्योंकि इनसाफ और नेकी महात्मा गांधी के साथ है। और महात्मा गांधी के पास एक और ताकत है- अहिंसा। मैं तो अहिंसा का मुरीद हूँ और इसलिए मुझे किसी से शिकायत नहीं है, किसी से बुग्ज नहीं है।"[2] लेकिन ऐसी मानसिकता ज़्यादा समय तक कायम नहीं रहा।

---

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ-332

[2] भूले बिसरे चित्र : पृ-434-35

अगर रही तो देश में बाद की साँप्रदायिकता की भीषण स्थिति नहीं पैदा होती थी। गांधी जी की एकता वाली बात काफी दिन तक नहीं रही। उनके अथक प्रयत्नों के बावजूद भी हिन्दु-मुस्लिम एकता की माँग तिरस्कृत होने लगी।

मुस्लिम लीग और सांप्रदायिक समस्या

सन् 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। इसी दौरान सन् 1909 के सुधार अधिनियम से मुसलमानों को पृथक प्रतिनिधित्व मिल जाने के फलस्वरूप कुछ उच्चवर्गीय मुसलमानों को एक अलग राजनीतिक मंच मिल गया। इससे मुस्लिम लीग की गतिविधियों की प्रतिक्रिया हुई और हिन्दुओं में भी साँप्रदायिक राजनीति करनेवाले लोग आगे आए। इस प्रकार दो धर्मों के बीच साँप्रदायिक भेद-भाव एवं अन्य समस्याएँ ज़ोर पकडने लगे।

सीधी सच्ची बातें

भारतीय राजनीति में मुस्लिम लीग के प्रवर्तक मुहम्मद अली जिन्ना का आना और उन्हें गांधी की समकक्षता में सम्मान न प्राप्त होना हिन्दु-मुस्लिम भेद-भाव की भावना को और अधिक जटिल बना दिया। इससे स्थान और सम्मान केलिए झगडा शुरू हुआ। अंग्रेज़ इन सब गतिविधियों को नि:संग भाव से देखता रहा। 'सीधी सच्ची बातें' का ज़मील अहम्मद कहता है- "आखिर मिस्टर जिन्ना को जलन किस बात की है ? इसलिए न कि महात्मा गांधी मिस्टर जिन्ना को अपने बाद का दूसरा दर्जा नहीं दे सके। महात्मा गांधी अपने से मज़बूर है।"[1] ऐसी राजनीति के क्षेत्र में धर्म अपना बहुमुखी खेल खेलने लगे, जनता में आपसी वैमनस्य दिनों-दिन बढता रहा। कूटनीतिज्ञ

[1] सीधी सच्ची बातें : पृ-155

अंग्रेज़ समय समय पर इस भेद-भाव को बढाने आवश्यक मदद देता रहा । फलत: देश में साँप्रदायिकता ने अपना भीषण रूप धारण कर लिया । कई देश सेवी इसको सुलझाने का प्रयत्न भी करते रहे । लेकिन भारतीय स्वतंत्रता के बीच हुई इस हिन्दु-मुस्लिम समस्या को सुलझाने के जितने प्रयत्न किए गए, उतनी ही वह जटिल होती गयी । राजनीतिक व्यक्तियों, जिन्ना और गांधी, का व्यक्तिगत मामला हिन्दु-मुस्लिम समस्या का रूप धारण कर विस्फोटक स्थिति में परिणत हो गया । एक कांग्रसी मुसलमान बशीर अहम्मद कहते हैं – "जिन्ना को गांधी के बाद दूसरा दर्जा नहीं चाहिए, उन्हें गांधी के मुकाबले बराबरी का दर्जा चाहिए । गांधी हिन्दू हैं, जिन्ना मुसलमान, कोई एक दूसरे से छोट-बडा क्यों हो ? मैं कहता हूँ कांग्रस के इस अडने से और गांधी की इस जिद्द से देश का बटवारा होकर रहेगा । जिन्ना गांधी से कम किसी हालत में नहीं है । "[1] जो भी हो एक ही देश में रहने वाली, साधारण जनता धर्म के नाम पर दो देशों में बांटने की मानसिकता की ओर मुडने लगी । यहाँ आकर अंग्रेज़ों की 'फूट डालो और राज्य करो ' वाली नीति काम में आयी यानि कि सफल निकला । इसलिए महान देश भारत को कई नुक्सान भी उठाना पडा । अंग्रेज़ों ने 'डिवाइड एंड रूल ' द्वारा मुस्लिम में भेद-भाव पैदा कर परतंत्रता की अवधि को काफी दिन तक बढाया । इसका असर स्वतंत्रता आन्दोलन में सशक्त रूप में पडा ।

निष्कर्ष

संक्षेप में कहें तो समता, भाईचारा, आपसी प्रेम आदि गुणों से संपन्न आम भारतीय के मन में अपनी निजी स्वार्थ एवं कूटनीति के तहत

---

[1] सीधी सच्ची बातें : पृ-159-60

घृणा, भेद-भाव की दृष्टि एवं धार्मिक संघर्ष की मानसिकता को पैदा कर साम्राज्यवादी अंग्रेज़ ने एक महान देश को तहस नहस कर डाला । देश की जनता के नेक जीवन केलिए काम में आनेवाले धर्म ने साँप्रदयिकता का रूप धारण कर अपना गलत खेल खेला । इस खेल के पीछे की बागडोर संभाली अंग्रेज़ों ने । उपनिवेशित भारत में हुई इन साँप्रदायिक समस्याओं ने देश की जनता के मनसे इंसानियत को उखाड फेंका । इसका दुष्परिणाम था स्वतंत्रता के तथा बाद के समय में हुआ भीषण हत्याकांड । ऐसी दुरवस्था से परिचित कराने तथा उससे अपने देश को मुक्त कराने का काम स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से किया । औपनिवेशिक शक्तियों के प्रतिरोध संदर्भ में सांप्रदायिकता के विरुद्ध हुए ये साहित्यिक प्रयास उल्लीखनीय हैं ।

अध्याय चार

अर्थिक शोषण और प्रतिरोध

भारत के लंबे इतिहास में उन्नीसवीं शदाब्दी कई सन्दर्भों में एक अविस्मरणीय कालावधि है। सर्वप्रथम इस शदाब्दी में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने भारत को पूर्णतया पराधीन बना लिया। पहले भारत के साथ संबन्ध यूरोप वालों ने व्यापार केलिए स्थापित किया था। लेकिन बाद में वह उपनिवेशी शासन के रूप में परिणत हो गया। इस उपनिवेशी सत्ता के रूपायन के पीछे भारत की अपार प्राकृतिक संपदा एवं संपत्ति के साथ-साथ देशी राजाओं के आपसी वैमनस्य अथवा फूट काम करते थे। इसी की वजह से भारत को कई वैदेशिक अधिपतियों के अधीन रहना पडा और अंत में ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बनना पडा।

यूरोपीय देशों ने कमज़ोर देशों में अपना उपनिवेश स्थापित किया था। उपनिवेश विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति केलिए किया जाता है। जैसे आबादी की वृद्धि को कम करने केलिए, गरीबी को हटाने केलिए, नए बाज़ार के सृजन केलिए, कच्चे मालों के नवीन स्रोतों की पुष्टि केलिए, सैनिक अड्डा स्थापित करने केलिए आदि। लक्ष्य कुछ भी हो उपनिवेशवादी मानसिकता के पीछे ताकतवार देशों की आर्थिक शोषण नीति छिपी हुई है। भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों को इसका शिकार बनना पडा है। "राजनीति में उपनिवेश श्ब्द का अपना रूढी अर्थ है। उसका

आशय उन देशों से लिया जाता है जिन पर किसी बाहरी देश ने अधिकार कर लिया है और वह अधिकृत देश के साधनों का अपने साम्राज्यवादी हितों केलिए दोहन करता है । औद्योगिक क्रांति के बाद प्राप्त शक्ति के साथ यूरोप के देशों ने एशिया, आफ्रिका और अमेरिका में ऐसे अनेक उपनिवेश स्थापित किए । पहले के सम्राट जहाँ सैनिक शक्ति के सहारे अपनी सत्ता स्थापित करते थे, वहाँ इन नए उपनिवेशवादियों ने व्यापार के और धर्म प्रचार के बहाने से इन देशों में प्रवेश किया और कालांतर में कूटनीति और युद्धनीति दोनों का प्रयोग करके अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित करने में सफलता प्राप्त की ।"[1] भारत के साथ भी ऐसा ही हुआ । एक सुव्यवस्थित व्यापारी वर्ग भारत में आए और भरत के साथ व्यापार का नया मार्ग उन्हों ने खोला । सन् 1294-95 ई वीं में मार्को पोलो नामक वेनीश्यन व्यापारी एवं सन् 1498 ई वीं में वास्को-द-गामा नामक पुर्तगली व्यापारी भारत आए । "गामा की खोज से भारत तथा यूरोप के मध्य में एक नवीन आन्दोलन का सूत्रपात हो गया और बहादुर यूरोपीय साहसियों केलिए भारत प्रवेश का सामुद्री मार्ग प्रशस्त हो गया ।"[2] ऐसे एक शक्तिशाली साम्राज्यवादी देश का भारत पर आगमन हुआ । भारत में व्यापार से शुरू करके छल कपट भरी शोषण नीति से अंग्रेज़ यहाँ के अधिपति बने । इसी के साथ अपने अधीशत्व को बनाए रखने केलिए शोषण पर आधारित शासन व्यवस्था का भी उन्हों ने सृजन किया ।

---

[1] भारतीय संस्कृति कोश – पृ- 142

[2] विन्सेंट स्मित : ओक्सफोर्ड हिस्टोरी ओफ इंडिया, पृ-7 (आमुख)

अंग्रेज़ों ने आर्थिक स्तर पर देश को तहस-नहस कर दिया, उसे जी भरकर लूटा । किंतु अपने उपनिवेश की रक्षा तथा व्यापार की समृद्धि केलिए उन्हों ने कानून और व्यवस्था कायम की । भूमि का नया प्रबन्ध किया, रेल, तार, डाक का जाल बिछाया । अंग्रेज़ी शिक्षा की नीव डाली, प्रेस खोला । इस प्रकार अपने हितों की पूर्ति केलिए उन्हों ने सबकुछ किया । इससे धीरे-धीरे भारतवर्ष का आधुनिकीकरण भी हुआ । इस आधुनिकीकरण ने भारत के पूरे नक्शे को बदल दिया ।

अंग्रेज़ों ने पुरानी आर्थिक संरचना को बदला । ज़मीन का नया बंदोबस्त किया । व्यावसायिक खेती को बढावा मिला । कच्चा माल प्राप्त करने केलिए अंग्रेज़ों ने कपास, पटसन, जूट और नील की खेती को प्रोत्साहन दिया । लोगों को नील बोने केलिए बाध्य किया जाता था । डर के मारे किसान गेहूँ के स्थान पर नील बोते थे । इससे देश में खाद्यान्न की कमी महसूस होने लगी । जनता इसके विरोध में संघर्ष किए । चंपारन में गंधी जी का सत्याग्रह आन्दोलन मूलत: नील की खेती के विरुद्ध में ही हुआ था । कच्चा माल विलायत भेजा जाता था और वहाँ से पके माल के रूप में बदलकर भारत के बाज़ार में पहूँच जाता था । इस बंदोबस्त के फलस्वरूप नए वर्ग संबन्धों की सृष्टि हुई । आर्थिक संरचना का जो नया रूप सामने आया, वह न तो पूँजीवादी था न सामंतवादी और न ही मुगलों की पुरानी व्यवस्ता की कोई कडी था । यह एक नया ढाँचा था जिसे उपनिवेशवाद ने बनाया ।

औपनिवेशिक भारत की आर्थिक स्थिति

एक विशालसुसंपन्न देश की संसाधनों के ऊपर जब यूरोपवालों की दृष्टि लगी तब से वे उसे हडपने केलिए काम करने लगे । पहले व्यापार ही एकमात्र आश्रय था । यहाँ के राजाओं से मिलकर पहले उन्हों ने व्यापार संबन्ध स्थापित किया और व्यापार करने लगे । ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना तक अंग्रेज़ यहाँ के कपास और मसाले के बदले सोना, चाँदी आदि दिया करते थे । इसप्रकार अपना व्यापार कार्यक्रम चलता रहा । क्रूसेड्स यानि ईसाइयों और मुसलमानों के बीच के मध्यकालीन युद्ध के आगमन से यहाँ से खरीदती चीज़ों की माँग बढी । उसी प्रकार यूरोपीयों की खाद्य प्रणाली में परिवर्तन आने लगे । इसलिए भारत के साथ व्यापार में बढोत्तरी हुई । "यूरोपीय दोशों ने अपने प्रभुत्व को बढाने केलिए समय-समय पर आपस में युद्ध किए हैं । इसे सप्त वर्षीय युद्ध भी कहते है । इस सप्तवर्षीय युद्ध के फलस्वरूप ब्रिटेन तो शक्तिशाली हो गया पर फ्रांस की शक्ति अधिक क्षीण हो गयी । अमेरिका, भारत और आफ्रिका में अंग्रेज़ों के उपनिवेश स्थापित हो गए । इन उपनिवेशों के कारण ब्रिटेन छोटा देश होने पर भी यूरोप में सबसे अधिक बलवान देश बन गया ।"[1] ऐसे अंग्रेज़ी उपनिवेशवाद की स्थापना से सुसंपन्न भारत की स्थिति दिनों-दिन अत्यंत बदत्तर होने लगी । इससे देश का आर्थिक ढाँचा ही बदल गया ।

---

[1] शुभम् : विश्वप्रसिद्ध युद्ध, पृ-76

सन् 1757 के प्लासी युद्ध के बाद यहाँ से लेनेवाले मालों के बदले सोना-चाँदी देना बंद हो गया। अंग्रेज़ यहाँ अपना पूर आधिपत्य स्थापित करने लगे। कल्कत्ता, मद्रास,तथा बंबई की व्यापारशालाओं के अलावा उन्होंने उत्तरभारत को भी अपने कब्जे में कर लिया। 1826 के भरतपूर युद्ध , 1849 के द्वितीय सिख युद्ध आदि के ऊपरांत अंग्रेज़ों का प्रभुत्व पूरे देश में जम गया।

भारत को अपने अधीन में करने के बाद साम्राज्यवादी अंग्रेज़ों ने अपनी तरफ से कर लागू कर दिया और उसी रकम से वे यहाँ से माल खरीदते थे। भारत की अर्थ व्यवस्था का पतन यहाँ से शुरू हुआ। "प्लासी के युद्ध के बाद हिन्दुस्थान की दौलत बरसाती नदी की तरह ब्रिटन की तरफ चल पडी। इस दौलत ने ब्रिटन में औद्योगिक क्रांति पूरा करने में बडी मदद की। भाप के इंजिन, पावरलूम और बडे पैमाने पर माल तैयार करनेवाली मशीनों का आविर्भाव हुआ। औद्योगिक क्रांति के पूरा होने पर ब्रिटन के कारखानेदारों के सामने बाज़ार की समस्या खडी हो गयी अपने कारखानों का माल बेचने केलिए उन्हें बाज़ार की ज़रूरत थी। हिन्दुस्तान के विशाल बाज़ार पर उनकी गिद्द दृष्टि जाना बिलकुल स्वाभाविक था।"[1] भारत में अपने मार्केट स्थापित करके वे भारत से कपास और अन्य कच्चे माल आवश्यकतानुसार ले जाते रहे। इनके द्वारा तैयार किए गए सस्ते माल हिन्दुस्थान के बाज़ार में ही बेच कर उन्हों ने यहाँ के पुराने हस्त व्यवसायों को पराजित किया। धीरे-धीरे हिन्दुस्तान के बाज़ार उनके कब्जे में आ गए। इस प्रकार भारत कच्चे मालों का एक स्रोत तथा विदेशी वस्तुवों के उपभोक्ताओं का

[1] अयोध्यासिंह : भारत का मुक्ति संग्राम, पृ-17-18

एक उपनिवेश बन गया । अपने व्यापार, हथियार तथा प्रशासन व्यवस्था के माध्यम से साम्राज्यवादी अंग्रेज़ ने यहाँ की जनता को पराजित किया और ज़बर्दस्ती से हमारे देश के उद्योगों को खत्म कर दिया । ऐसे भारत का आर्थिक शोषण शुरू हुआ ।

अंग्रेज़ों ने भरतीय कपडा मिलों के उत्पादन पर उत्पादन शुल्क लगाकर अंग्रेज़ी कपडा उद्योग की सहायता की । कृषि को भी उन्होंने पूर्ण शोषण का क्षेत्र बनाया । कृषि से जो कुछ मिलता था उन सब का पूर्ण शोषण किया गया । इससे जितने धन बटोरते गए उन सबको अपने देश ले जाते थे । इस प्रकार उनका शासन पूर्णत: शोषण पर अवस्थित था ।

भारत में 'ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी' की स्थापना के समय उपनिवेशवाद की तीन विशेषताएँ एक साथ प्रकट हुई । पहला- उनका जन्म बल प्रयोग से हुआ, दूसरा-उसने ज़मीन की मूल उपज को औपनिवेशिक अर्थ तंत्र का मूलाधार बनाया, तीसरा- उसने बलप्रयोग और शोषण को कनूनी जामा पहनाया । जिस प्रकार सामंतवाद ने दूसरों की ज़मीन पर बलप्रयोग द्वारा अपना अधिकार स्थापित किया था उसी प्रकार व्यापार के क्षेत्र में औपनिवेशिक शक्तियों ने अपना वर्चस्व स्थापित किया । उन्होंने ज़मीन की मूल उपज को हडप लिया । क्यों कि यह उपज औपनिवेशिक अर्थ तंत्र की मूलाधार थी । उनकी नई राज सत्ता हिंसा और धोखा-धडी पर निर्भर थी । वे अपनी अन्यायपूर्ण दमन नीति से जनता का शोषण करने लगे । उनके इस शोषण ने जनता के जीवन को अत्यंत कष्टमय बना डाला । इसके फलस्वरूप देश में अकाल की स्थिति पैदा हुई । इसका तीखा प्रहार

भारतीय जनता को सहना पडा । इससे 1897 तक लाखों लोगों की मृत्यू हुई थी । इस प्रकार भारत पूर्ण रूप से एक शोषण भरी शासन व्यवस्था के गुलाम बन गए ।

दो सौ सालों तक के उपनिवेशी शासन ने भारतीय अर्थ व्यवस्था की रीढ की हड्डी तोड दी । जनता अपनी रोज़ी रोटी केलिए भी दूसरों के आगे हाथ पसारने केलिए मज़बूर हो गई । शासन की बर्बरता ने जनता के आत्मबल को झकझोर कर दिया । ऐसी स्थिति में अपने ही देश में अमानवीय जीवन व्यतीत करने केलिए मजबूर जनता में उपनिवेशवादी अंगेज़ के विरुद्ध विद्रोह भावना जागृत उठी । उसको और तेज़ बनाने और आगे बढाने का श्रेय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा अन्य राष्ट्रीय संगठनों ने ले लिया । अपने आर्थिक शोषण के विरुद्ध का आन्दोलन पूरे देश में हुआ । उनमें स्वदेशी आन्दोलन, लगान बंदी आन्दोलन, अकाल और ब्लैक मार्केट, किसानों और मज़दूरों का आन्दोलन, ज़मीनदारों का विद्रोह आदि उल्लेखनीय हैं । इन आन्दोलनों का सजीव अंकन आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में हुआ है ।

स्वदेशी एवं बहिष्कार आन्दोलन

एक व्यापारी का चोला पहनकर आए अंग्ज़ उपनिवेशवादियों ने छल-बल से यहाँ का शासक बने थे । जब शासन की बागडोर उनके हाथों में आयी तो वे अपनी मनमानी करने लगे । यहाँ से कच्चे मालों को लेकर पका माल यहाँ बेचने लगा और देशी उत्पादों पर कर के बोझ लाद कर उन्हें नष्ट कर दिया गया । इसी

के अलावा अंग्रेज़ों के आवश्यकतानुसार नए-नए खेती करने केलिए देशी जनता मजबूर होने लगी। इस प्रकार देश में आर्थिक तंगी महसूस होने लगी। लोग जीने केलिए कडी से कडी मेहनत करने में लगे रहे। अपनी जी तोड मेहनत के होते हुए भी अभाव एवं भुखमरी की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आए थे। इसकी वजह से एक औपनिवेशिक अर्थ व्यवस्था के तहत किसान, मज़दूर, ज़मीन्दार, व्यापारी आदि भारतीय समाज के सभी तबके के लोग पिसते और जगडते रहे। ऐसी एक भीषण स्थिति में जनता जागृत हुई, उनमें राष्ट्रीय भावना सुलग उठी। अपने कनूनी एवं सै निक बल के तहत शोषण कर रहे अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह अभिव्यक्त करने केलिए निहत्थी भारतीय जनता के सामने स्वदेशी एवं बहिष्कार आन्दोलन जैसे शस्त्रों के अलावा और कुछ नहीं था। यह आन्दोलन उपनिवेशी आर्थिक शोषण के विरुद्ध का एक सशक्त आन्दोलन था।

साम्राज्यवादी शोषण नीति का प्रमुख परिणाम था बंगाल का विभाजन अथवा बंगभंग। इसमें उनकी 'फूट डालो और राज्य करो' वाली नीति काम करती थी। भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने इस विभाजन को अपने राष्ट्रीयता बोध के विरुद्ध की चुनौति के रूप में स्वीकार किया। यह विभाजन बंगाल की जनता को प्रांतीय एवं धार्मिक स्तर पर बँटने की कोशिश के रूप में उन्हें लगा। इसके विरुद्ध जत्था और सम्मेलन चलाये गये। लेकिन इन सब प्रयत्नों से जनता के वेद्रोह को पूर्ण रूप में जगा नहीं सका। इसकेलिए एक सशक्त एवं महान कार्यक्रम के रूप में स्वदेशी एवं बहिष्कार आन्दोलन चलाया। "पूरे बंगाल में स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की घोषणा की। कई

स्थानों में इस केलिए सार्वजनिक सभाओं का आयोजन भी किया गया । कई जगहों में विदेशी वस्तुओं को जलाया गया और जिन दूकानों में विदेशी वस्तुओं की बिक्री चलती थी वहाँ पिकेटिंग चलाया गया । ऐसे स्वदेशी का यह आन्दोलन महान विजय प्राप्त किया ।"[1] आर्थिक दृष्टि से स्वदेशी का यह आन्दोलन वेदेशी आर्थिक शोषण के विरुद्ध का सशक्त आन्दोलन था । इस विरोध प्रदर्शन में जनता ने खूब भाग लिया । इसने उपनिवेशवादियों के मन को हिला दिया । क्योंकि स्वदेशी के इस आन्दोलन से उनकी आय में कमियाँ आने लगी थीं ।

'स्वाश्रय' स्वदेशी आन्दोलन की प्रमुख विशेषता थी । इसका मतलब था अपने राष्ट्रीय गौरव, मान एवं आत्मविश्वास को मज़बूत बनाना । आर्थिक क्षेत्र में इसका उद्देश्य स्वदेशी उद्योगों को बढावा देने के साथ अन्य घरेलू धंधों को भी ऊपर उठाना था । इस आन्दोलन के तहत कई कपडा मिलों, साबून, फैक्टरी, खादी उद्योग, राष्ट्रीय बैंकें आदि शुरू हुए । कई महान व्यक्तियों ने स्वदेशी स्टोर भी खोले । सन् 1908 में औपचारिक रूप में ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार तथा भारतीयों द्वारा स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग करने का प्रस्ताव पारित किया था । इससे पहले स्वामि दयानंद सरस्वती ने भी स्वदेशे के पक्ष में अपनी आवाज़ उठाई थी । उनका मंतव्य था- 'सब भारतीयों को स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करना चाहिए । अपनी भाषा, अपने धर्म, अपनी परंपराओं का आदर करना चाहिए, अपनी संस्कृति की रक्षा, संवर्धन व विकास करना चाहिए ।'

---

[1] बिपन चन्द्र : आधुनिक भारत, पृ-274

भारतीयों द्वारा विदेशी वस्तुओं के उपयोग से देश की आर्थिक स्थिति निरंतर बिगडती जा रही थी । इसलिए भारत की अर्थव्यवस्था को सुधारने केलिए भारतीयों द्वारा भारत में निर्मित वस्तुओं के उपयोग करने पर बल देते थे । स्वदेशी आन्दोलन को प्रश्रय देने में कइयों की भूमिका महत्वपूर्ण हैं । इसके एक प्रमुख अंग थे विद्यार्थी समाज । उन्होंने स्वदेशी के आशय एवं उद्देश्य को आत्मसात करके बडे जोश के साथ उसमें भाग लिया और अनुष्ठान किया । उन्हों ने इसका प्रचार किया और विदेशी वस्त्र बेचने वाली दूकानों में पिकेटिंग चलाने का नेतृत्व भी किया था । इस आन्दोलन में नारियों की भूमिका भी महत्वपूर्ण है ।

भारतीय जनता के उपनिवेश प्रतिरोध रूपी स्वदेशी एवं बहिष्कार आन्दोलन को अंग्रेज़ों ने अपनी दमन नीति से कुचल डालने का प्रयास किया गया । लेकिन यह आन्दोलन दबाने से स्वयं पीछे हटनेवाला नहीं था । "विद्यार्थियों को दबाने केलिए सरकार ने खूब कोशिश की । उनके ऊपर कई कानूनी कार्रवाइयाँ चलाई गयीं । वे स्कूल एवं कालेजों से निकला गये । कइयों का अरेस्ट हुआ और पुलिस की लाठियों का मार सहना पडा ।फिर भी वे अपने निर्णयों से पीछे नहीं हटे ।"[1] भारत की अर्थ व्यवस्था को सुरक्षित रखने के उपलक्ष्य में किए इस उपनिवेश प्रतिरोधी आन्दोलन को पूरे देशवासियों का समर्थन मिला । इससे देशी उद्योग धंधों में चेतना आईं । लोगों की आर्थिक स्थिति

[1] बिपन चन्द्र : आधुनिक भारत, पृ-275

में थोडी सी प्रगति भी हुई । अंग्रेज़ों केलिए यह आन्दोलन अपने शोषण युक्त शासन पर लगी एक चोट थी ।

उपनिवेश भारत में अंग्रेज़ों की भेदनीति (बंगभंग) एवं दमन नीति के विरुद्ध उभरा सशक्त आन्दोलन है 'स्वदेशी आन्दोलन' । भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रमुख संस्था राष्ट्रीय कांग्रेज़ ने स्वदेशी आन्दोलन को अपन नारा बनाया । उसने देश भर में एक व्यापक जागरण पैदा करने की कोशिश की । वह पूर्णत: सफल निकला । इसका सफल परिणाम था पूरे भारत में विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार । इससे भारत की जनता ने साम्राज्यवादी ब्रिटेन की शोषण नीति के खिलाफ अपनी आवाज़ दर्ज की । 'भूले बिसरे चित्र' में जौनपुर के कलक्टर गंगाप्रसाद के सरकारी कार्यव्यापार एवं अंग्रेज़ी सरकार के प्रतिनिधी के रूप में अपनी जेम्मेदरी को पूर्णत: निभाने के चित्रण के साथ वर्मा जी ने स्वदेशी आन्दोलन का पूरा व्योरा भी प्रस्तुत किया है । "आन्दोलन चल रहा था । बडी तेज़ी के साथ एक अजीब ढंग से । हडतालें हो रही थी ; खादी और स्वदेशी का प्रचार हो रहा था ; विदेशी माल का बहिष्कार किया जा रहा था । जुलूस निकालते थे और खुल्लम-खुल्ला सरकार की निन्दा की जाती थी ; अंग्रेज़ों को गालियाँ दी जाती थीं । जौनपुर में इस आन्दोलन को दबाने की जिम्मेदारी कलक्टर ने गंगाप्रसाद को दे दी थी और वह तत्परता के साथ निर्दयतापूर्वक

अपनी जिम्मेदारी निभा रहा थ । जौनपुर के जेल भर गयी थी ; लोगों पर लंबे जुरमाने किए गए थे । जौनपुर के अधिकाँश कार्यकर्ता जेलों में पडे थे ।"[1]

अंग्रेज़ों की कूटनीति के प्रति उठे प्रतिरोध का यह स्वर एक महन आन्दोलन के रूप में व्याप्त होने लगा । जनता मिलकर औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध काम करने लगी । अंग्रेज़ इसको अपनी दमन नीति से समय-समय पर दबाने की कोशिश करते रहे । पर लोग इस से विचलित नहीं हुआ । वे जुलूस निकालते रहे और विदेशी वस्त्रों की होली जलाते रहे । उपन्यास में वर्मा जी ने इसका मार्मिक चित्रण किया है , "मूल गंज के चौराहे पर जुलूस रुका । बीच चौराहे पर विदेशी वस्त्रों का ढेर लगाया गया । कपडों के साथ लकडी का कुछ सामान लोग इधर उधर से बटौर लाए थे ताकि आग अच्छी तरह जल सके ।फिर लोगों ने जोश भरे हुए व्याख्यान दिए । व्याख्यानों के बाद इन विदेशी कपडों के ढेर में आग लगा दी गयी । आग लगाते ही ऊँची-सी लपेटें निकलीं, क्योंकि कुछ कपडों को मिट्टी के तेल में डुबो दिया गया था । उस लपट के निकलते ही लोगों ने 'महात्मा गांधी की जय' और 'भारत मातकी जय' के नारे लगाए ।"[2] इस प्रकार स्वदेशी का यह आन्दोलन चलता रहा ।

विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का यह आन्दोलन केवल कपडों को जलाने तक सीमित नहीं रहा । इसका एक विशाल क्षेत्र था । आन्दोलनकारियों ने भारत में विदेशी कपडे बेचनेवाली दूकानों के सामने धरणा चलाने का आयोजन किया ।

---

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ-358

[2] भूले बिसरे चित्र : पृ-370

क्योंकि ब्रिटेन जैसे साम्राज्यवादी देश हिन्दुस्तान से व्यापार करके तथा हिन्दुस्तान में अपना माल बेचकर भारत का आर्थिक शोषण कर रहा था । इस शोषण से बचने केलिए, देश की संपत्ति को देश में ही सुरक्षित रखने केलिए, देशी कारखानों की उन्नति केलिए धरणा जैसे प्रतिरोधों के ज़रिए आन्दोलनकारियों ने स्वदेशी प्रेम का पचार-प्रसार किया था । विदेशी कपडे की दूकानों पर धरणा चलाने के जुर्म में जगमोहन अवस्थी, गुरुदयाल गुप्त, रामनारायण शर्मा , गंगा देवि और माया शर्मा आदि को कैदी की सज़ा भी भोगनी पडती है । इस प्रकार एक सशक्त विद्रोह के रूप में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को 'भूले बिस्रे चित्र' में भगवती चरण वर्मा ने चित्रित किया है ।

अकाल और ब्लैक मार्केट

भारत में अपनी शासन व्यवस्था स्थापित करने के बाद अंग्रेज़ ने यहाँ की सारी संपत्ति को अपने दोनों हाथों से लूटा । इस शोषण भरी शासन व्यवस्था की जडें समाज के विभिन्न क्षेत्रों में फैल गया और भारत माता का खून चूसने लगा । एक सुसंपन्न देश के सारे संसाधनों का पूरा-का-पूरा शोषण कर उपनिवेशवादियों ने भारत की जनता को ऐसा बना दिया कि लोग भूख के मारे अपनी जान खोने केलिए मज़बूर हो गए थे । ऐसी स्थिति का आना स्वाभाविक था क्योंकि साम्राज्यवादी अंग्रेज़ों की शोषण नीति अत्यंत निर्मम एवं अमानवीय थी । उनके स्वार्थ ने भारत की जनता को गुलाम बना दिया ।

लोगों के ऊपर कडी-से-कडी नियम लाद कर, उनके धन दौलतों का लूट कर अपने और अपने देश की प्रगति केलिए अंग्रेज़ काम करते थे। "अंग्रेज़ों के आने तक बंगाल निश्चय ही संसार का समृद्ध क्षेत्र था। इस धन संपदा क्षेत्र में कभी कोई अकाल नहीं पडा था। सदियों से बंगाल अपनी निरंतर चली आ रही अतुल समृद्धि केलिए प्रसिद्ध था। किंतु ब्रिटिश साम्राज्यवाद नें केवल तेरह वर्षों में ही सारे बंगाल प्रंत में तबाही, गरीबी, भुख मरी, अकाल और मौत फैला दी।"[1] उनके सामने भारत की जनता धन एवं संपत्ति रूपी दूध देनेवाली एक गाय मात्र था। उपनिवेशवादी अंग्रेज़ों के इस शोषण ने भारत में अकाल की स्थिति पैदा की। "एक 'कम्मोडिटी मंडी' के रूप में भारत का शोषण इस तरह बढा कि पूँजी के आयात तथा कच्चे माल का विराट् निर्यात ने मिलकर ब्रिटेन को विश्व मंडी में एकाधिकारी दर्जा दे दिया। इस तरह 'साम्राज्यवादी शोषण' का स्वरूप उद्घाटित हुआ।"[2]

अंग्रेज़ी उपनिवेशवादी शासन काल में देश में कई बार अकाल की भीषण अवस्था पैदा हुई थी। इसका मूल कारण तो उनकी स्वार्थ लिप्सा एवं शोषण नीति था। सन् 1918-19 में देशव्यापी अकाल पडा था। संयुक्त प्रांत, बंबई, पंजाब, मध्यप्रदेश, बिहार, उडीसा,हैदराबाद तथा मैसूर के राज्यों में अकाल की स्थिति बहुत व्यापक और गंभीर थी। यह अकाल वस्तुत: प्राकृतिक कारणों से घटित न होकर मानवनिर्मित कारणों से हुआ था। देश में विभिन्न क्षेत्रों में उत्पाद

---

[1] डा. सुभष कश्यप : भरत का संवैधानिक विकास और संविधान, पृ-15

[2] रमेश कुंतल मेघ : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और कुछ उपनिवेशीय सवाल पृ-47

होते हुए भी निर्यात एवं शोषण इतना अधिक होता था कि पूँजीपति, ज़मीन्दार और मुनाफखोर वर्ग की वृद्धि के अतिरिक्त जनसाधारण अधिकाधिक दरिद्र होता चला गया। अपनी अर्थ नीति के तहत कृषि एवं देशी उद्योगों को ऐसा कर दिया गया कि वे कभी भी ऊपर न उठ सकें। यदी देशी उद्योग धंधों की रक्षा और उनके विकास का प्रयत्न किया गया होता तो अकाल में भारतीय जनता को ऐसी दुरवस्था न होती। अंग्रेज़ों द्वारा जिन कंपनियों की स्थापना यहाँ हुई थी, उनका भी यही काम था कि सस्ते दामों में भारतीय वस्तुओं को खरीदकर विदेश में बेच देना तथा विदेश में निर्मित माल की खपत केलिए भारत में बाज़ार तैयार करना। कंपनी के कुशासन ने देश की जनता को ऋणी एवं भूखा बना दिया। अपनी भूख मिटाने का भी दाना उन्हें अपनी ज़मीन से नहीं मिलते थे। नील, जूट, कपास आदि की बलपूर्वक खेती ने किसानों के गोदामों को हमेशा केलिए खाली करवा दी। ऐसे अकाल ने एक महामारी के समान पूरे देश को बरबाद कर डाला।

आर्थिक शोषण अंग्रेज़ी शासन का प्रमुख अंग था। इन शोषणों से जो पैसा उन्हें मिलता था उसके ज़रिए वे अपने शासन चलाते थे और अपने देश की उन्नति करते रहे। देश के किसानों, मज़दूरों, आम लोगों तथा ज़मीन्दारों तक का शोषण कर अंग्रेज़ धन इकट्ठा करते थे। ऐसी शोषण व्यवस्था की उपज के रूप में देश में अकाल पैदा हुआ । इससे लोगों को जानवरों जैसे जीवन जीना पडा था । आधुनिक हिन्दी उपन्यास ने देश की इस दयनीय स्थिति का चित्रण अत्यंत मार्मिक ढंग से किया है। सामाजिक समस्याओं का सही अंकन करने वाला महान

उपन्यासकार थे नागार्जुन । उनके 'बाब बटेश्वर नाथ' उपन्यास में उपनिवेशित भारत की ज्वलंत समस्या अकाल का कराल रूप चित्रित है । उपन्यास में अकाल और शोषण के संबन्ध में बाबा जैकिसुन से कहते हैं-"रेलवे कंपनी केलिए यह सुनहला मौका था । कम-से-कम मज़दूरी पर ज़्यादा-से-ज़्यादा काम करने की वह अनोखी आपाधापी थी बेटा ! दिन भर की कडी मेहनत के बाद एक दुअन्नी हाथ आती थी । चावल तो मिलते ही नहीं थे, जुनहरी और मडुआ जैसा मोटा अनाज मिलता था । 'बूढे-बच्चे और ढोर-डंगर....भुखमरी के सबसे बडे शिकार यही थे । कई-कई दिनों का फाका, फिर कुछ मिलता तो अंदर डाल लिया...जो ज़िन्दा थे, उनको इस क्रम ने काफी कमज़ोर बना डाला था । प्रिय से प्रिय व्यक्ति दम तोड देता तो लोग रोते नहीं थे । भूख की जलन में आत्मा झंवा गई थी और आँसु गायब हो चुके थे ।"[1] इस प्रकार की भयानक दर्दभरी अवस्था थी अकाल के समय में । भर पेट खाकर चैन से सो रही देश की जनता को ऐसी शोचनीय स्थिति की ओर ला खडा कर दिया अंग्रेज़ी आर्थिक शोषण ने ।

देश में पडे अकाल का बहुत समय तक कोई अंत नहीं हुआ । वह महीनों, सालों में चलता रहा । लोग एक-एक होकर मरते जा रहे थे । मानव अपनी जान को बचाके रखने केलिए जहाँ से जो कुछ मिलता था उसे खाकर जीने केलिए मज़बूर थे । किसान, मज़दूर सब दो जून रोटी केलिए तरस रहे थे । भूख के मारे उनकी आँखों में आँसू भी नहीं थे । अकाल से पीडित लोगों की करुण स्थिति को नागर्जुन बाबा बटेश्वरनाथ से कहलवाते है-"मामूली हैसियत के किसान शकरकंद

[1] बाबा बटेश्वर नाथ : पृ-58

बनाम अल्हुआ की शरण ले चुके थे। खेत-मज़दूर और जन बनिहार आम की सूखी गुठलियाँ चूर-चूरकर मडुआ का ज़रा-सा आटा उसमें मिलाकर टिक्कट बनाते औअर उसी से सूख आँच को शांत करते। उस वर्ष रबी की फसल भी दगा दे गयी थी। आम भी नहीं फले थे। वैशाख गया, जेठ गया और आषाढ भी बीता, लेकिन इन्द्र देव का दिल नहीं पसीजा, नहीं पसीजा ! नहीं पसीजा !"[1] यों लोगों की ज़िन्दगी को अंग्रेज़ी अर्थ नीति ने बर्बाद किया । जनता का जीवन ऐसी कठिनाइयों से गुज़रने पर भी अंग्रेज़ी हुकूमत की ओर से कोई सेवा कार्यक्रम नहीं चला। इसके बदले वे और ज़्यादा बोझ उन पर लाद देते रहे।

उपनिवेशवादी सत्ता के विरोध में विश्वभर में चल रहे संघर्ष के दौर में प्रत्येक राष्ट्र की राष्ट्रवादी शक्तियों का विचार अलग-अलग था, जैसाकि भारत में था । अधिकाँश राष्ट्रीय आन्दोलनों में नागरिक स्वतंत्रता के साथ-साथ आर्थिक स्वतंत्रता केलिए भी प्रयास किया गया था, क्योंकि ये देश प्राय: आर्थिक शोषण के ही शिकार थे । साम्राज्यवादियों की इस शोषण व्यवस्था के खिलाफ साहित्यकारों ने समय-समय पर विद्रोह अभिव्यक्त किया था। "भारतेन्दु के युग से ही साहित्यकारों को इस तथ्य की अनुभूति हुई कि साम्राज्यवाद का सर्वाधिक विकृत रूप पराधीन देश का आर्थिक शोषण है।.....पराधीनता से मुक्ति का अर्थ, उनकेलिए, प्रधानत: आर्थिक शोषण से मुक्ति रहा है।"[2] प्रतिबद्ध रचनाकारों की दृष्टि हमेशा सामाजिक समस्याओं के सही अंकन में निहित होती है। वे अपनी

---

[1] बाबा बटेश्वरनाथ : पृ-50

[2] शिवकुमार मिश्र : मार्क्सवादी साहित्य चिंतन, पृ-422

रचना के ज़रिए जनता में पराधीनता के विरुद्ध की मानसिकता पैदा करने की कोशिश करते हैं। अंग्रेज़ी उपनिवेशवाद के आर्थिक शोषण और उससे बने अकाल का चित्रण इसलिए नागार्जुन ने किया था।

साम्राज्यवादी देशों ने सारी दुनिया का बँटवारा कर लिया था। अपने उपनिवेशों को हर तरह से लूटना और मालामाल करना उनका लक्ष्य था। उन्होंने पराधीन देशों के स्वाभाविक आर्थिक विकास को पंगु बनाया। वहाँ की सभ्यता और संस्कृति को नष्ट किया तथा इतिहास को झुठलाकर वहाँ के निवासियों को असभ्य और बर्बर घोषित किया। अपनी लूट केलिए उन्होंने एक ऐसी सुविधाभोगी क्लास का निर्माण किया जो मध्यवर्ग के कर्मचारी थे। उनके द्वारा आम जनता को बहुत सारी कठिनाइयों को झेलना पडा। जनता के शोषण से जो पैसा मिलते थे उनमें से एक हिस्सा ज़मीन्दार और कर्मचारी खा जाते थे। इस केलिए वे जनता पर ज़्यादा से ज़्यादा कर लाद कर देते थे।

उपनिवेशवादी अंग्रेज़ों की हुकूमत के अधीन हुए आर्थिक शोषण और उससे बने अकाल ने देश के हज़ारों, लाखों की साधारण ज़िन्दगी को नष्टभ्रष्ट कर दिया। पहले खेती और विभिन्न कुटीर उद्योगों के ज़रिए जनता अच्छा सा जीवन बिता रहा था। लेकिन जब साम्राज्यवादियों की गिद्द दृष्टि यहाँ की संपत्ति पर पडी तब भारत की सुख सुविधा का अंत हुआ। आखिर अकाल की स्थिति तक आते-आते जीने केलिए तडपने लगे। अमृतराय के 'बीज' उपन्यस भी औपनिवेशिक भारत की ज्वलंत समस्या 'अकाल' को महत्वपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करनेवाला है। "बीज में स्वतंत्रता आन्दोलन की कथा अंकित है जिसमें अंग्रेज़ी

शासन के विरुद्ध संघर्षरत देशप्रेमी और आन्दोलनकारी व्यक्तियों की सरगर्मियाँ दिखाई देती है ।"[1] अमृतराय ने संपूर्ण कृति में आज़ादी के संघर्ष के दौरान की हिन्दुस्तानी जनता की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों का बडा सही और यथार्थ मूल्यांकन किया है । उसमें अकाल और ब्लैक मार्केट की समस्या को बडी संजीदगी के साथ उन्होंने चित्रित किया है ।

'बीज' में बंगाल के भीषण दुर्भिक्ष का चित्रण है, जिसमें जनता की तबाही और बरबादी का कारुणिक दृश्य है । इस समय सैकडों लोगों ने भूख से दम तोड दिए । बैलों की तरह खटनेवाले मज़दूर और किसान ही अन्न के बिना मौत के शिकार हुए । लेखक ने इस भयंकर पीडादायक अकाल को अंग्रेज़ी तानाशाही और साम्राज्यवादी शासन द्वारा सृजित बताया है । सारे धन और अनाज के भण्डार विश्वयुद्ध में फूँक दिए गए । बीज में अमृतराय कहते है - "सरकार की पलटन खा रही है और बंगाल भूखों मर रहा है.....सारा गल्ला मिस्र और ईराक और रंगून और सिंगापुर चला जा रहा है, दनादन माल की रफतानी हो रही है, इधर लोग भूख से दम तोडें तो तोडे, किसे इसका गम है ! कुत्तों की ज़िन्दगी जीने वाले कुत्तों की मौत मरते हैं तो मरें, उनकी जरूरत ही किसे है, हमें तो ज़रूरत सिर्फ उनकी है, जो पलटन में भरती हो सकें और ये लोग भला पलटन के किस काम के ! अच्छा है दस-बीस लाख आदमी मर जायें, धरती का भार कम हो ।"[2] यह थी अकाल की स्थिति ।

---

[1] दा. बद्री प्रसाद : प्रगतिवादी हिन्दी उपन्यास, पृ-146
[2] बीज : पृ-42

देश में जब अकाल की स्थिति पैदा हुई तो 'ब्लैक मार्केट' भी साथ देता था । इससे लोगों की नित्योपयोगी चीज़ों में कमियाँ आयीं और वे दुर्लभ हो गयीं । अगर कुछ मिलते तो ज़्यादा पैसा देकर । इससे लोगों की ज़िन्दगी और भी शोचनीय बनती जा रही थी । साधनों का भाव बढना और लोग अवश्य वस्तुओं की उपलब्धी से वंचित रहना आम बात बन गयी । उपन्यास के पात्र अमूल्य कहते है- "हाँ, इंफ्लेशन ..... मगर इंफ्लेशन और ब्लैक मार्केट एक दूसरे की विरोधी चीज़ें तो है नहीं । दोनों एकदूसरे की पूरक हैं, दोनों साम्राज्यवादी व्यवस्था की संतानें हैं ।"[1] औपनिवेशिक अर्थ व्यवस्था देश का संपूर्ण शोषण कर अपना पेट भरा करते रहते थे । भारत की जनता ताकतवार देश के लोगों द्वारा कुचली जा रही थी ।

अकाल से पीडितों की करुण अवस्था को अनदेखा करना संवेदनशील रचनाकार केलिए असंभव था । इसलिए उपन्यासकार अमृतराय ने पूरी लगन के साथ उस संकटमय समय का चित्र दिखाकर हममें चेतना लाने की कोशिश की है । उपन्यास में अकाल के कारुणिक दृश्य को उन्होंने यों वाणी दी है – "नन्हें-नन्हें बच्चों की आँखों में भूख का रेगिस्तान है, भूख की दहशत....उसकी समझ में भी ठीक से नहीं आता होगा कि वह कैसे रहते है और फिर वही उस फुटपाथ पर पेट में एक भयानक दर्द और ऐंठन लिए, कभी चीखते कराहते और कभी यह भी नहीं ! .....बच्चे आखिर क्या समझें कि उनके पेट में यह कैसी आग जल रही है, यह दर्द कैसा है, शरीर की एक-एक मांसपेशी का यह टूटना कैसा, यह किसने

[1] बीज : पृ-45

उन्हें शिकंजे में कस दिया, यह किसने उनमें ऐंठन भर दी, वह कौन हाथ था जिसने उनका गला घोंट दिया ! जिन्हें भूख लगने पर एक मिनट को सब्र न होता था उन्हें अब सब्र ही सब्र था, उनकी आँखों में बस एक इंतज़ार जिसका कहीं अंत न था, जो काली चिकनी सडक की तरह चलता गया था, दूर..दूर...दूर..।"[1] ऐसी भीषण शोषण व्यवस्था के कारण ही जनता ने अंग्रेज़ों की कूटनीतिपूर्ण शासन के खिलाफ आवाज़ उठायी थी । ये आवाज़ बाद में अपना तीव्र रूप धारण कर स्वतंत्रत आन्दोलन के रूप में तब्दील हो गयी ।

साम्राज्यवादियों के निर्मम शोषण ने भारत के धन-धान्य को लूट लिया । बाकी जो अनाज बचे थे वह हिन्दुस्तानी करोडपतियों के गोदामों में भरे रहे और मनमाने दामों में बेचे गए । ऐसे ब्लैक मार्केट भी शोषण के साथ चलता रहा । अर्थाभाव की पीडा से परेशान गल्ला उपजानेवाले मज़दूरों और किसानों में पूँजीपतियों से अनाज खरीदने की ताकत नहीं थी । ऐसे अवसर पर उपन्यास के नायक सत्यवान ने अकाल पीडित बंगाल की जनता की आर्थिक सहायता के प्रयास भी किए । इस प्रकार जनता के शरीर और मन में चेतना लाने का प्रयास करनेवाला सत्यवान उपनिवेशी अर्थ नीति के खिलाफ संघर्ष करनेवाला सशक्त पात्र है ।

लगान बंदी आन्दोलन

सन् 1931 के अंत में कांग्रेस को किसी पूर्व योजना के बिना असहयोग -

---

[1] बीज : पृ- 47

आन्दोलन के साथ ही एक दूसरा आन्दोलन शुरू करना पडा । वह था 'करबंदी' आन्दोलन । यह आन्दोलन उपनिवेशवादी आर्थिक शोषण के विरुद्ध का सशक्त एवं महान आन्दोलनों में एक था। उन दिनों सब कहीं आर्थिक मंदी छाई हुई थी। कृषि जन्य वस्तुओं के भाव गिर चुके थे। इससे किसानों की ज़िन्दगी बडी दुविधा में पड गयी थी। ऐसी स्थिति में सरकार को लगान देने में असमर्थ हुए। सरकार की तरफ से कोई छूट उन्हें नहीं मिली। इसके बदले वे लगान में बढोत्तरी करते रहे। किसान वर्ग ब्रिटिश उपनिवेशवाद का मुख्य शिकार था। सरकार ने इसके उत्पादन का बडा अंश लगान और अन्य करों के रूप में ले लिया। उसके जोत के बडे भाग को अपने उद्योग के कच्चे माल के उत्पादन हेतु निर्धारित कर दिया। ऐसी दुखद अवस्था में इस शोषण के खिलाफ की आवाज़ कर बंदी आन्दोलन के रूप में उभर आया।

अंग्रेज़ी अर्थव्यवस्था का प्रमुख अंग भू राजस्व था । उसके द्वारा ही वे अपनी मनमानी का शासन कर रहे थे। उन्होंने ब्रिटेन की ज़मीन्दारी प्रथा भारत में लागू की । भूमि पर ज़्यादा-से-ज़्यादा कर लगाकर यहाँ की संपत्ति को अपने अधीन कर लिया । "अंग्रेज़ी राज की विशेषता यह थी कि एक तरफ तो उसने लगान बढाया, दूसरी तरफ उसे वसूल करने में कडाई ज़्यादा की । .....लगान देने केलिए किसान महाजन से कर्ज लेते है, मज़बूरी में ब्याज की जो दर वह तय करता है, उसे मान लेते हैं। लगान वसूली की तरह महाजन द्वारा कर्ज की वसूली भी कडाई से होती है। कर्ज वसूल करने में अंग्रेज़ी राज की सारी न्याय व्यवस्था

महाजन का साथ देती है ।"[1] इस प्रकार अंग्रेज़ ने हिन्दुस्तान की ज़मीन पर अपना आधिपत्य कायम किया । भारत की जनता से उसकी सबसे बडी संपत्ति, उसकी आजीविका का मुख्य स्रोत, ज़मीन उसने छीन ली ।

भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन ज़ोरों पर चल रहा था । जब उसने अपना उग्र रूप धारण किया तो अंग्रेज़ों ने गोलमेज़ सम्मेलन का आयोजन लंदन में किया । लेकिन लंदन जाने से पूर्व गांधीजी ने वायसरोय के साथ जो समझौता किया था उन सब को तोडकर अंग्रेज़ ने गांधीजी को खाली हाथ वापस भेजा । इससे तब तक स्थगित किया गया आन्दोलन पुन: शुरू करने का निर्णय लिया गया । वह आन्दोलन भारत के खेत और खलिहानों से 'लगान बंदी' आन्दोलन के रूप में प्रारंभ हो गया । देश के किसान कांग्रेस के पीछे चल पडे । ज़मीन्दार और महाजन अपने खाली खाजानों को देखकर तिलमिला उठे । किसान दमन चक्र की चक्की में पिसा जाने लगा । फिर भी भारत की जनता ने अन्याय के आगे शीश न झुकाया ।

उपनिवेशी शासनकाल में अपने राजकाज का पूरा खर्च, सरकारी अफसरों की तन्ख्वाह से लेकर फौजें रखने और रेलें बनाने तक का खर्च भारत के किसानों से वसूल किया जाता था । अंग्रेज़ों ने इसका नाम रखा था 'होम चार्जेर्स' । ऐसे निर्मम शोषण करने पर देशी लोगों के मन में राष्ट्रीयता की चिंगारी फूट पडी । उससे लगान बंदी जैसे आन्दोलन का जन्म हुआ ।

---

[1] रामविलास शर्मा : महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, पृ-47

साम्राज्यवादी पूँजीवादी ब्रिटिश शासन के द्वारा जो नई अर्थव्यवस्था भारत में स्थापित की गई थी वह संपूर्णत: शोषण पर आधारित थी। इसके ज़रिए अंग्रेज़ों ने देश की लूट के द्वारा संचय किया। किसानों की शोषण की प्रक्रिया बडी तीव्रता के साथ चला। मनमाने लगान पर लोग ज़मीन लेने को बाध्य किए गए और बडी कठोरतापूर्वक लगान वसूल किया जाने लगा। भूमि कर अत्यधिक बढा दिए जाने के कारण किसान की अवस्था दिन-प्रति-दिन और अधिक गिरती चली गई। ऐसी स्थिति में इस अमानवीय शोषण व्यवस्था के विरुद्ध आन्दोलन शुरू हुआ था। "सत्याग्रह आन्दोलन के समय कुछ क्षेत्रों में कर बंदी आन्दोलन चलाया गया था और उस समय अधिकारियों को कर वसूलने में ज़मीन्दारों ने सहायता दी थी। .....ज़मीनों की कीमतों इतनी गिर गयी थीं कि किसानों केलिए अपने परिवार के पेट पालने के साथ लगान अदा करना असंभव हो गया था। ज़बरन लगान वसूली के फलस्वरूप संयुक्त प्रांत में कुछ किसान विद्रोह भी हो चुके थे। मुसीबतों के मारे किसानों के पास कांग्रस के सिवाय और कोई सहारा न था, कांग्रस ने भी किसानों की मदद की।"[1]

आधुनिक हिन्दी उपन्यास में भगवती चरण वर्मा एक ऐसा उपन्यासकार है जिन्हों ने कर बंदी जैसे महान आन्दोलन का चित्रण कर उपन्यास के माध्यम से औपनिवेशिक शोषण के प्रतिरोध को अभिव्यक्ति दी। 'अपने भूले बिसरे चित्र' में औपनिवेशिक दासता के समय में चली निर्मम शोषण नीति के खिलाफ के विभिन्न आन्दोलनों को चित्रित करने का महत्वपूर्ण प्रयास उन्होंने किया है। करबंदी का

[1] राम गोपाल : भारतीय स्वतंत्र संग्राम का इतिहास , पृ-377

यह आन्दोलन भारत के समस्त किसानों में धीरे-धीरे व्याप्त होने लगा । उन्हों ने अंग्रेज़ों को लगान न देकर असहयोग आन्दोलन में भाग लिया । 'भूले बिसरे चित्र' के राय बहादुर कामतानाथ जो समाज में ऊँचे खिताब-जायदाद एवं इज्जतवाले व्यक्तित्व है वे भी आखिरकार लगान न देने का निर्णय लेते हैं , "क्या बताऊँ ये हरामज़ादे अंग्रेज़ अफसर हज़ारों रुपया चंदा ले जाते हैं और कम्मीशन से मिलाने केलिए कांग्रसियों की खुशामदें करते हैं । मैं जाता तो कम्मीशनवालों को स्वराज देने केलिए राजी न कर लेता । मैं ने लेफ्टिनेंट गवर्णर को लिखा था, लेकिन मेरी चिट्ठी का जवाब तक नहीं दिया उन लोगों ने ! अब आगे से आए चंदा माँगने, एक पैसा भी न दूँगा किसी मरद को ।"[1] इस प्रकार का एक निर्णय लेने तक की स्थिति पैदा करने में अंग्रेज़ों की अमानवीय अर्थव्यवस्था कारण बनी ।

कालांतर में इस करबंदी आन्दोलन ने बहुमुखी रूप धारण कर लिया । विभिन्न जगहों में जुलूस निकाले गए, सार्वजनिक सभएँ की गयीं, धरणा किया गया तथा लोगों को सरकारी आदेशों की उपेक्षा करने का आह्वान दिया गया । इस प्रकार ये आन्दोलन आगे बढते रहे । सरकार अपनी दमन नीति के ज़रिए इसको दबाने की कोशिश करती रही । भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में उपनिवेशवाद के खिलाफ का करबंदी आन्दोलन का महत्वपूर्ण स्थान है । करबंदी आन्दोलन कई स्थानों में चले । इन सारे आन्दोलन की तह में निहित मानसिकता विद्रोह की थी, नहीं तो प्रतिरोध की । यह प्रतिरोध विदेशी शासन तथा उनकी गलत नीतियों के खिलाफ का था ।

---

[1] बूले बिसरे चित्र : पृ-473

श्री जगदीश नारायण श्रीवास्तव के अनुसार - "निषेधात्मक परिस्थितियों में मानवीय भाव को तेज़दर भाषा देने और जन आकाँक्षा को पूर्ण करने के सामूहिक कार्य का नाम ही आन्दोलन है ।"[1] यह पूर्णत: सही है क्योंकि दुनिया के जिस किसी जगह में कोई आन्दोलन जन्म हुआ हो उन सब के पीछे किसी न किसी जनविरोधी यानि निषेधत्मक परिस्थिति की उपस्थिति थी । भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के पीछे भी अंग्रेज़ी उपनिवेशवादी शासन व्यवस्था के जनविरोधी पक्ष काम करते थे । इसके प्रतिरोध के रूप में देश में समय समय पर कई आन्दोलनों का जन्म हुआ था ।

भूले बिसरे चित्र में अंग्रेज़ों की कूटनीति, शोषण वृत्ति, भारतीय जनता के असंतोष, आक्रोश, विद्रोह तथा स्वतंत्रता संघर्ष को मार्मिक ढंग से वर्मा जी ने चित्रित किया है । भारतीय स्वतंत्रता की लहर के पीछे भारतीय तरुणों का अपार उत्साह एवं बलिदान की भावना कार्य कर रही थी । यह भावना विदेशी सत्ता को उखाड फेंकने केलिए सक्रिय हो गयी थी । यह कभी क्रांतिकारी रूप धारण किया गया कभी जन आन्दोलन के रूप में उभर आया । इसप्रकार सारे देश में सामूहिक सत्याग्रह और आन्दोलन होने लगे । उपन्यास के गंगाप्रसाद के अनुसार-"यह सामूहिक सत्याग्रह ही एकमात्र ऐसा अस्त्र है, जिसके आगे ब्रिटिश सरकार झुक सकती है । और अब हमें लाखों, करोडों किसानों तक यह आन्दोलन पहूँचाना है । एक हफ्ते बाद ही इलाहाबाद में सारे युक्त प्रांत के सक्रिय कार्यक्रताओं की बैठक होगी जिसमें ग्रामों में इस आन्दोलन को पहूँचाने की रूपरेखा तैयार की

[1] जगदीश नारायण श्रीवास्तव : उपन्यास की शर्त, पृ-146

जाएगी ।"[1] इस प्रकार कांग्रस के नेतृत्व में उपनिवेशवादियों की मनमानी अर्थनीतियों के खिलाफ आन्दोलन चला था । पूर्ण रूप से ये आन्दोलन विजय था । क्योंकि अपनी आमदनी में कमी आने पर शासन चलाने में कठिनाइयाँ आने लगी थीं । इससे अंग्रेज़ी शासक अपने को भारत भूमि पर बरकरार रखने केलिए नए-नए तरीकों को ढूँढने लगा था ।

औद्योगीकरण और पूँजीवाद

औपनिवेशिक अर्थ व्यवस्था और उसके शोषण तंत्रों में औद्योगीकरण की बहुत बडी भूमिका है । पहले सीधे व्यापार और अन्य कर नीतिके ज़रिए भारत का शोषण अंग्रेज़ करते थे । लेकिन यूरोप में जब औद्योगिक क्रांति हुई तब उसका प्रभाव उनके उपनिवेशों पर भी हुआ । इससे ताकतवार देशों ने अपने अधीनस्त देशों से ज़्यादा मुनाफा कमाया था । इसकेलिए उन्हों ने ज़्यादातर मशीनी श्रम का इस्तेमाल किया । "यूरोपीय औद्योगिक क्रांति के रूपांतरण में दो केन्द्रीय प्रक्रियाएँ घटीं , एक- तकनीकी दृष्टि से शारीरिक श्रम के बजाय मशीनी श्रम के इस्तेमाल से मशीन-पूर्व निर्माणा, गृह कौशल आदि का विनाश तथा, दो उत्पादन साधनों के रूपान्तरण से सभी सामाजिक संबन्धों में भी रूपांतरण । श्रम का अंताराष्ट्रीय विभाजन हुआ, तथा दुनिया का उपनिवेशों एवं

[1] भूले बिसरे चित्र – पृ-411

महाराजधानियों(मेट्रोपोलिस) में भी बँटवारा हुआ । नतीजन पूँजीवादी व्यवस्था ; नए पूँजी संग्राहक वर्ग तथा पूँजी अधिसंग्रह का युग शुरू हुआ ।"[1]

ऊपर दिए गए कारणों से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य के आस पास अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद एक नए स्तर पर आ पहूँचा । उत्पादन की प्रत्येक शाखा में मशीन उद्योग की पूर्ण विजय तथा पूँजी की अभूतपूर्व खपत करनेवाले रेल मार्गों के निर्माण के साथ साथ घरेलू पूँजी निवेश अपने चरम उत्कर्ष तक पहूँच गया । भारतीय उपनिवेश में परिवहन क्षेत्र में पूँजी लगाने से शोषण तथा प्रशासन (कानून एवं व्यवस्था) दोनों में बढोत्तरी हुई । सन् 1860-90 के बीच जो रेलों का संचार एवं परिवहन फैला और उससे ब्रिटिश सौदागरों को अधिकतम मुनफा हुआ ।

विदेशी पूँची यानि धन क निवेश चाय, काफी, रबर,नील आदि बागानों में तथा कोयला एवं लोहों की खादानों में लगा । इस तरह भारत का शोषण 'कम्मोडिटी मंडी' के रूप में तेज़ हुआ । इस औद्योगीकरण के फलस्वरूप ब्रिटेन से तैयार किए गए मालों का आयात कई गुना बढा । इसी के साथ राजस्व भी कई गुना बढा । पूँजी का आयात तथा कच्चे माल का बहुव्यपी निर्यात रूपी 'साम्राज्यवादी शोषण' ने अपना तीव्र रूप धारण किया । औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप बनी इस शोषण व्यवस्था के तहत देशी जनता पिसने लगी । ऐसे ब्रिटिश उद्योग ने भारतीय बाज़ार पर कब्जा कर लिया तथा उस पर एकाधिकार (मोनोपोलि) भी कायम कर लिया ।

---

[1] रमेश कुंतल मेघ : भारतेन्दु;कुछ उपनिवेशीय सवाल, पृ-131

तब तक खेत, खेती और उससे बनी उपज भारतीय किसानों की संपत्ति थी। गांव की इस संपत्ति के ऊपर ग्राम समुदाय का जो वास्तविक अधिकार था उसे उपनिवेशवादियों ने छिन्न-भिन्न करके ज़मीन्दारी प्रथा को लागू किया। इससे किसान और सरकार के बीच ज़मीन्दारों का नया मध्यवर्ग पैदा हुआ । यह भारतीय अर्थव्यवस्था केलिए एकदम नया और अजूबा था। यह वर्ग अंग्रेज़ भक्त बना रहा । दोनों ने मिलकर भारत का खूब शोषण किया । इससे भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख भूमिका निभानेवाले किसानों का जीवन मिट्टी में मिल गया। लेकिन वे हार मानने केलिए तैयार नहीं थे। उनमें जो शक्ति बाकी बची थी उससे वे इस शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने लगे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रस ने उनके संघर्ष केलिए ऊर्जा प्रदान की।

पूँजीवाद

पूँजीवाद मशीन युग की उपज है, मशीनयुग के पहले यह पूँजीवाद था ही नहीं। औद्योगिक क्रांति ने विश्व के अन्य देशों की तरह भारत में भी पूँजीवाद को जन्म दिया। 'इंडस्ट्रियल रेवलूशन' से मशीन युग का श्रीगणेश हुआ और बनिया जो अभी तक वितरक था मशीन का बल प्राप्त करके स्वयं उत्पादक बन गया। शक्ति मशीनों के निर्माण एवं संचालन करनेवाले धन में केन्द्रित हो गयी और इस धन को एक नया नाम मिला 'पूँजी'। इस पूँजी से पूँजीवाद का जन्म हुआ। कुछ थोडे से पूँजीपतियों के हाथ में समस्त आर्थिक व्यवस्था केन्द्रित हो गयी। थोडे ही दिनों में अपने व्यापक प्रभाव से पूँजीवाद ने भारतीय राष्ट्रीय चेतना से हाथ मिलाया और स्वतंत्रता संग्राम के स्वदेशी आन्दोलन का सबसे बडा समर्थक बना

जो महात्मा गांधी के नेतृत्व में तेज़ी से चला, क्योंकि स्वदेशी के माद्यम से पूँजीपतियों का स्वार्थसिद्ध होता रहा । सन् 1900 तक आते आते भारतीय पूँजीपतियों ने यह पूर्णत: जान लिया कि अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद हमारे विकास में अत्यधिक बाधक है। देशी पूँजीपति विदेशी साम्राज्यवादी पूँजीपतियों के शोषण से मुक्त होना चाहता था ; इसलिए उसने अंग्रेज़ों का विरोध कर कांग्रस का साथ दिया।

पराधीन देश का औद्योगीकरण और उससे उपजी समस्याओं का अंकन नागार्जुन ने अपने उपन्यास 'बाबा बटेश्वरनाथ' में किया है। इसके द्वारा पूँजीपति अंग्रेज़ों की शोषण भरी शासन व्यवस्था का सच्चा चित्र नागर्जुन ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है । अपने मुनाफे की वृद्धि हेतु किए गए औद्योगीकरण और उसकेलिए बनाई रेल सुविधा के पीछे की नीयत की बात बाबा के मुँह से इस प्रकार आती है- "हुआ यही कि डंडीमारों बटखरे का वज़न अपने हक बढा लिया। यानि इलाके में सरकार ने रेल चलाई तो उसके अंतर जनता के हित की कोई भावना नहीं थी। भावना एकमात्र यह थी कि उसके अपने लाडले सौदागर कच्चा माल आसानी से ढो ले जा सकें और 'लाभ-शुभ' की अपनी सडकों सौ गुना लंबा चौडा कर लें ।"[1] अपने उद्योग धंधों को बढावा देने केलिए आवश्यक सुविधाएँ लाना शोषक अंग्रेज़ केलिए अत्यंत आवश्यक था। इसकेलिए कोयला और इस्पात व्यवसाय पर उन्होंने अधिक बल दिया था । अंग्रेज़ी उपनिवेशवादियाँ समय-समय पर आवश्यक आविष्कारों का सृजन करते रहे थे । ये आविष्कार

[1] बाबा बटेश्वरनाथ पृ-57

औद्योगीकरण के नए परिवर्तनों को लेकर आए थे । उनका मुख्य उद्देश्य तो अधिक से अधिक धन कमाने पर आधारित था ।

अपनी सुविधा केलिए लाए रेलवे ने पूरे भारत के नक्शे को बदल दिया । रेलवे आने से माल पहूँचाने और ले जाने में सुविधा बढी । इसकी वजह से नई वस्तुओं का नए नए बाज़ार खुलने लगे । इन नए वस्तुओं के निर्माण केलिए बडे-बडे कारखानों का निर्माण उन्हों ने शुरू किया । अपनी ये व्यवसाय शालाएँ विभिन्न नगरों में स्थापित हुआ था । इसके बीच रेलवे की स्थापना की थी । उपन्यास में बाबा बटेश्वरनाथ कहते है "इधर के सभी प्रमख नगर रेलवे द्वारा एक दूसरे से जुड चुके थे । रैयाम, लोहट आदि स्थानों में अंग्रेज़ सौदागरों ने चीनी और जूट की मिलें खडी कर ली थीं । विलायत की बनी चीज़ें अब इन इलाकों में धडल्ले से मिलने लगी थीं । देहाती कारीगरों पर इसका बडा ही बुरा असर पडा ।"[1]

भारत में औद्योगीकरण के आविर्भाव ने एक ओर साम्राज्यवादियों की आय में वृद्धि की तो दूसरी ओर भारत के आम आदमियों की आमदनी को बरबाद कर डाला । जैसे- "...चमार जूते बनाना भूल गए । मेमिनों के पाँच करघे थे सो अब एक ही रह गया । चीनी की आमाद ने गुड के व्यापार को चौपट कर दिया । बटन, सूई, आइना, कंघी, उस्तारा और कैंची...कपडे, खेत के औजार .....बाहरी माल आ-आकर स्थानीय उद्योग धंधों का गला दबाने लगे । तेज़ी और मंदी के पाटों में पडकर अनाज का एक-एक दाना कराह उठा बेटा ! अनाज का एक-एक

[1] बाबा बटेश्वरनाथ : पृ-90

दाना ही नहीं, गांव का एक-एक आदमी कराह उठा बेटा ! बर्तन में पानी तो पहले ही जितना आता था लेकिन छेद उसमें एक के बदले अनेक हो गए थे ।"[1] ऐसे औद्योगीकरण के तहत नए बाज़ारवाद का सृजन हुआ था उसके गर्त में पडकर देशी उद्योग धंधे नष्ट-भ्रष्ट हो गए ।

औद्योगीकरण ने देश में कुछ नए वर्ग का भी सृजन किया था । किसान और उत्पादक जैसे स्वावलंबी जो वर्ग पहले था वह औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप 'नए ढंग से तलीम पाए हुए आदमियों का एक नौकरी पेशा बाबू तबका और अनोखी मशीनों के ज़रिए नए तौर-ओ-तरीकों से काम करनेवाले मज़दूरों का एक सर्वहारा वर्ग ' में तब्दील हो गया । उपनिवेशवादियों द्वारा लाए गए इस औद्योगीकरण ने एक तरफ देश का परिवर्तन कर दिया और दूसरी तरफ नए-नए परिस्थितियों को भी जनम दिया । इससे -"नगरों का महत्व बढता जा रहा औरस साथ ही वर्ग भेद । मध्यवर्ग अपनी स्वतंत्र सत्ता, इयत्ता पहचानने लगा है । .....समाज का समग्र रूप बिखर रहा, उसकी व्यवस्था चरमरा रही, हर वर्ग अपना अधिकार चलाता रहा और व्यक्ति और समाज का संबन्ध जटिल हो रहा ।"[2] ऐसे देश की अर्थ व्यवस्था एवं समाज व्यवस्था लंगडी हो गयी ।

भारत में औद्योगीकरण से उभर आए विदेशी पूँजीपतियों के शोषण को, उनकी वृद्दि को देशी पूँजीपति वर्ग घृणा की दृष्टि से देखते थे । इसलिए देशी पूँजीपतियाँ उन विदेशियों के खिलाफ संघर्ष करने लगे । इसकेलिए उन्होंने

---

[1] बाबा बटेश्वरनाथ : पृ-91

[2] भारत भूषण अग्रवाल : हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव, पृ-102

राष्ट्रीय कांग्रस को और उनके संग्रामों को समर्थन दिया । इतने में कांग्रस ने देशी पूँजीपतियों के बीच आपसी मैत्रि स्थापित की । कांग्रस को अपने उपनिवेश प्रतिरोधी आन्दोलन चलाने केलिए पैसा चाहिए था । यह पैसा उसे देश के पूँजीपतियों से मिला । क्योंकि स्वदेशी आन्दोलन द्वारा उसे विदेशी पूंजीपतियों के विरोध में खडे होने की शक्ति प्राप्त हुई । 'भूले बिसरे चित्र' के कांग्रसी नेती ज्ञानप्रकाश कहते है - "हमारे आन्दोलन चलाने केलिए रुपया चाहिए और रुपया हमें देश में पूँजीपतियों से मिल सकते है, क्योंकि अंग्रेज़ों की हुकूमत ब्रिटिश पूँजीवाद की हुकूमत है । हिन्दुस्तान से तिजारत करके तथा हिन्दुस्तान में अपना माल बेच कर ही ब्रिटेन हिन्दुस्तान का शोषण करता है तो इस ब्रिटिश पूँजीवाद का सबसे बडा सक्रिय शत्रु अगर कोई हो सकता है तो वह हिन्दुस्तानी पूँजीपति ही है ।"[1] इस प्रकार स्वदेशी एवं विदेशी दोनों पूँजीवाद की टकराहट तथा शोषण ने देश को बर्दाश्त किया । पूँजीपतियों द्वारा देश का अर्थ कुछ इने-गिनों के हाथों में आने लगा और आम जनता दिनों दिन शोषित एवं पीडित होती रही ।

गरीबों का रक्त चूस चूस कर पूँजीपति उन्हें अपनी इच्छानुसार जीवित रहने को विवश करता है । धंधे का धर्म ही पूँजीपति की रीढ हैं जिसके सहारे ये आर्थिक शोषण करता रहता है । ज्ञानप्रकाश आगे कहता है - "यह पूँजीपति ज़बर्दस्ती मुनाफा उठाता है । उस मुनाफे का एक छोटा सा हिस्सा सरकार को देता है, ता कि सरकार से उसे हर तरह की सुविधाएँ मिलें । इस मुनाफे का छोटा सा हिस्सा वह देता है कांग्रस को ताकि स्वदेशी आन्दोलन ज़ोर पकडे और उसका

[1] भूले बिसरे चित्र :पृ-390

माल ज़ोरों के साथ बिकें ।"[1] पूँजीपतियों के आर्थिक शोषण का चित्रण ऐसा कर भगवतीचरण वर्मा जी ने बीसवीं शताब्दी के पराधीन भारत का सजीव चित्रण किया है ।

भारतीय पूँजीपतियों और साम्राज्यवादी पूँजीपतियों में स्वार्थ का संघर्ष हुआ, जिसका सामना करने केलिए देशी पूँजीपतियों को तैयार करने हेतु एक ऐसी सशक्त संस्था की अवश्यकता थी ऐसी परिस्थिति में सन् 1885 में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रस' का जन्म हुआ । इसके द्वारा अंग्रेस सरकार पर दबाव डालने लगे तथा राष्ट्रीयता के नाम पर देशी वस्तुओं के उपयोग केलिए जनता में प्रचार करने लगे । अपनी आरंभिक अवस्था में कांग्रस पूँजीपतियों की आवाज़ थी, लेकिन कालांतर में जैसे-जसे संपर्क बढता गया वैसे-वैसे कांग्रस में सुधार आते गए । इस प्रकार भारत की राष्ट्रीय चेतना के मूल में भी औद्योगिक विकास केलिए पूँजीवादे प्रवृत्ति ही काम कर रही थी । सुदृढ राजकीय प्रणाली, नवीन औद्योगिक अर्थ व्यवस्था, आधुनिक साधनों का निर्माण, आधुनिक शिक्षित मध्यवर्ग तथा उद्योगवर्ग का आविर्भाव आदि ने भारतीय राष्ट्रीयता को जनम दिया । भारत का राष्ट्रीय जागरण पूँजीवाद के विकास की राजनीतिक अभिव्यक्ति है ।

ज़मीन्दारों का शोषण और विद्रोह

भारत में अपनी उपनिवेशी सत्ता कायम करने के बाद आर्थिक शोषण के

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ-391

नए-नए तरीकों से अंग्रेज़ भारत को लूटते रहे। इसकेलिए आवश्यक 'सिस्टम' भी वे तैयार करते थे। अंग्रेज़ी राज्य के प्रारंभिक दिनों में शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने केलिए अंग्रेज़ों ने दो ऐसे वर्गों का निर्माण किया जो शासन के भक्त थे तथा देश में नगरों से लेकर ग्रामों तक उनके शोषण में सहायक उत्पादन के रूप में एजंटी करते थे। उसमें एक था उनके द्वारा निर्मित मध्यवर्गीय सरकारी अफसरों का स्वामि भक्त वर्ग तथा दूसरा ज़मीन्दारों और ताल्लुकदारों का वर्ग । एक प्रकर से ज़मीन्दारों का अस्तित्व सरकार पर निर्भर था और सरकारी शोषण व्यवस्था ज़मीन्दारों पर आधृत थी।

पहले ज़मीन्दार वर्ग ब्रिटिश साम्राज्यवाद का पिट्ठू था और उनकी पूँजीवादी शोषण नीति का गावों में प्रतिनिधित्व करता था । उपभोग और विलास केलिए भोली-भाली ग्रामीण जनता का शोषण करते रहे और अंग्रेज़ों को खुश करते रहे । इनके शोषण से जो पैसा बटोरा गया था वे सब मोटरों की कीमतों में, सिगरेट में, शराब में, विलायती कपडों में और भोगविलास की विभिन्न चीज़ों में विलायत जाता रहा । ज़मीन्दारों की इस सुवुधाभोगी जीवन पद्धति के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था बर्बाद होने लगी थी।

जब तक अंग्रेज़ों की स्वार्थ पूर्ति होती रही अंग्रेज़ ज़मीन्दारों के साथ रहा। लेकिन जब उपनिवेशवादी शोषण के खिलाफ भारतीय जनता संगठित होने लगी तो अंग्रेज़ों ने देखा कि अकेले इस वर्ग का साथ देकर भारत पर शासन नहीं किया जा सकता । अतएव उसने ज़मीन्दारों और किसानों, पूँजीपतियों और मज़दूरों, धनवानों और निर्धनों तथा हिन्दु-मुस्लिम में संघर्ष पैदा कर गृह कलह मचवा

दी । इससे अपनी चाल में उसे सफलता मिली । यही साम्राज्यवादियों की नीति थी जिसने 'फूट डालो और राज्य करो' वाली नीति पर काम किया था ।

उपनिवेशयों द्वारा अपनी शोषण नीति केलिए सहायक के रूपमें निर्मित इस उपजीवी वर्ग ने अपने अस्तित्व की चिंता कभी नहीं की । वे किसानों और मज़दूरों का शोषण करते रहे और अपनी विलासिता का जीवन व्यतीत करते रहे । युग की गतिशील धरती पर ज़मीन्दारों ने अपने को परिवर्तनोन्मुख समाज से सदैव अलग रखा था क्यों कि वे अपने को श्रेष्ठ मानते रहे । इसकी वजह से साम्राज्यवाद भीषण स्थिति से अवगत होने में उन्हें देरी हुई थी । यह उनके पतन केलिए कारण बनी । यूरोप में औद्योगिक क्रांति हुई उसके बाद हमारे समाज ने नितांत नया रूप धारण कर लिया । इस औद्योगिक क्रांति के कारण समस्त शक्ति धन में केन्द्रित हो गयी । इसके परिणामस्वरूप पूँजीपति वर्ग आगे आया जिसकी शक्ति ने ज़मीन्दारों को तोड कर रख दिया ।

पहले ज़मीन्दारों का शोषण आम जनता भोग रहे थे । अपनी जान देकर बनाई उपज को ज़मीन्दार अपनी मर्ज़ी के अनुसार कर, बट्टा आदि लगाकर शोषण करते रहे थे उसकेलिए उन्हें अंग्रेज़ों की सत्ता की सहायता मिलती थी । ऐसे साधारण जनता के शोषण से मिलनेवाले पैसों से सुविधाभोगी ज़मीन्दार विलासिता का जीवन बिताते थे । इसका चित्रण एक शादी का वर्णन करते हुए नागार्जुन बाबा बटश्वरनाथ से कहवाते है -"अगले वैशाख में राज के मझले कुमार की शादी हुई । शुक्लपक्ष की दशमी थी । बारात इसी रास्ते से गुज़री थी । नौकर-चकर मिलाकर सौ आदमी रहे होंगे । कंधों पर बाँस रखकर सोलह बेगार

भारी सा एक तख्तपोश ढोये जा रहे थे , उसप्र दरी और जाजिम बिछी थी । मय जज बाज के रंडी उस तख्तपोश पर नाच रही थी । तबला, डुग्गी, सारंगी, मजीरा सब साथ दे रहे थे । .....वैसा अद्‌भुत दृश्य मैं ने फिर कभी नहीं देखा बेटा ! कभी नहीं !"[1]

सामंती व्यवस्था के तले जनता को इतना शोषण नहीं सहना पडा था । ज़मीन्दारी व्यवस्थ में आकर अपनी ज़मीन, माल आदि सबकुछ खोकर लोग अमानवीय जीवन जी रहे थे । ज़मीन्दारों के शासन एवं शोषण के संबंध में बाबा कहते है -"आज तो इन बातों पर सहसा विश्वास नहीं करेगा कोई, किंतु सौ वर्ष पहले दर असल अपने इन इलाकों में ज़मीनदार सर्वेसर्वा हुआ करता था । रिआया से बेठ-बेगार लेना उनका सहज अधिकार था ....वह रोब ! वह दबदबा ! वह अकड ! वह शान ! वह तानाशाही ! वह ज़ोर ! वह जुल्म ! क्या बताऊँ बेटा ?"[2] यह थी ज़मीन्दारी व्यवस्था में भारत की स्थिति ।

लेकिन जब अंग्रेज़ी पूँजीवाद का आगमन भारत में हुआ तो ज़मीन्दारों के जीवन में भी परिवर्तन आने लगे । अंग्रेज़ी हुकूमत के शोषण भरी अर्थ व्यवस्था के तहत ज़मीन्दार भी तडपने लगे । गिरिराज किशोर का 'जुगलबंदी' उपन्यास उपनिवेशवादी शासन के अधीन शोषण एवं दमन के शिकार बनने वाले ज़मीन्दारों की कथा कहता है । इसमें "एक अंग्रेज़ परस्त

---

[1] बाबा बटेश्वरनाथ : पृ-42

[2] बाबा बटेश्वरनाथ : पृ-43

ज़मीन्दार के तिल-तिल कर टूटने और पूर्णतया समाप्त होने की कथा मुख्य है ।"[1] एक अंग्रेज़परस्त ज़मीन्दार है शिवचरण । वे वार फण्ड केलिए पचास हज़ार रुपयों का प्रबंध करने केलिए अपने बेटे बीरू को मेरठ भेजता है । रेलगाडी के सफर में बीरू गोरे सिपाहियों द्वारा अपमानित होता है । साथ ही गोरों द्वारा भिखारिन पर किए गए सामूहिक बलात्कार की घटना को प्रत्यक्ष देखता है । उसके मन पर उसकी गहरी प्रतिक्रिया होती है और बीरू अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है । 'वार फण्ड' न देने के कारण शिवचरण का अंग्रेज़ों के कैद में रहना, बहू के जेवरों को जमाकर वारफण्ड देना आदि इस उपन्यास की प्रमुख घटनाएँ है । शिवचरण का अवैध पुत्र चतरसिंह वारफण्ड केलिए रुपया न जमा कराने के कारण कांग्रसी घोषित कर दिया जाता है । चतरसिंह कांग्रसी बनकर उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है और शिवचरण अपनी अंग्रेज़ परस्ती के कारण भारत की आज़ादी को असह्य स्थिति मानकर उसे स्वीकार करके आत्महत्या कर लेता है । यही है 'जुगलबंदी' की कहानी ।

अपने को श्रेष्ठ मानकर जी रहे ज़मीन्दार वर्ग ने रेलगाडी में अंग्रेज़ों के साथ सफर कर अपनी श्रेष्ठता को दिखाना चाहा । लेकिन उन्हें ऐसी सुविधा मिली ही नहीं बल्कि उनके अपमान को सहना ही पडा । अंग्रेज़ों द्वारा दिए गए स्थान एवं पद केवल 'नाम' मात्र केलिए था । उनके प्रति निम्न स्तर के आदमियों तक का व्यवहार करता था । अंग्रेज़ों की मनमानी के बारें में रेलवे के कुली के मुँह से ये बातें आती हैं-"बाबू अपने घर बैठे रहना अच्छा, पर इन पलटन आदमियों के मुँह

[1] डॉ.सुषमा राणी गुप्ता : हिन्दी उपन्यासों में महाकाव्यात्मक चेतना, पृ-114

नहीं लगना चाहिए। गोली मार दे तो भी कोई पूछने वाले नहीं। बेइज्जत करना तो इनके बाएँ हथ का खेल है। देसी आदमि का साथ हो तो सफर करें।"[1] बीरू बाबू ने कुली की यह बात न मानी। इसलिए उनको अंग्रेज़ी सिपाहियों की मनमानी से अपनी इज्जत को खोना पडा। और दिल को गहरी चोट भी लगनी पडी।

"सन् 1973 में प्रकाशित 'जुगलबंदी' भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की तह में निहित अंतरंग सत्य को तलाशनेवाली रचना है। इसमें दूसरे विश्वयुद्ध से लेकर भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति तक के ऐतिहासिक माहौल को रचनात्मक क्षेत्र बना दिया गया है।"[2] स्वतंत्रता पूर्व ज़मीन्दार वर्ग ब्रिटिश हुकूमत की छत्रछाया में इज्जत की ज़िन्दगी जी रहा था। लेकिन ये ज़मीनदार वर्ग द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटिश शासन की धूर्तता, स्वार्थ तथा क्रूरता के परिवेश में परिवर्तित होने केलिए मज़बूर हुए। इसकेलिए वे पूर्णत: तैयार नही थे। इसलिए वे अंतर्विरोधों में जी रहे थे। इसकी वजह से नए पुराने मूल्यों और पीढियों का द्वन्द्व उभर आ रहा था। इसी यथार्थ को सामंत वर्ग के परिप्रेक्ष्य में तटस्तता से उकेरने का प्रयास उपन्यासकार गिरिराज किशोर ने किया है।

उपनिवेशी सत्ता ज़मीन्दारों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए समय-समय पर पैसा माँगते रहे थे। उनकी हुकूमत के अनुसार धन बटोर कर देना ज़मीन्दारों का फर्ज़ था। ज़मीन्दार ये पैसे देने केलिए काबिल है या नहीं

---

[1] जुगलबंदी : पृ-55

[2] डॉ. अरविन्दाक्षन (सं): उपन्यास शिल्पि गिरिराज किशोर, पृ-18

इसकी चिंता किए बगैर अंग्रेज़ आज्ञाएँ देते रहे । ऐसी ब्रिटिश शोषण नीति का विकराल रूप सामने आया था । ऐसी स्थिति में ज़मीनदारों में इसके विरुद्ध की विद्रोह भावना का जनम हुआ । विद्रोह की इस चिंगारी को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रस के राष्ट्रीय आन्दोलन ने आग बनाने का काम किया । कांग्रस ज़मीन्दारों से मिलकर अंग्रेज़ों के विरुद्ध लडने लगे । यह संघर्ष साम्राज्यवादी आर्थिक शोषण के विरुद्ध का संघर्ष था । ज़मीन्दारों में जागी इसी विद्रोहभावना को गिरिराज किशोर ने अपने 'जुगलबंदी' उपन्यास में अभिव्यक्त किया है । अंग्रेज़ी हुकूमत एवं शोषण के विरुद्ध चतरसिंह आवाज़ उठाते है - "कलक्टर साहब बहादुर ने मुझे पचास हज़ार रुपया देने का हुक्म दिया है । लेकिन मैं पचास पैसा नहीं दे सकता । कलक्टर से- 'वेल मि. डार्लिंग, यु आर फ्री टु डू ह्वाट यू लाइक । मैं रुपया नहीं दे सकता । हमारी जायदाद को आपका कोर्ट-आफ-वार्ड ने ऐसा बना दिया कि हम उसमें से मिट्टी खदकर भी अपना पेट नहीं भर सकते ।"[1] ऐसा कहने पर अंग्रेज़ी कम्मीशनर अपनी साम्राज्यवादी मानसिकता के तहत कह उठता है कि "यू विल हैव टु फेस दि कोनसिक्वेंसस । लेकिन उनकी धमकियों के सामने वह सिर नहीं झुकाता है और कह देता है - 'लुक हियर मिस्टर कम्मीशनर , वी लिवड ए लाइफ ओफ मिसेरबिल्स फार क्वेंटी इएर्स । ह्वात मोर यू कैन डू टु अस । माइ फादर लोस्ट हिस लाइफ व्हैल हंटिंग ए लायण । आ'म ओलसो रेडी टु फेस दी सेम ।' "[2]

---

[1] जुगलबंदी : पृ-86

[2] '' : पृ-86

अंग्रेज़ी उपनिवेशीय शोषण नीति में मानवीयता का कोई स्थान नहीं था। अगर उनमें थोडी सी मानसिकता रहती तो वे इस प्रकार के शोषण नहीं करते थे। उनके शोषण भरी अर्थव्यवस्था ने भारत वासियों को कीडों से भी निछले स्थान पर धकेल दिया था। वे अपनी ताकत से दुर्बलों पर भी अत्याचार करते रहते थे। उपन्यास के बीरू उनके अमानवीय दमन नीति एवं ताकत की बात करते हैं- "आप क्या बात करते है ! उनकी ताकत आदमियों की ताकत थोडी ही है। जानवरों की ताकत है। आदमियों के आँखें होती हैं , दिमाग होते हैं, दिल होते हैं। इनके पास कुछ नहीं। बस डंडा।"[1] इस प्रकार अपनी बर्बर दमन नीति एवं शोषण के ज़रिए अंग्रेज़ों ने समाज के उच्च वर्ग ज़मीन्दारों की ज़िन्दगी को भी संकटमय बना दिया। उनके सामने 'हिन्दुस्तान का आदमी कूडा करकट है'। उनका ल्क्ष्य तो अपने उपनिवेश की संसाधनों का संपूर्ण शोषण था।

एक विदेशी देश की सत्ता द्वारा अपनी संपत्ति की लूट होने पर पहले भारत की निर्दोषी जनता प्रतिक्रिया व्यक्त करने केलिए काबिल नहीं थी। लेकिन कांग्रस ने अपनी राष्ट्रीयता आन्दोलन के तहत उपनिवेशवादियों को देश से भगाने की कोशिश की तो देश के ज़मीन्दारों का भी समर्थन उन्हें धीरे-धीरे मिलने लगा। अपने मन में अंग्रेज़ों के विरुद्ध उठे विद्रोह को सीधे अभिव्यक्त करने केलिए उनमें ताकत नहीं थी। लेकिन जब कांग्रस के नेतृत्व में राष्ट्रीयता आन्दोलन ने ज़ोर पकडा तो वे अपनी आस्थावादी मानसिकता से गांधी जी का साथ देने को तैयार हो जाते हैं। बुआ के मुँह से निकलनेवाली ये बातें उनकी आस्थावादी

[1] जुगलबंदी : पृ-123

मनसिकता को दर्शाता है-"कृष्ण भगवान ने कहा है, जब धरती पर पाप बढता है तो भगवान किसी न किसी रूप में जनम लेते हैं। गांधी महात्मा ही भगवान की सब कलाएँ लेकर पापों का नाश करने को पैदा हुए हैं।"[1] जहाँ दमन और अन्याय है वहाँ विद्रोह उभर आना ज़रूरी है। पराधीनता की कडियों में बंदी रही जनता धीरे-धीरे सजग उठी और उन्होंने अपना आक्रोश व्यक्त किया।

पराधीन भारत की जनता अंग्रेज़ों के विभिन्न प्रकार के शोषणों से आक्रांत थी। उनके सामने अंधकार ही अंधकार छाया हुआ था। उस समय गांधीजी ही आशा की एकमात्र किरण थे। अंग्रेज़ों के अत्याचारों के साथ देनेवाला वर्ग था सामंत। उपन्यास के बीरू उस सामंत वर्ग की नई पीढी की प्रतीकात्मक प्रस्तुति है। बीरु अपने को इस सामंत वर्ग के होने पर लज्जा का अनुभव करता है। वह भी गांधीजी पर आशा रखता है। बीरु अंग्रेज़ सिपाहियों द्वारा दबोच जाने के कारण बीमार हो जाता है इसके बावजूद अंग्रेज़ों की निन्दा तथा गांधीजी की प्रशंसा करता है। वह अपने पिता शिवचरण से कहता है कि उन्हें 'वार फण्ड' केलिए रुपया नहीं देना चाहिए। यहाँ अंग्रेज़ी आर्थिक शोषण के विरुद्ध की विद्रोह भावना उभर आती है। यह भी जान लेता है कि ये अंग्रेज़ भारतवर्ष के पोषक नहीं, शोषक हैं , इन्हें जल्दी से जल्दी यहाँ से भगा देना चाहिए। उपन्यास के प्रमुख पात्र शिवचरण में भी अंग्रेज़ों के प्रति विद्रोही मानसिकता तो है पर उसे व्यावहारिक स्तर पर लाने में वह असमर्थ है। वह उसे भीतर ही भीतर दबा रखता है। क्योंकि अपने सामंती संस्कारों से बाहर आना नहीं चाहते थे

---

[1] जुगलबंदी : पृ-114

इसलिए वह आत्महत्या करता है । "किसी विशेष चरित्र की मानसिकता के तलस्पर्शी चित्रांकन को प्रमुखता देते हुए राजनीतिक, सामाजिक तथा साँस्कृतिक संदर्भ को केवल सही अर्थ में पृष्ठभूमि के तौर पर संकेत रूप में निर्दिष्ट कर सफल चित्रण करने की प्रवृत्ति गिरिराज किशोर ने सफलतापूर्वक किया है ।"[1] इन सब के आधार पर हम कह सकते है 'जुगलबंदी' देश की ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं को समेटनेवाला बहु आयामी उपन्यास है ।

भारतीय किसानों का शोषण और **विद्रोह**

भारत एक कृषिप्रधान देश है । लंबे अरसे तक भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ की हड्डी थी कृषि । यहाँ की जनता का ज़्यादातर आय कृषि एवं अनुबन्ध व्यवसाय पर आधृत था । प्राकृतिक संसाधनों से अनुगृहीत भारत में कृषि से जो कुछ मिलता था उससे लोग संतुष्ट थे और उसके द्वारा अपनी एशो-आराम की ज़िंदगी जी रहे थे । भारत वर्ष के सभी स्थानों में जनता कृषि एवं पशुपालन की एक ऐसी संस्कृति का सृजन किया था जो दुनिया के अन्य देशों से अपने को अलग रखा था । इस प्रकार प्रकृति के साथ ताल-मेल से एक आत्मनिर्भर जीवन जीने केलिए कृषि ने उन्हें प्राप्त बना दिया । देशी राजाओं और मुगल सम्राटों के शासन के अधीन तक आम आदमी चैन का जीवन बिताता रहा ।

---

[1] चन्द्रकांत वादिडवेकर : उपन्यास ; स्थिति और गति, पृ 394

अंग्रेज़ों के हाथ में भारत का शासनसूत्र जाने के साथ साथ देश की जीवन पद्धति में ही आमूल परिवर्तन का आरंभ हो जाता है । ज़मीन्दारी व्यवस्था के आगमन से ज़मीन और उसकी उपज पर गांववालों का स्वामित्व नष्ट हो जाता है । इससे देश में बहुत बडा आर्थिक परिवर्तन ही नहीं हुआ बल्कि ग्राम्य समाज की परस्पर सहयोग और सहकार पूर्ण सामुदायिक भावना ही लुप्त हो गयी । "ब्रिटिश शासन व्यवस्था के पूर्व अन्न, धन तथा विभिन्न लघु व्यावसायिक उद्योग से परिपूर्ण जीवन के समस्त आवश्यक उपकरणों को जुटा सकने की क्षमता रखनेवाला भरा-पूरा भारतीय गांव अपने आप में एक इकाई था देश में कृषि और उद्योग दोनों का ही संतुलन बना हुआ था । किंतु नवीन साम्राज्यवादी-पूँजीवादी ब्रिटिश शासन व्यवस्था के द्वारा निर्मित आर्थिक नीति का परिणाम हुआ कृषि और ग्रामोद्योगों का पतन, कृषक कारीगरी की दुर्दशा और दुख दैन्य, नए ज़मीन्दार साहुकार, पूँजीपति और भूस्वामि, किसान श्रेणी का जन्म, दुर्भिक्ष एवं वैयक्तिक सांपत्तिक चेतना और मूल्यों की स्थापना और विकास इस प्रकार एक ओर भारत की बेहाली और गरीबी बढती चली गई तो दूसरी ओर ग्रेट ब्रिटेन की समृद्धि और खुशहाली ।"[1] यह थी पराधीन भारत की तत्कालीन स्थिति ।

उपनिवेशी शासन के आने के बाद हर किसान ज़मीन्दार को अनाज के रूप में उसका हिस्सा देने लगा और सरकार को पैसे के रूप में ज़मीन का लगान देने लगा । लगान के रूप में पैसे की ज़रूरत पडने पर गांव का समस्त उत्पादन बाज़ार में जाने लगा और किसान का जीवन बाज़ार पर अवलंबित हो गया ।

[1] डॉ.प्रभास चन्द्र शर्मा : प्रगतिवाद और हिन्दी उपन्यास, पृ-192

इसका परिणाम यह हुआ कि गांव का समस्त व्यापार उद्योग नष्ट होने लगा और किसान बाज़ार का दास बनकर गांवों से बाज़ार की ओर दौडने लगा । खेती से उसकी दृष्टि धीरे धीरे व्यापारिक पैदावर (commercial crop) की ओर जाने लगी । अपनी पैदावर को बेचकर भी जब किसान की आवश्यकताएँ पूर्ण न हुई तब उसने साहूकार से कर्ज लेना आरंभ कर दिया । इसके फलस्वरूप किसान अधिकाधिक दरिद्रता का शिकार होता रहा । धीरे धीरे उसकी ज़मीन गयी, औजार गए और वह एक श्रमिक बनकर रह गया ।

ताकतवार देश के शोषण युक्त शासन के अधीन देशी जनता विशेषकर किसान पिसता रहा । किसानों के शोषण की प्रक्रिया बडी तीव्रता के साथ चालू हो गयी । निर्ममतापूर्वक ज़मीन का लगान वसूल किया गया । भूमि कर अत्यधिक बढा दिए जाने के कारण किसान की अवस्था दिन व दिन दुखद होने लगी । देश में दुर्भिक्ष हुए, लाखों लोगों की मृत्यू हुई । ऐसी संकटमय स्थिति में उपनिवेशी शासन के विरुद्ध किसानों में विद्रोह भावना जागृत उठी । उसका परिणाम यह निकला कि ज़मीन्दारों पर अत्याचार एवं गोरों के विरुद्ध का संघर्ष आदि शुरू हुए । विवेच्य काल के उपन्यासों में इन सब का जीवंत चित्रण हुआ है ।

बलपूर्वक खेती

उपनिवेश काल में किसानों के शोषण का एक प्रमुख अंग था निर्बन्धित खेती । इसके द्वारा वे अपनी आवश्यक चीज़ों की खेती करवाते थे । ऐसे नील, तंबाकू, कपास, जूट आदि की खेती भारत की भूमि पर हुई । अंग्रेज़ों के

आदेशानुसार किसानों को ज़मीन्दार खेती केलिए भूमि देते थे । उनकी कारवाइयों का जिक्र करते हुए बाबा बटेश्वर नाथ कहते है -"एक बीघा में बीस कट्ठा ज़मीन होती है न ! तो प्रति बीघा तीन कट्ठा ज़मीन में नील की खेती करने केलिए किसान मज़बूर किए जाते थे । यह दबाव ज़मीन्दारों और सरकारी अफसरों द्वारा डलवाया जाता था । जो नहीं मानता, उसे कई तरह से परेशान करते थे ।"[1] उपनिवेशकों ने अपनी तानाशाही से देश की जनता पर शासन किया । उनकी आर्थिक शोषण दृष्टि सबसे पहले भारतीय किसानों पर पडी । उन्हों ने देशी उत्पादों पर रोक लगाकर उनकेलिए आवश्यक वस्तुओं की बलपूर्वक खेती करवाई । वह खेती चाहे अपनी संस्कृति, जीवन एवं अर्थव्यवस्था केलिए प्रतिकूल क्यों न हो उससे निर्बन्धित रूप से करवाया जाता थ । यही शोषण व्यवस्था सालों तक चलता रहा । एक विशाल देश की कमज़ोर जनता इससे धीरे-धीरे पतित होती जा रही ।

सन् 1929 में विश्व आर्थिक संकट अर्थात् विराट मंदी (1929-31) से भारत की उपनिवेशी आर्थव्यवस्था और ज़्यादा तहस-नहस हो गई, कृषि संकट बढा । 50 से 60 प्रतिशत तक कृषि उत्पादों की कीमतें गिरीं । गरीब किसानों की ज़मीन कर्ज, बेदखली, लगान, गिरवी आदि के कारण ज़मीन्दारों, महाजनों तथा धनी किसानों के कब्जे में आ गयी । अत: धीरे-धीरे देश में श्रमिक एवं कृषक आन्दोलन उभर आए । जब कृषक वर्ग ने ज़मीन्दार, महाजनों और भूस्वामियों के विरुद्ध राजनीतिक और आर्थिक संघर्ष का संगठन किया, तब सरकार ने कानून और

[1] बाबा बटेश्वरनाथ : पृ-79

व्यवस्था के नाम पर सारी पुलीस और प्रशासन मशनरी का इस्तेमाल उसके विरुद्ध किया । सरकारी अफसरों ने उसके संघर्षों को कुचल दिया । जल्दी ही किसानों ने साम्राज्यवादी भूमिका को समझ लिया और पाया कि उनके दुखमय जीवन की सारी ज़िम्मेदारी इसी तंत्र में है । "अंग्रेज़ों ने पुरानी आर्थिक संरचना को बदला, ज़मीन का नया बंदोबस्त किया । ज़मीन्दारी और इस्तमरारी बन्दोबस्त के कारण ज़मीन की क्रय-विक्रय करने की खुली छूट मिल गयी । व्यावसायिक खेती को बढावा मिला । कच्चा माल प्राप्त करने केलिए अंग्रेज़ों ने कपास, पटसन, जूट और नील की खेती को प्रोत्साहन दिया । लोगों को नील बोने केलिए बाध्य किया जाता था । जौ, गेहूँ धान के स्थान पर डर के मारे किसान नील बोते थे । इससे खाद्यान्न कम पड जाता था । बंगाल में इसका विरोध हुआ । चंपारन में महात्मा गांधी का सत्याग्रह आन्दोलन भी मुख्यत: नील की खेती के विरोध में ही हुआ था ।"[1]

पराधीनता की अमानवीय शोषण नीति के साथ ज़मीन्दारों एवं पूँजीपतियों के शोषण ने भारत की आम जनता के जीवन को बरबाद कर दिया । उसके भुक्त भोगी भारतीय किसान थे । उपनिवेश काल की भ्रष्ट राजनीतिक वातावरण को तथा उसमें पिसते रहे किसानों की ज़िन्दगी को उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु ने भी चित्रित किया है । निर्बन्धित नील की खेती याद करते हुए रेणु लिखते है - "पूर्णिया जिल्ले में बहुत से ऐसे गांव है जो आज भी अपने नामों पर नीलहे साहबों का बोझ ढो रहे हैं । वीरान जंगलों और मैदानों में नील

[1] बच्चन सिंह : 19 वीं शताब्दी का औपनिवेशिक भारत और नवजागरण, पृ-145

कोठी के खंडहर राही बटोहियों को आज भी नील युग की भूली हुई कहानियाँ याद दिला देती है ।"[1] देशी किसानों की मज़बूरी थी कि अपनी नित्योपयोगी चीज़ों के बगैर साम्राज्यवादियों की आवश्यकता की पूर्ति करना। 'मेरी गंज' गांव के सभी किसान किसी न किसी बाबू एवं ज़मीन्दार के कर्जदार हैं । गरीब किसानों को सादे कागज़ पर अंगूठा निशाना लगवाकर शोषक इन्हें कर्ज देते हैं। इस प्रकार ग्रामीण लोगों की सारी संपत्ति को किसी न किसी रोप में शोषक अपने हाथ में कर लेते थे। उपनिवेशकालीन आर्थिक शोषण का एक महत्वपूर्ण अंग था किसानों पर हुए शोषण । उपन्यास के कालीचरण कहता है - "पूँजीपति और ज़मीन्दार खटमलों और मछरों की तरह शोषक हैं ।"[2] गांव की निरीह जनता अपनी अशिक्षा के कारण इस प्रकार के आर्थिक शोषणों का शिकार बनती है । गांव में समाजवादी दल के प्रचार के कारण ज़मीन्दारों और व्यापारियों के विरुद्ध लोगों में चेतना उभर आती है । शोषकों के विरुद्ध कालीचरण का कहना इस चेतना का सफल परिणाम है।

मार्क्स ने 1853 में लिखा था कि समस्त गृहयुद्ध, विदेशी आक्रमण, विद्रोह, विजय, दुर्भिक्ष भारतीय समाज की ऊपरी सतह को छूकर रह गए पर इंग्लैंड ने उसका पूरा ढाँचा ध्वस्त कर दिया । देश में कृषि की अवनति हुई, उद्योग व्यवसाय के विनाश हुए, नगरों के ह्रास और व्यक्तिगत भू स्वामित्व के सूत्रपात से प्राचीन ग्राम व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी । भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ की

---

[1] मैला अँचल : पृ-13

[2] मैला अँचल : पृ-44

हड्डी टूट गयी। उपनिवेशवादी अंग्रेज़ों के आने से उत्पादन और वितरण के साधनों में परिवर्तन हुआ और भारत में महान सामाजिक क्रांति हुई । मध्यकालीन सामंती व्यवस्था का स्थान नवीन पूँजीवादी व्यवस्था लेने लगी।

औपनिवेशिक अर्थ नीति के अधीन कृषिप्रधान देश भारत ब्रिटिश उत्पादकों का बडा बाज़ार, कच्चे [1]माल और खाद्यान्नों का एक बडा स्रोत और ब्रिटिश पूँजी के निवेश का महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया। अंग्रेज़ों ने भारत के कृषिजन्य अर्थ व्यवस्था में महान बदलाव पैदा किया, किंतु इसका लक्ष्य उत्पादन को बढाकर भारतीय कृषि का सुधार या लोगों की सुविधा सुनिश्चित करना नहीं था। इसका उद्देश्य कृषि से उपलब्ध संपूर्ण राजस्व को स्वयं प्राप्त करना और भारतीय कृषि को औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के तहत लाना था । अत: अपने ऊपर हुए अत्याचार एवं अन्याय के खिलाफ देशी किसानों ने समय-समय पर विद्रोह किया। इन्हीं विद्रोही स्वरों को आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों ने शब्दबद्ध किया है। जिसमें उपनिवेशवादी आर्थिक शोशण के विरुद्ध की आवाज़ बुलंद है।

निष्कर्ष

भारत में अंग्रेज़ी राज का सबसे बडा अभिशाप था देश का आर्थिक शोषण। अंग्रेज़ों के पहले मुगलों का शासन यहाँ पर चलता था। किंतु वे एक बार भारत में आए तो यहीं बस गए, यहीं के निवासी बने रहे। उन्होंने भारत से धन लूटकर किसी दूसरे देश ले जाने का प्रयास नहीं किया , बल्कि भारत को अपना

देश बना लिया। लेकिन अंग्रेज़ी साम्राज्यवादी हमारे आर्थिक शोषण करने केलिए यहाँ आए थे। यहाँ अपना वर्चस्व स्थापित कर उन्होंने देश के आर्थिक ढाँचे को नष्ट कर डाला । भारत की अपार संपदा इंग्लैंड पहूँचने लगी । उससे वहाँ औद्योगीकरण में वृद्धि हुई, भारत के परंपरागत उद्योगों का विनाश हुआ । भारतीय ग्रामों की अर्थव्यवस्था तहस नहस कर डाला गया । देश की अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में हुए इन शोषणों के विरुद्ध राष्ट्रप्रेमी लोगों ने संघर्ष एवं सग्राम किए थे। ये संग्राम उपनिवेशवादी अर्थ नीतियों के खिलाफ का था। इसने पूरे देशवासियों में नई हलचल पैदा की।

अध्याय पाँच
सांस्कृतिक संकट और प्रतिरोध

हर देश की अपनी एक अलग संस्कृति होती है । सामाजिक गुणों की विकासोन्मुख अनुवृत्ति को संस्कृति के अर्थ में ग्रहण किया जाता है । संस्कृति किसी देश या जाति की आत्मा है । इससे संस्कारों का बोध होता है, जिसके सहारे वह अपने सामूहिक जीवन के आदर्शों का निर्माण करता है। किसी भी देश की जनता की संस्कृति उस देश की जनता के आपसी लगाव, सहचरता और विश्वास की मुख्य धुरी है। "भारत एक बहुसांस्कृतिक देश है। यहाँ एक ही महान परंपरा न होकर कई महान परंपराएँ है । इनके बीच टकराहट, अंत:क्रिया और आदान प्रदान का इतिहास उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी खुद भारतीय संस्कृतियाँ है ।"[1] ऐसी कई संस्कृतियों के मिलन जिसने एक श्रेष्ठ संस्कृति का रूप धारण किया है वही है भारतीय संस्कृति । वह अपनी विविधता में एकता वाली विशेषता को ऊपर उठाते हुए वर्तमान है ।

स्वतंत्रतापूर्व सांस्कृतिक परिवेश

अंग्रेज़ी शासन से पूर्व भारतीय जन जीवन आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर होते हुए भी आत्मनिर्भर था । देश में वर्ण व्यवस्था का प्राधान्य था । जाति बहिष्कार की भावना अधिक थी । अस्पृश्यता अपनी चरम सीमा पर थी । उच्च-नीच की भावना, सांप्रदायिक वैमनस्य आदि बढ रहा था । समाज में रूढी, परंपरा, रीति-रिवाज़ तथा धर्म के नाम पर अनेक कुरीतियाँ व्याप्त थीं । अशिक्षा, जडता एवं अंधविश्वासों में जनता जकडी थी। समाज परिवर्तन चाहता था लेकिन रूढीवादी तत्व प्रबल थे। इसलिए जो कोई व्यक्ति परिवर्तन लाने की कोशिश करता था वह विद्रोही समझा जाता था । समाज व्यक्ति के प्रति असहनशील और अनुदार रहा । हिन्दू धर्म की कठोरता देश में कायम थी । ऐसे समय में ईसाई मिशनरियों ने

[1] शंभुनाथ : हिन्दी नवजागरण और संस्कृति , पृ-13

अपने धर्म का प्रचार शुरू किया, जिसमें हिन्दू समाज की कठोरता से क्षुब्ध होकर निम्न वर्ग ने ईसाई धर्म को स्वीकार किया। ऐसे भारतीय समाज में धर्म परिवर्तन की प्रवृत्ति बढने लगी। यह देखकर भारतीय विचारकों ने समाज, संस्कृति तथा धर्म की रक्षा हेतु कई प्रकार के आन्दोलनों का प्रचार किया।

19 वीं शताब्दी के आरंभ में ब्रिटिश साम्राज्य ने भारत में अपनी जडें जमा ली। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा एक उपनिवेशी शासन यहाँ पर कायम हुआ। उन्होंने अपने शासन चलाने केलिए अंग्रेज़ी शिक्षा का सूत्रपात किया जिससे भारतवासी शिक्षित होकर क्लार्क बनने लगा। इस प्रकार समाज में एक नए वर्ग का भी जनम हुआ। शुरू में अंग्रेज़ी शासन ने समाज सुधार के दृष्टिकोण से दास प्रथा, सती प्रथा बालहत्या आदि सुधार कानून बनाए क्यों कि उस समय भारतीय समाज के जीवन एवं संस्कृति में ऐसी कुप्रथाएँ चल रही थीं। भारतवासियों को सुसंस्कृत बनाने में उनके इस सुधार कानून ने आवश्यक काम किया यह हमें नहीं भूलना है।

समाज का ढांचा अर्थ व्यवस्था पर आधारित होता है। देश की आर्थिक स्थिति जनता के सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन में भी प्रभाव डालती है। उपनिवेशी शासन तंत्र ने भारतीय उद्योगों, करघे, चरखे का व्यापार पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया। खेती एवं अन्य कुटीर उद्योगों के ज़रिए जी रहे आम आदमी को मज़दूर बना डाला। अंग्रेज़ी उपनिवेशवादियों की औद्योगीकरण की नीति ने किसानों, मज़दूरों को शहरों की ओर आकर्षित किया। अंग्रेज़ों के द्वारा न केवल भारत के परंपरागत उद्योगों का नाश किया गया, ब्रिटिश साम्राज्य के खर्चे केलिए कर भी लगाए गए। उनकी कूटनीतियों के तहत ज़मीन्दारी व्यवस्था और पूँजीवादी कानून व्यवस्था लागू कर दी गयी। इसने भारतीयों के जीवन में आमूल परिवर्तन बना डाला।

ज़मीन्दारी एवं पूँजीवादी व्यवस्था के अधीन में एक नई जीवन पद्धति का सृजन हुआ जो अपनी पुरानी संस्कृतियों से बिलकुल भिन्न थी। इसमें कृषकों पर शोषण बढता जा रहा था। बेकारी बढ रही थी। समाज में वर्ग संघर्ष उग्र होने

लगा । निम्न तथा मध्य वर्ग की स्थिति अत्यंत दयनीय थी । धन के अभाव और पूँजीवादी व्यवस्था के प्रभाव में अनेक कुरीतियाँ उत्पन्न हो गयीं । इन सारी समस्याओं ने मिलकर एक सुसंस्कृत देश को पूरा का पूरा बरबाद कर डाला । भारत की परंपरागत संस्कृति और धर्मशास्त्र रूढियों पर नियंत्रित था । धर्म ही व्यक्ति के जीवन मूल्य का निर्णय करता था ।

19 वीं शताब्दी में विज्ञान के विकास के साथ मानवीय विचारधारा और दृष्टिकोण में परिवर्तन आया । इसकेलिए कारण बना अंग्रेज़ी उपनिवेशी शासन । अंग्रेज़ी प्रभाव में पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृतियों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई । क्योंकि दोनों संस्कृतियों में बहुत अंतर थे । भारतीय जीवन मूल्यों से बिलकुल भिन्न था पाश्चात्य जीवन मूल्य । उपनिवेश काल में भारत में नवीन मान्यताओं और नवीन जीवन मूल्यों ने जन्म लिया । पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से भारत में भौतिक संस्कृति का प्रस्फुटन हुआ । "सांस्कृतिक उपनिवेशन का सिलसिला नवजागरण काल से ही शुरू हो गया था, जब भारतीय सुधारवाद सार्वभौम श्रेष्ठता की पश्चिमी धारणा से आतंकित था ।"[1] पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित देशी जनता की पुरानी पीढी परंपरागत मान्यताओं के परिवर्तन का विरोध करती थी । लेकिन युवा पीढी प्रगतिशील मूल्यों को आत्मसात कर परंपराओं का विरोध कर रही थी । एक पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से धार्मिक कट्टरता के बंधन शिथिल होने लगे, अंधविश्वासों के प्रति अनास्था ने जन्म लिया था तो दूसरी ओर भारत की अपनी मौलिक संस्कृति में दरारें तथा परिवर्तन आने लगे ।

शताब्दियों की उपनिवेशी राजनीतिक दासता के कारण भारत में सामाजिक कुरीतियाँ और धार्मिक अंधविश्वास का साम्राज्य छाया हुआ था । तत्कालीन समय में नारियों को समान अधिकार प्राप्त नहीं था । उनकी स्थिति दयनीय थी । ऐसी अवस्था में समाजोद्धार के उपलक्ष्य में नए जागररण पैदा हुए जिनमें धार्मिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक प्रमुख थे । इसमें स्त्री शिक्षा और नारी

---

[1] शंभुनाथ : संस्कृति की उत्तरकथा , पृ-178

उद्धार केलिए उठाए गए कदम भी महत्वपूर्ण है । भारतीय जनता के मन में उठा यह जागरण एकप्रकार की विद्रोह भावना की उपज थी जो उपनिवेशी शासन के प्रति अपनी सख्त नफरत प्रकट करती है । मोटे तौर पर यह भारत का सांस्कृतिक पुनर्जागरण था, अपने स्वत्व को बनाए रखने का सशक्त प्रतिरोध ।

उपनिवेशी शासन काल में वैदेशिक अधीशत्व की गिरफ्त में पडी, भारत की जनता एक ओर आर्थिक तंगी की कठोरता में जीवन बिता रही तो दूसरी ओर सांस्कृतिक संकट की स्थिति से गुज़र भी रही थी । ऐसी संकट ग्रस्त परिस्थिति में उससे मुक्ति की कामना सबके मन में उभर आना अनिवार्य था । अंग्रेज़ी शिक्षा, पाश्चात्य देश के साहित्य एवं जीवन की जानकारी भारतीयों में जागरण पैदा करने केलिए उपयोगी सिद्ध हुए । उपनिवेशी शासन से जर्जरित होती जा रही भारतीय संस्कृति की रक्षा करने तथा उसे ऊपर उठाने का सफल और सशक्त प्रयास युगीन रचनाकारों ने भी किया था । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और उपन्यासकारों ने इस संस्कृति कर्म में अपना पूरा योगदान दिया है, यह उल्लेखनीय है । उपनिवेशवाद के खिलाफ का साहित्यिक प्रतिरोध के रूप में इन्हीं प्रयासों को हम देख सकते हैं ।

नए मध्यवर्ग और सांस्कृतिक मूल्य ह्रास

19 वीं शताब्दी में अंग्रेज़ी उपनिवेशवादियों ने धीरे-धीरे भूमि का सर्वेक्षण करके अपने उपनिवेशों में राजस्व निर्धारित किया तथा उसी राजस्व से अपने देश को विकास की ओर अग्रसर किया । आधुनिक अधिकारी तंत्र की स्थापना की, सेन और पुलीस की स्थापना की । इसी के साथ उन्होंने अदालतें स्थापित करके कानून की संहिताएँ बनाईं । सैनिक तथा प्रशासनिक सुख-सुविधाओं केलिए संचार साधनों, रेलों, डाक और तार, सडकों और नगरों का विकास किया । यह भी नहीं अपनी इच्छा के अनुसार चलनेवाले नौकरशाहों और बाबुओं के निर्माण हेतु स्कूलों और कालेजों की स्थापना भी उन्होंने की । इन सबके ज़रिए एक आधुनिक देश की नींव उन्होंने डाली जो संपूर्णत: औद्योगीकरण पर आधारित था । इसका

दुष्परिणाम देशी जनता के जीवन और मूल्यों पर भी पडा । यह धीरे-धीरे सांस्कृतिक संकट की स्थिति में परिणत हो गयी ।

पच्चासोत्तर हिन्दी उपन्यास ने इसी सांस्कृतिक संकट को अनदेखा नहीं किया । समय-समय पर अपनी सशक्त कलम को लेकर युगीन उपन्यासकार अपने संस्कृतिकर्म की रणभूमि पर उतर आए । उसका सफल परिणाम थे उपनिवेशवाद के खिलाफ आवाज़ उठानेवाले उपन्यास । उपन्यासकारों का यह काम डॉ.लक्ष्मीसागर वाष्णोय के अनुसार सामाजिक संचेतना है । वे कहते हैं – "जब एक उपन्यासकार अपनी रचना में सामाज की समस्याओं को सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भों में देखने का प्रयास करता है और नए परिवेश में मानव मूल्य एवं व्यक्ति के आचरण की मर्यादा स्थापित करने का प्रयत्न करता है तब वह सामाजिक संचेतना का ही चित्रण करता है । सामाजिक संचेतना का मतलब है –पाठकों की दायित्व भावना को सचेत करती और जीवन प्रक्रिया के प्रति उद्‌बुद्ध कर उसे समाज की अधिक सुसंस्कृत इकाई बनाती है ।"[1] वैदेशिक अधीशत्व के सांस्कृतिक उपनिवेशन से देशी जनता तडपती रही । समाज में नई-नई समस्याएँ उभर आने लगीं । अपने पुरातन मूल्य धीरे-धीरे विलुप्त होने लगे । इसी संकटपूर्ण जीवन व्यापार को अभिव्यक्त करके लोगों को उपनिवेशवाद के विरुद्ध जागृत करने का प्रयास इन उपन्यासकारों ने किया था । सच्ची शिक्षा एवं ज्ञान व्यक्ति को संस्कृत बना देता है और दूसरों को भी सुसंस्कृत बनाने को प्रेरित भी करता है । यही काम उपनिवेशकालीन तथा बाद के प्रतिबद्ध, संवेदनदृष्ट रचनाकार करते थे । इनकी कडी मेहनत की उपज थे उपनिवेश प्रतिरोधी उपन्यास ।

20 वीं शदाब्दी के प्रारंभ में भारतीय जन जीवन में राष्ट्रीयता का विकास हुआ, जिसके मूल में अतीत गौरव तथा देश की प्राचीन संस्कृति के प्रति आस्था तथा अनुराग का भाव था । इस अनुराग के पीछे अनेक कारण मौजूद थे । उसमें

---

[1] डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णोय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ- 79

एक ब्रिटेन की साम्राज्यवादी नीति का वह पहलू भी था जो राजनीतिक विजय के उपरांत सांस्कृतिक विजय केलिए भी प्रयत्नशील था। भारतवासियों को मानसिक रूप से गुलाम बनाने के सारे प्रयत्न अंग्रेज़ी उपनिवेशवादियों की ओर से किए जा रहे थे। इसकेलिए अनेक माध्यमों के द्वारा जनता को पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति के अनुरूप बदलने की कोशिश भी किया करते थे। अपने इस प्रयत्न में अंग्रेज़ काफी सफल निकले क्योंकि पाश्चत्य शिक्षा तथा भौतिक विकास योजनाओं ने भारतीयों को बहुत आकर्षित किया था। फलत: अंग्रेज़ी पढे-लिखे लोगों में एक प्रकार की हीनता पैदा हुई और उनका दृष्टिकोण पश्चिमी सभ्यता संस्कृति के आधार पर निर्मित होने लगा।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में मध्यवर्ग क उदय एक नई घटना थी। मुगल काल में भी उच्च और निम्न वर्गों के बीच पुरोहित, कवि और कलाकार थे। पर आधुनिक मध्यवर्ग से उनकी सामाजिक स्थिति भिन्न थी । उसमें कुछ सुविधाभोगी शिक्षित वर्ग था जो उपनिवेशी शासन व्यवस्था में अपने को श्रेष्ठ घोषित करनेवाले थे और उपनिवेशियों को प्रभु माननेवाले थे। सन् 1857 के विप्लव तक के मध्यवर्ग युगीन राजाओं और रईसों पर अवलंबित था तो आधुनिक मध्यवर्ग अंग्रेज़ी उपनिवेशवादियों के आश्रित थे। इनके जीवन यथार्थों को उपन्यासों का कथ्य बनाकर आधुनिक हिन्दी उपन्यास ने उपनिवेशकालीन भारत की सांस्कृतिक संकट को शब्दबद्ध किया है। डॉ. बदरीदास के अनुसार – "उपन्यास ही एक ऐसा साहित्य रूप है जिसमें नागरिक सभ्यता की विविधता और जटिलता की यथार्थ और पूर्ण अभिव्यक्ति हुई ।"[1] औद्योगीकरण और पाश्चात्य सभ्यता के कारण सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन सबसे पहले नगरों में प्रकट हुआ। वेतन भोगी वर्ग शक्ति और स्वतंत्रता का अनुभव करने लगा। लोगों में भौतिक दृष्टिकोण का आविर्भाव हुआ। पुराने मूल्यों का विघटन हुआ तथा नए मूल्यों का सृजन भी होने लगा। नगरीकरण की इन विशेषताओं का गहरा प्रभाव उपन्यास पर पडा।

---

[1] डॉ. बदरीदास : हिन्दी उपन्यास पृष्ठभूमि और परंपरा, पृ-101-102

औपनिवेशित भारत के सांस्कृतिक परिवर्तन को सजीव ढंग से प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास है भगवतीचरण वर्मा का 'भूले बिसरे चित्र'। पराधीन भारत की ज्वलंत समस्याओं को चार पीढियों के पात्रों के ज़रिए चित्रित कर देश के मध्य वर्ग पर पडे स्वार्थ लोलुप मशीनी सभ्यता के प्रभाव को वर्मा जी दर्शाते हैं। उपन्यास क समय सन् 1885 से 1931 तक का है। यह कालखंड हमारे देश के आधुनिक इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण युग है। यह काल देश के नई करवट लेने का, नए सपने देखने का और नई चेतना से अनुप्राणित और संचालित होने का युग है। उपन्यास की इन चार पीढियों में हमारे सामाजिक चेतना के निर्माण की नींव पडी है, साथ ही भारतीय समाज में आए सांस्कृतिक परिवर्तन की नींव भी। अच्छे ओहदों पर प्रवेश कर सुविधा भरे जीवन जीने वाले मध्यवर्ग हमेशा उपनिवेशवादी अंग्रेज़ों को श्रेष्ठ मानते थे और अपनी परंपरा और संस्कृति को भूलकर नई पाश्चात्य जीवन शैली में रहने केलिए आक्रांत थे। पराधीनता की गिरफ्त में रहकर शोषक अंग्रेज़ को श्रेष्ठ मानने वाला पात्र है भूले बिसरे चित्र का लाला रिपुदमन सिंह। वे कहते हैं- "दुनिया का पांचवां हिस्सा इस विदेशी साम्राज्य के अंतर्गत है। दुनिया के सबसे अधिक वैभवशाली और शक्तिशाली साम्राज्य ! इस साम्राज्य का शाहमशाह आ रहा है यहाँ, अपना दरबार करने केलिए, और जनता में अपने बादशाह के प्रति प्रेम है, श्रद्धा है।"[1] यहाँ देश की नब्बे प्रतिशत जनता अंग्रेज़ों की कूटनीति से संत्रस्त जीवन बिताते रहते समय देश के उद्योगपति एवं सेठ साहूकार अंग्रेज़ी शासन के तले अपने एशो-आराम की ज़िन्दगी जी रहे थे। एक अन्य पात्र गंगाप्रसाद भी ऐसा है जिसने अग्रेज़ी हुकूमत के अधीन देश की आम जनता को सताते थे। वे भी अंग्रेज़ों की जीवन शैली का अंधानुकरण कर स्वदेश में रहकर विदेशी एवं सभ्य बनने की कोशिश करते रहे थे ।

आधुनिक औद्योगिक सभ्यता को पाश्चात्य सभ्यता मानता था। यह अंग्रेज़ के साथ यहाँ आया था। कुछ लोग इसका साथ देता तो ज़्यादा लोग इससे नफरत

---

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ-276

करते थे । क्योंकि यह अपने देश-काल केलिए अनुकूल नहीं था । भारत एक कृषिप्रधान देश है । यहाँ बडे-बडे उद्योगों का आना और किसानों को मज़दूर बनाना यहां की जनता पसंद नहीं करती थी । इसलिए इसके विरुद्ध आवाज़ भी समय पर उठी थी । राष्ट्रीय स्तर पर गांधीजी तथा हिन्दी उपन्यास साहित्य की शुरूआत में प्रेमचंद औद्योगिक व्यवस्था सभ्यता के विरोध करते थे । प्रेमचंद ने पाश्चात्य सभ्यता का सख्त विरोध किया क्योंकि उन्हें ग्रामीण संस्कृति तथा ग्रामीण संस्कृति पसंद है । वे औद्योगिक सभ्यता से उत्पन्न शहरी संस्कृति से नफरत करते हैं । रंगभूमि में मिस्टर जॉन सेवक की फैक्टरी की स्थापना के बाद गांव की सभ्यता में जो परिवर्तन होता है, उसके हर एक पहलू को प्रेमचंद बडे मनोयोग से उपस्थित करते हैं ।

श्री अवधेशकुमार सिंह ने सही कहा है कि-"उपनिवेश काल में औद्योगीकरण की जो जूठन हमारी ओर फेंकी गयी उसका मूल उद्देश्य भारतीय प्राकृतिक व आर्थिक संसाधनों का दोहन करते हुए उपनिवेशवाद की संरचनाओं को और सुदृढ करते हुए उपनिवेशी हितों को पुष्ट करना था ।"[1] इस प्रकार उपनिवेश बने देशों की संस्कृतियों के ऊपर साम्राज्यवादी उपनिवेशवादी प्रक्रियाओं तथा संस्कृतियों का प्रभाव विश्व के सभी भागों में अलग अलग ढंग से हुआ है । भारत में भी इसकी स्पष्ट झलक हमें देखने को मिलते हैं । स्वतंत्रता पूर्व एवं उत्तर के भारत की संस्कृति पर दृष्टि डाले तो पता चलेगा कि कौन सा परिवर्तन हमारे जीवन में आया है ।

भारतवर्ष के सांस्कृत्क जीवन में हमारे सामने दो बाधाएँ मौजूद हैं- एक तो प्रचीन रूढीवाद रूपी कुएँ है और दूसरी आधुनिक यूरोपीय सभ्यता रूपी खाई । यूरोपीय सभ्यता रूपी बाधा सबसे पहले उच्च शिक्षा प्राप्त मध्यवर्ग पर पडा था । इसके तहत वे जीवन के नए तौर तरीके अपनाने लगे वह पूर्णत: भारतीय संस्कृति से भिन्न था । लोगों में आई इस सांस्कृतिक परनिर्भरता को उपन्यासकारों ने सशक्त रूप में चित्रित किया है । प्रेमचंद जैसे उपन्यासकार इसमें

---

[1] अवधेशकुमार सिंह : आलोचना, जनवरी-मार्च, 2003

अग्रणी माना जाता है। अपने 'रंगभूमि' उपन्यास में प्रेमचंद ने अंग्रेज़ी शासन और उसके द्वारा लाए गए सभी आविष्कारों को अपने देश की संस्कृति एवं विकास के विरुद्ध घोषित किया है। वे इन आविष्कारों को अंग्रेज़ों के स्वार्थ सिद्ध हेतु मानते हैं। उनकी इस राय को उपन्यास के पात्र कुँवर भरत सिंह और मिसिस जॉन सेवक के वार्तालाप मध्यम से स्पष्ट करते हैं-" तो क्या आप यह नहीं मानते कि अंग्रेज़ों ने भारत केलिए जो कुछ किया है वह शाउअद किसी जाति ने किसी देश के साथ किया हो।

'नहीं, मैं नहीं मानता।'

'शिक्षा का प्रचार और भी किसी काल में हुआ था ?'

'मैं इसे शिक्षा नहीं कहता जो मनुष्य को स्वार्थ का पुतला बना दे।'

'रेल, तर, जहाज़, डाक ये सब विभूतियाँ अंग्रेज़ के साथ आई।'

अंग्रेज़ के बगैर भे आ सकती थीं और आई भी हैं तो वे अधिकतर अंग्रेज़ों के ही लिए।'

ऐसा न्याय विधान कहाँ था जो अन्याय को न्याय और असत्य को सत्य सिद्ध कर दे। यह न्याय नहीं न्यय का गोरख धंधा है।"[1] ऐसे वे पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के सभी विकास माध्यमों के प्रति अपना विद्रोह अभिव्यक्त करते हैं । ऐसी एक मानसिकता के पीछे उनकी तीव्र देशीयता, अपनी परंपरा तथा संस्कृति को बरकरार रखने की तीव्र इच्छा थी।

पाश्चात्य नागरी सभ्यता का प्रभाव ज़्यादातर यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियों के आगमन से हुआ। इसने तब तक देश में कायम रही श्रेष्ठ सभ्यता को बरबाद कर डाला। अंग्रेज़ी शिक्षा तथा जीवन शैली के माध्यम से लोगों के दिमाग में पाश्चात्य सभ्यता के प्रति मोह उपनिवेशवादियों ने पैदा किया। शंभुनाथ ने सही कहा है कि-"भारत में पश्चिमी साम्राज्यवाद के सैनिक, आर्थिक और राजनीतिक अनुप्रवेश से अधिक खतरनाक था बौद्धिक अनुप्रवेश। इसकेलिए उन्होंने हथियार बनाया शिक्षा और परजीवि वर्ग को। बौद्धिक उपनिवेशन ही

---

[1] रंगभूमि : पृ-269

भारतीय गहराइयों को मिटाकर उथलापन ला सकता था, जहाँ न कोई राष्ट्रीयता हो, न मानवतावाद हो और न कोई सच्ची वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि हो ।"[1] उपनिवेशवादी अंग्रेज़ों ने ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से भारतीय उद्योग धंधों का विनाश किया साथ ही आर्थिक लूट से देश को दरिद्र बना दिया । अपनी शोषण व्यवस्था की पुष्टि केलिए अंग्रेज़ ने प्रशासनिक कर्मचारियों की नियुक्ति की । कर्मचारियों का अभाव पूरा करने तथा अन्य उद्देश्यों केलिए उन्होंने अंग्रेज़ी शिक्षा की व्यवस्था की । इसलिए मेकाले ने रुचि, भाषा, भावों और विचरों की दृष्टि से कुछ अंग्रेज़ परस्त भारतीयों को तैयार करने की योजना बनाई । भारतीय मध्यवर्ग इनकी कूटनीतियों के शिकार थे । पहले वे अंग्रेज़ी शासन के अधीन अपना सुखलोलुप जीवन बिताते रहे । लेकिन बाद में वे भी उनके अन्यायों को झेलने केलिए मज़बूर हुए । मध्यवर्गी सुविधाभोगियों का यह पतन पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से हुआ था ।

औद्योगीकरण के अभिशाप और दुष्परिणामों का विस्तृत उल्लेख उन्होंने पाण्डेपुर में फैक्टरी खुलने के बाद की स्थिति का चित्र देकर किया है । सूरदास का विचार है कारखाना बनेगा तो गांव में दुराचार फैलेगा । वे नागरिक सभ्यता की समस्याओं को भविष्यवाणी के रूप में कहते हैं – "मुहल्ले की रौनक ज़रूर बढ जाएगी, रोज़गारी लोगों को फायदा भी खूब होगा । लेकिन जहाँ रौनक बढेगी वहाँ ताडी, शराब का भी तो प्रचार बढ जाएगा, कसबियाँ भी तो आकर बस जाएगी, परदेशी आदमी हमारी बहू-बेटियों को घूरेंगे, कितना अधरम होगा । देहात के किसान अपना काम छोडकर मज़दूरी के लालच में दौडेंगे, यह बुरी बुरी बातें बातें सीखेंगे और अपने बुरे आचरण अपने गांव में फैलाएँगे ।"[2] साम्राज्यवादियों के सुविधा हेतु लाए गए औद्योगीकरण से हमारे देश की संस्कृति में गलत असर पडा । इसके विरुद्ध की प्रतिरोधी आवाज़ें उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं द्वारा प्रकट की है ।

---

[1] शंभुनाथ : आलोचना, जनवरी-मार्च

[2] रंगभूमि : पृ-87-88

नागार्जुन के 'बाबा बटेश्वर नाथ' में भी औद्योगीकरण और उससे बनी सांस्कृतिक मूल्य ह्रास की अभिव्यक्ति हुई है। उपनिवेशी शासन काल में अंग्रेज़ों के सहायक के रूप में देश में जन्मे नए मध्यवर्गी बाबू लोग अपने बोलचाल में अंग्रेज़ों की अंधी नकल कर रहे थे। उसमें वे गर्व करते थे। बाबा कहते हैं-"शहर की बू-बास बोलचल से कहीं पर्गट हो वहाँ देहातियों को नाक भौं नहीं सिकोडनी नहीं चाहिए बाबू ! शहर आसमान में नहीं हुआ करते। गांव की तरह शहर भी इसी भूमि पर आबाद हैं। पढे-लिखे काफी ऐसे लोग हैं जो नासमझी के कारण गावों और शहरों को परस्पर प्रतिकूल बतलाते हैं।"[1] इसके अलावा औद्योगीकरण के फलस्वरूप देशी कारीगरों की ज़िन्दगी में भी बदलाव आने लगा था। उपनिवेशवादियों की बाज़ारी दृष्टि ने यहाँ के उद्योगों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इससे उनकी जीवन पद्धति में भी परिवर्तन आने लगे। इसका जिक्र करते हुए बाबा कहते हैं – "इधर सभी प्रमुख नगर रेलवे द्वारा एक दूसरे से जुड चुके थे। रैयाम, लोहर आदि स्थानों में अंग्रेज़ सौदागरों ने चीनी और जूट की मिलें खडी कर ली थीं। विलायत की बनी चीज़ें अब इन इलाकों में धडल्ले से मिलने लगी थीं। देहाती कारीगरों पर इसका बडा ही बुरा असर पडा।"[2] ऐसे औद्योगीकरण से नई समस्याएँ आने लगे। इससे देश की जीवन पद्धति में आमूल परिवर्तन आया। यह हमारी सांस्कृतिक पतन केलिए कारण बना।

नई नागरिक संस्कृति का प्रभाव केवल भारत की आर्थिक स्थिति पर नहीं पडा बल्कि हमारी संस्कृति और विरासत पर भी उसका असर पडा था। उसने आम लोगों की ज़िन्दगी को तबाह कर दिया। जनता अपनी महान परंपरा को खो बैठने केलिए मज़बूर बनी। बाबा कहते हैं-"चमार जूते बनाने भूल गए। मोमिनों के पाँच करघे थे सो अब एक ही रह गया। चीनी की आमाद ने गुड के व्यापार को चौपट कर दिया। बटन, सूई, आईना, कंघी, उस्तरा और कैंची, कपडा, खेती के

---

[1] बाबा बटेश्वरनाथ : पृ-62

[2] ,, : पृ-91

औजार ...बाहरी माल आ-आकर स्थानीय उद्योग धन्धों का गला दबाने लगे ।"[1] इसी से पता चलेगा कि पाश्चात्य सभ्यता एवं औद्योगीकरण का प्रभाव भारत पर कितना गहरा पडा है । संवेदनदृष्ट प्रतिबद्ध रचनाकार इन्हीं समस्याओं को छोड नहीं सकते । वे अपनी संस्कृति के पतन से बेचैन हैं । उनकी ये बेचैनियाँ शब्दबद्ध होकर उपन्यासों में आती हैं ।

मशीनी सभ्यता को प्रश्रय देनेवाले नए नए शिक्षित वर्गों की अपनी एक नई संस्कृति उभर आने लगी । उसमें अपनी परंपरा की नकार एवं नई सभ्यता के प्रति चाह थी । इसको आवश्यक मदद अंग्रेज़ों ने दी । नए वर्ग के उदय के बारें में नागार्जुन कहते हैं-"रोज़गार की कुछ नई सूरतें भी निकल आई थीं । नए ढंग से तालीम पाए हुए आदमियों का एक नौकरी पेशा बाबू तबका और आपसी भेद भाव भूलकर अनोखी मशीनों के ज़रिए नए तौर तरीकों से काम करने वाले मज़दूरों का सर्वहारा वर्ग अस्तित्व में आ चुके थे ।"[2] समाज में नए वर्गों का सृजन नई नागरिक सभ्यता की देन है । इसने यहाँ की व्यवस्था का सत्यनाश कर अपने लिए अनुरूप नई समाज व्यवस्था की स्थापना की सृष्टि की ।

गिरिराज किशोर के 'जुगलबंदी' उपन्यास में ही अंग्रेज़ परस्त नए मध्यवर्ग के प्रतिनिधि के रूप में ज़मीन्दार शिवचरण का चित्रण किया है । यह उपन्यास ऐतिहासिक महत्व के एक युगविशेष की दो पीढियों की मानसिकता को बहुत गहराई और तटस्थता से चित्रित करतहै । अपने ही देश के लोगों के पैसे से स्वदेश में उपनिवेशवादियों की देखरेख में जी रहे, अपने को श्रेष्ठ घोषित करनेवाले मध्यवर्गी पात्र है शिवचरण । युद्ध के समय में अंग्रेज़ी साम्राज्यवादियों की मदद करना वे अपना फर्ज़ समझते हैं । वे कहते हैं-"इस वक्त हुकूमत परेशानी में है । हमें अपना फर्ज़ समझना चाहिए । वह इतने बडे जंग में उलझी हुई है । जब कभी हम ने सरकार से अपने लिए या किसी दूसरे केलिए माँगा, कभी ऐसा

---

[1] बाबा बटेश्वर नाथ : पृ -91

[2] ,, : पृ-91

हुआ नहीं कि हमें इनकार मिला हो। राजा का प्रजा पर पहला हक है।"[1] अंग्रेज़ों को श्रेष्ठ मानकर उनकी कार्रवाइयों को अनिवार्य मानने वाले नए मध्यवर्ग के ज़मीन्दारी पात्र के रूप में शिवचरण बाबू आता है। वे अंग्रेज़ों का साथ देने में गौरव अनुभव करते हैं। अपनी इज्जत के आगे जायदाद को भी वे तुच्छ समझते हैं।

विभिन्न नवोत्थान कार्यक्रम

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहस तथा ब्रिटिश उपनिवेशवाद के खिलाफ हुए प्रतिरोधों का अध्ययन करते समय उन विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक सुधार आन्दोलनों का अध्ययन करना ज़रूरी है। इन्हीं सुधारवादी आन्दोलनों को नवजागरण के नाम से ही जाने जाते है। भारतीय जन जीवन में नवजागरण धार्मिक अंधकार से भरी एक लंबी अवधि के बाद नवोदित सुबह के समान आया था। इसने देश की जनता में आत्मबल, समभावना तथा विकासोन्मुख मानसिकता आदि का सृजन किया। सच्चे अर्थ में जर्जर जन मानस के संस्करण का काम इसने किया। "नवजागरण ने एक दूसरा महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि मनुष्य को धर्म के चौखटे में बंद नहीं रखकर नए लौकिक विषयों की ओर मुडा जैसे आधुनिक शिक्षा, विज्ञान, इतिहास, उद्योग, देशभक्ति, राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम, लोकतंत्र कला, भाषा और साहित्य के जातीय विकास, विश्व बन्धुत्व आदि।"[2] पराधीन देश की विसंगतियों से लोगों को उद्धार करने में नवजागरण ने महत्वपूर्ण कदम उठाया था। भारत के इतिहास में नवजागरणकालीन संस्थाओं और उनके प्रवर्तकों को श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। उन्होंने अपने संस्कृति कर्म से भारतीयों को ऊपर उठाने की कोशिश की। साथ ही औपनिवेशिक शासन की निर्मम शोषण नीति के विरुद्ध आवाज़ उठाने केलिए काबिल भी बनाया।

---

[1] जुगलबंदी : पृ-122

[2] शंभुनाथ : ईश्वर और धर्मनिरपेक्ष संस्कृति , पृ-106

ब्रह्मसमाज

19 वीं शताब्दी के मध्य में इंग्लैंड में "ब्रिटिश सुधार आन्दोलन' चला। उस आन्दोलन की सफलता का प्रभाव राजा राम मोहन रॉय पर भी पडा। वे इंग्लैंड से एक नवीन विश्वास लेकर भारत आए थे। भारत में 'ब्रह्म समाज' की स्थापना का मूल कारण भी ब्रिटिश सुधार आन्दोलन की सफलता से प्राप्त प्रेरणा थी। 20 अगस्त सन् 1828 ई वीं को उन्होंने ब्रह्मसमाज की स्थापना की। दीनबन्धु सी.एफ.एन्ड्रूस ने ब्रह्मसमाजी आन्दोलन को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की नींव कहा है। ब्रह्मसमाज के तहत सामाजिक कुरीतियाँ-मूर्तिपूजा, बहुविवाह प्रथा, सती प्रथा, तीर्थ-व्रतों का ढकोसला आदि के विरुद्ध निरंतर सामाजिक संघर्ष की घोषणा कर दी।

ब्रिटिश शासन से संपर्क एवं टकराहट के परिणामस्वरूप भारतीय मानस ज्ञान-विज्ञान, आधुनिक राष्ट्रीय जीवन और लोकतंत्र की नई धारणाओं से जुडा। इतना ही नहीं नई विद्या की रोशनी में भारतीय बुद्धिजीवियों ने अपनी परंपराओं के विवेकवादी पुनर्निर्माण का दायित्व भी महसूस किया। उनका ब्रह्म समाज वेदांत और ईसाई गुणों का मिश्रण था। राम मोहन रॉय आधुनिक संस्कारों वाले पहले व्यक्ति थे जिनका ध्यान वैदिक साहित्य की ओर गया, खासकर वेदांत की ओर। उन्होंने प्राचीन गौरव और आधुनिक उपलब्धियों को जोडा। उनके ब्रह्मसमाज का दर्वाज़ा सभी वर्णों, जातियों, धर्मों और देशों केलिए खुला था। इसमें किसी धर्म की निंदा, उपहास या अवहेलना वर्जित थी। वे 'एक ईश्वर' को मानते थे और धार्मिक सुधारों के पक्ष में थे। उनको व्यापक जन समर्थन भी मिला।

ब्रह्मसमाज का एक घोषित उद्देश्य था विभिन्न धर्मों में संगति स्थापित करना। इसके संबन्ध में दिनकर का कहना है - "यूरोप के संपर्क से जैसे भारत में नई मानवता का जन्म हो रह था, वैसे ही, हिन्दू धर्म भी नया नया रूप ले रहा था। ब्रह्मसमाज इसी अभिनव हिन्दुत्व का एक रूप था। इसने मूर्तिपूजा का

बहिष्कार किया, अवतारों को नहीं माना और लोगों का ध्यान उस निराकार, निर्विकार, एक ब्रह्म की ओर आकृष्ट किया, जिसका निरूपण वेदांत में हुआ है। किंतु ब्रह्मसमाज की इससे भी बडी विशेषता यह थी कि वह सभी धर्मों के प्रति सहानुभूतिशील और उदार था।"[1] देश की जनता में एकता स्थापित करने तथा साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध एक संगठित प्रतिरोध के रूपायन में इस नवोत्थान कार्यक्रम ने आवश्यक मंच तैयार किया। यह एक प्रकार का सांस्कृतिक प्रतिरोध था। महर्षि देवानंद और केशवचन्द्र सेन भी ब्रह्मसमाज के सजीव प्रवर्तक थे।

आर्यसमाज

आर्यसमाज की स्थापना स्वामि दयानंद सरस्वति द्वारा 10 अप्रैल सन् 1875 ई वीं को हुई। सामाजिक असर वाले जो गिने चुने व्यक्तित्वों में स्वामि दयानंद सरस्वति का महत्वपूर्ण स्थान है। 21 साल की अपनी अवस्था में घर छोडने के बाद उन्होंने भारत भ्रमण और विद्याध्ययन आरंभ किया। उन्होंने भ्रमण और ज्ञानार्जन से जान लिया कि धर्म के संसार में चारों तरफ इतने अंधविश्वास, कूपमण्डूकता, नैतिक ह्रास और कुसंस्कार जड जमाए बैठे हैं कि यदि उनके मन में हिन्दुओं के प्रति थोडी बहुत भी वैज्ञानिक सचेतनता नहीं आई, तो ढोंग का साम्राज्य एक दिन मनुष्य का हर सुन्दर स्वप्न मिटा देगा। आर्यसमाज ने ईसाइयत और इस्लाम के आक्रमणों से हिन्दुत्व की रक्षा करने में बहुत सारी मुसीबतों को झेला है। उत्तर भारत के हिन्दू समाज को जगाकर उन्हें प्रगतिशील करने का सारा श्रेय आर्यसमाज को है।

धार्मिक अंधविश्वासों के गर्त में पडी और पराधीनता की गिरफ्त में पडी देशी जनता के दु:ख-दर्द को मिटाकर उन्हें ऊपर उठाना दयानंद सरस्वति जैसे समाजसेवियों का कर्तव्य था। "उनको लगा कि हिन्दू दिमाग को तार्किक बनाना बहुत ज़रूरी है। उन्हें पुराणों से ही नहीं, पश्चिमी सांस्कृतिक साम्राज्यवाद से भी

[1] दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृ-461-62

लोहा लेना था । इसलिए वैदिक तर्क और दर्शन के हथियारों को रगड-धोकर वह धर्म के रण में कूद पडे । यह निम्न धार्मिक रूढियों के खिलाफ उच्च धार्मिक परंपरा की ललकार थी, जो एक अलग ज़मीन से सामाजिक क्रंति की ही अवाज़ थी ।"[1] 19 वीं सदी के धार्मिक बहसों में सांप्रदायिक उत्तेजना का कोई स्थान नहीं था । नवजागरण के विभिन्न शाखाओं ने अपने-अपने वैचारिक क्षेत्र से रूढीवादी पाखंडी धर्माचार्यों के धार्मिक उपनिवेशवाद से संघर्ष किया था । यह सही अर्थों में भारत के सांस्कृतिक जागरण का सशक्त कदम था । राष्ट्रीय मुक्ति आंन्दोलन में स्वदेशी, स्वभाषा, स्वराष्ट्र आदि की गूँज को प्रचलित करने का श्रेय इसी समाज को जाता है । सुधारवादी आन्दोलनों का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रवाद पर आश्रित था इसलिए आर्यसमाज की कोशिशों की अपनी ऐतिहासिक भूमिका है । वह संपूर्ण राष्ट्रीय आन्दोलन में धुलमिल गया है ।

थियोसोफिकल सोसाइटी

19 वीं शदाब्दी के प्रारंभिक दौर में लगभग पच्चीस-तीस वर्षों के बाद विभिन्न सामाजिक सुधार कार्यक्रमों का आविर्भाव देश के कोने-कोने में हुआ । उदार चित्तवाले विदेशी भी भारतीय समाज को अपनी दुर्गति से ऊपर उठाकर नवीन चेतना देना चाहते थे । इसका सफल परिणाम था "थियोसोफिकल सोसाइटी' की स्थापना । भारत में इसकी नींव डाली श्रीमति एनी बसेंट ने । ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज की तरह इस संस्था ने भी भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की आत्मा को जगाया । हिन्दू आदर्शों के प्रति विश्वास और प्राचीन गौरव के प्रति लगाव इसकी विशेषता थी । इस संस्था ने हीनता बोध से पीडित भारतीय समाज को बडी राहत पहूँचाई । श्रीमति बसेंट ने 'आत्मसम्मान' और 'आत्मनिर्भरता' के भावों का खूब प्रचार देशवासियों पर किया ।

थियोसोफि शब्द दो यूनानी शब्दों के योग से बना है । यूननी में 'थियोस' (Theos) ईश्वर को कहते हैं और 'सोफिया' (Sophia) का अर्थ ज्ञान है । अतएव

[1] शंभुनाथ : ईश्वर और धर्मनिरपेक्ष संस्कृति, पृ-118

थियोसोफि का अर्थ ब्रह्मविद्या बताया जाता है । इसलिए थियोसोफिकल सोसाइटी को 'ब्रह्मविद्या समाज' के नाम से भी जाना जाता है । इसकी स्थापना पहले न्यूयोर्क में 7 सितंबर 1875 ई वीं को हुई । कर्नल आलकॉट के देहांत के बाद श्रीमति एनी बसेंट ने थियोसोफिकल सोसाइटी को आगे बढाया । बसेंट एक भारत भक्त अंग्रेज़ वनिता थी । उन्होंने भारतीयों के पुनरुद्धान केलिए यहाँ पर सोसाइटी की नींव डाली । भारत की राजनीतिक चेतना को जगाने की दिशा में भी उन्होंने बडा कार्य किया था । "सन् 1914 ई वीं में श्रीमति बसेंट भारत की राजनीति में भाग लेने लगी । बाल गंगाधरब तिलक के द्वारा चलाए हुए 'होमरूल' आन्दोलन का पक्ष उन्होंने बडे ही ज़ोर से लिया ।"[1] इस प्रकार हम देख सकते हैं कि भारत के नवजागरण में श्रीमति एनी बसेंट का योगदान बहुत ही उल्लेखनीय है ।

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में इन्हीं सुधारवादी आन्दोलनों का प्रभाव अवश्य पडा है । उपन्यसों के कई पात्रों के जीवन में किसी न किसी रूप में इन आन्दोलनों की स्पष्ट झलक हम देख सकते हैं । भगवतीचरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' , नागार्जुन के 'बाबा बटेश्वरनाथ' , रेनु के 'मैला अँचल' आदि उपन्यसों में नवजागरण कालीन सुधार आन्दोलनों का जिक्र किया गया है । औपनिवेशिक दासता से भारत को मुक्त करने के संग्राम केलिए शक्ति प्रदान करनेवाले इन सुधारवादी आन्दोलनों को अनदेखा करना उचित नहीं है । पराधीनता के शोषण भरी वातावरण में सामाजिक और धार्मिक स्तर पर द्विविधा ग्रस्त ज़िन्दगी जी रही भारतीय जनता केलिए ये समाजोद्धारक और उनकी संस्थाएँ देवतुल्य थे । क्योंकि इन्होंने ही यहाँ के जर्जर समाज को आत्मनिर्भर बनाने तथा समाज को आगे बढाने का महत्वपूर्ण कदम उठाया था । धर्मों के बीच के आपसी वैमनस्य के कारण उपनिवेशवादियों के खिलाफ के सक्रिय प्रतिरोध में एकता का अभाव था । सुधारवादी संस्थओं की नई कार्य कलापों ने समाज में नई चेतना लाने का काम किया । इस दृष्टि से देखें तो औपनिवेशिक शक्तियों के विरुद्ध हुए साँस्कृतिक

[1] दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृ-485

प्रतिरोध में राजारम मोहन रॉय, स्वामि दयानंद सरस्वति, एनी बसेंट आदियों की भूमिका है।

पाश्चात्य शिक्षा एवं भाषा नीति

भारत के उपनिवेशीकरण में अंग्रेज़ी भाषा एवं शिक्षा की भूमिका उल्लेखनीय है। इससे भारत का सांस्कृतिक उपनिवेशीकरण हुआ। इसने देश में एक नई मनोभाव एवं संस्कृति का जनम दिया। हर देश की संस्कृति के मूलाधारों में भाषा का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। उपनिवेशवादी अंग्रेज़ ने अपनी सत्ता यहाँ कायम करने के बाद उसको बनाए रखने केलिए भारतीयों को उच्च शिक्षा देने का निर्णय लिया। इसके पीछे उनके स्वार्थ के अलावा और कुछ नहीं था। क्योंकि अपना शासन अच्छे ढंग से चलाने केलिए उन्हें कुछ अफसरों की ज़रूरत थी। 4 मई 1800 ई वीं को लार्ड वेल्लस्ली ने कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज की नींव रखी थी। यहां फारसी, अरबी, उर्दू, बंग्ला जैसी कुछ भाषाओं का अध्ययन भी चलता था। कॉलेज खोलने के पीछे दो उद्देश्य थे। एक तो भारतीय सिविल सर्विस और मिलिट्रि सर्विस में विलायत से आए अफसरों को यहाँ की भाषा की काम चलाऊ जानकारी दी जए। दूसरा उद्देश्य यह था कि इन भाषाओं के माध्यम से ईसाई धर्म को प्रचारित करने का काम भी लिया जाय।

भारत में अंग्रेज़ी भाषानीति एवं शिक्षा का मुख्य सूत्रधार मेकले को माना जा सकता है। उन्होंने अपने 'मैकाले मिनट्स-1835' के ज़रिए अंग्रेज़ी शिक्षा की आवश्यकता का प्रस्ताव रखा। लोर्ड विलियम बेंटिक ने 7 मार्च 1835 को एक आदेश ज़ारी किया। इसका उद्देश्य भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा और अंग्रेज़ी संस्कृति को प्रचारित करना था। 1837 में फारसी के स्थान में अंग्रेज़ी सरकारी भाषा स्वीकृत हुई। जिस अनुपात में अंग्रेज़ी भाषा का विकास हुआ, उसी अनुपात में देशी भाषाओं की उपेक्षा और अवहेलना हुई। अंग्रेज़ी के माध्यम बन जाने से हिन्दू-मुस्लिम दोनों समुदायों की निकटता और सामरस्य का एक बडा सूत्र टूट गया। भाषाई और सांस्कृतिक स्तर पर अलगाव पैदा किया। अंग्रेज़ी को वह

कनूनी रक्षा दी गई जिसके सहारे उसने जल्द ही जल्द अपना साम्राज्यवादी जल फैलाया । अंग्रेज़ी शिक्षा से भारत को अच्छे गुण भी मिला है ।"इस नवीन शिक्षानीति के फलस्वरूप ही भारत आधुनिकता के पथ पर अग्रसर हुअ । इससे पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की जानकारी भारतीयों को हुई ।"[1]

पाश्चात्य शिक्षा ने भारत पर अच्छे प्रभाव से ज़्यादा बुरा प्रभाव डाला था । इससे हमारी सभ्यता और संस्कृति पर उपनिवेशी हितों को थोप दिया । उनके पीछे एक प्रकार की साजिश थी जो अपनी साम्राज्यवादे सत्ता को सुचारू रूप से चलाने केलिए आवश्यक थी । "अंग्रेज़ी के पक्ष में अंग्रेज़ भी थे और इस देश के 'भद्र लोक' भी । पर दोनों उद्देश्य भिन्न-भिन्न थे – एक दूसरे के विरोधी । मैकाले को औपनिवेशिक व्यवस्था केलिए क्लार्कों की ज़रूरत थी, जनता की मानसिकता को उपनिवेश के पक्ष में ढालना था । 'भद्रलोक' को नए ज्ञान-विज्ञान, द्वारा जनता को बौद्धिक आधार पर अपनी वर्तमान अवस्था के प्रति गागरूक बनाना था ।"[2] अंग्रेज़ी शिक्षा का मध्यम होने के कारण देश की सांस्कृतिक और राजनीतिक नक्शा दूसरा हो गया । अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त मध्यवर्ग सामान्य जनता से कटकर अलग हो गया । इस प्रकार देशी आदमियों के बीच खाई उत्पन्न हो गयी ।

नागार्जुन के 'बाबा बटेश्वरनाथ' में अंग्रेज़ी शिक्षा की बात को खूबी ढंग से अभिव्यक्त किया है । बाबा कहते हैं-"पहले ज़माने में ज्ञान-विज्ञान और पढाई-लिखाई बडे जात वालों की वपौती थी । अब पाढशालाओं और स्कूलों के दर्वाज़े सभी जातियों के बच्चों केलिए खुल गए हैं, मगर ऊँची जात वालों का आपसी पक्षपात और 'शुभ-लाभ' के लिए उनकी आपाधापी जब तक मौजूद रहेंगे, तब तक मानव समाज की सामूहिक प्रगति नहीं होगी ।"[3] इससे पता चलता है कि अंग्रेज़ी शिक्षा का कौन सा प्रभाव भारतीय संस्कृति एवं समाज पर पडा था ।

---

[1] मनिक लाल गुप्त : भारतीय संस्कृति का इतिहास, प्र-348

[2] बच्चन सिंह : हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास , पृ -280

[3] बाबा बटेश्वरनाथ : पृ-81

स्वदेशी एवं बहिष्कार रूपी सांस्कृतिक प्रतिरोध

अंग्रेज़ यहाँ व्यापारी के रूप में आया, बाद में यहाँ के शासक बने । जब शासन का बागडोर उनके हाथों में आया तो वे अपनी मनमानी करने लगे । यहाँ से कच्चे मालों को लेकर पका माल यहाँ बेचने लगा और देशी उत्पादों पर कर लाद कर उन्हें नष्ट कर दिया गया । इससे देशी लोगों की ज़िन्दगी बदत्तर होने लगी । इसी के अलावा अंग्रेज़ों के आवश्यकतानुसार नई-नई खेती करने केलिए देशी जनता को मजबूर किया गया । देश में आर्थिक तंगी महसूस होने लगी । लोग जीने केलिए कडी से कडी मेहनत करने में लगे रहे । अपनी जी तोड मेहनत के होते हुए भी अभाव एवं भुखमरी की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आए थे । इसकी वजह से एक औपनिवेशिक अर्थ व्यवस्था के तहत किसान, मज़दूर, ज़मीन्दार, व्यापारी आदि भारतीय समाज के सभी तबके के लोग पिसता और जगडता रहा । इससे यहाँ के सामाजिक जीवन में नई परिस्थितियाँ आने लगी । ऐसी भीषण स्थिति में जनता जागृत हुई, उनमें राष्ट्रीय भावना सुलग उठी । अपनी संस्कृति को हानी पहूँचाने वाली विदेशी नीति के विरुद्ध उनके मन में विद्रोह पैदा हुआ । कनूनी एवं सैनिक बल के तहत शोषण कर रहे अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह अभिव्यक्त करने केलिए निहत्थी भारतीय जनता के पास स्वदेशी एवं बहिष्कार आन्दोलन जैसे औजारों के अलावा और कुछ नहीं था । यह आन्दोलन उपनिवेशी साँस्कृतिक शोषण के विरुद्ध का एक सशक्त प्रतिरोध था ।

साम्राज्यवादियों ने अपनी प्रशासनिक सुविधा केलिए तथा राष्ट्रीय एकता को तोडने केलिए बंगाल का विभाजन किया। इसमें उनकी 'फूट डालो और राज्य करो' वाली नीति काम करती थी। राष्ट्रीयता के प्रहरियों ने इसे अपने राष्ट्रीयता बोध के विरुद्ध की चुनौत्ति के रूप में स्वीकार किया। यह विभाजन बंगाल की जनता को प्रांतीय एवं धार्मिक स्तर पर बाँटने की बोधपूर्वक कोशिश के रूप में उन्हें लगा। इसके विरुद्ध जत्था और सम्मेलन चलाया गया। लेकिन इन सब प्रयत्नों से जनता के विद्रोह को पूर्ण रूप में जगा नहीं सका। इसकेलिए एक सशक्त एवं महान कार्यक्रम के रूप में स्वदेशी एवं बहिष्कार आन्दोलन चलाया। इसके पीछे हमारी सांस्कृतिक पुनर्जागरण भी विद्यमान है। "लार्ड कर्जन द्वारा किए गए बंगाल विभाजन के विरोध में स्वदेशी आन्दोलन ने एक नए राजनीतिक युग की स्थापना की। हमारे स्वातंत्र्य संघर्ष के इतिहास में आगामी संघर्ष केलिए उसने नींव के पत्थर का कार्य किया। महात्मा गांधी के विदेशी वस्त्र बहिष्कार से पूर्व बंगाल की धरती में यह आन्दोलन अपना सिक्का जमा चुका था।"[1] सांस्कृतिक दृष्टि से स्वदेशी का यह आन्दोलन पास्चात्य संस्कृति का प्रभाव तथा आर्थिक शोषण के विरुद्ध का सशक्त आन्दोलन था। इस विरोध प्रदर्शन में जनता ने खूब भाग लिया। अपनी देशीय संस्कृति को बरकरार रखने की तीव्र इच्छा इसके पीछे थी।

स्वदेशी आन्दोलन का सभी कार्यक्रम 'स्वाश्रय' पर आधारित था। इसका मतलब था अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अपने ही देश में बनाई वस्तुओं के

[1] डॉ. देवीदत्त तिवारी : हिन्दी उपन्यास स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध आयाम, पृ-189

इस्तेमाल से करना । और इससे अपने राष्ट्रीय गौरव, मान एवं आत्मविश्वास को मज़बूत बनाना । आर्थिक क्षेत्र में इसका उद्देश्य स्वदेशी उद्योगों को बढावा देने के साथ अन्य घरेलू धंधों को भी ऊपर उठाना था । लेकिन सांस्कृतिक क्षेत्र में इसका उद्देश्य अपनी महान संस्कृति की रक्षा करना तथा पाश्चात्य उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रति अपना विद्रोह अभिव्यक्त करना था । इस आन्दोलन के तहत कई कपडा मिलों, साबून, फैक्टरी, खादी उद्योग, राष्ट्रीय बैंकें आदि शुरू हुआ । कई महान व्यक्तियों ने स्वदेशी स्टोर भी खोले । सन् 1908 में औपचारिक रूप में ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार तथा भारतीयों द्वारा स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग करने का प्रस्ताव पारित किया था ।

देशी लोगों द्वारा विदेशी वस्तुओं के उपयोग से देश की आर्थिक स्थिति निरंतर बिगडती जा रही थी । इसलिए भारत की अर्थव्यवस्था को सुधारने और विदेशी संस्कृतियों का असर भारत भूमि पर न पडने केलिए भारतीयों द्वारा भारत में निर्मित वस्तुओं के उपयोग करने पर बल देते थे । स्वदेशी आन्दोलन को प्रश्रय देने में कइयों की भूमिका महत्वपूर्ण हैं । इसके एक प्रमुख अंग थे विद्यार्थी समाज । उन्होंने स्वदेशी के आशय एवं उद्देश्य को आत्मसात करके बडे जोश के साथ उसमें भाग लिया और अनुष्ठान किया । उन्हों ने पूरे देश में इसका प्रचार किया और विदेशी वस्त्र बेचने वाली दूकानों में पिकेटिंग और धरना चलाने का नेतृत्व भी किया था । इस आन्दोलन में नारियों की भूमिका भी महत्वपूर्ण है । सभी देशवासी अपनी संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति चिंतित थे । इसलिए इस आन्दोलन में सबका समर्थन मिला ।

भारतीय जनता के उपनिवेश प्रतिरोध रूपी स्वदेशी एवं बहिष्कार आन्दोलन को अंग्रेज़ों ने अपनी दमन नीति से कुचल डालने का प्रयास किया । लेकिन यह आन्दोलन दबाने से स्वयं दबने वाला नहीं था । "विद्यार्थियों को दबाने केलिए सरकार ने खूब कोशिश किया । उनके ऊपर कई कानूनी कार्रवाइयाँ चलाई गयीं । वे स्कूल एवं कालेजों से निकला गये । कइयों का अरेस्ट हुआ और पुलिस की लाठियों का मार सहना पडा ।फिर भी वे अपने निर्णयों से पीछे नहीं हटे ।"[1] भारत की अर्थ व्यवस्था को सुरक्षित रखने तथा संकृति को बचाके रखने के उपल्क्ष्य में किए इस उपनिवेश प्रतिरोधी आन्दोलन को पूरे देशवासियों का समर्थन मिला । इससे देशी उद्योग धंधों में चेतना आईं । लोगों की आर्थिक स्थिति में थोडी सी प्रगति भी हुई । वैसे भारतवासी अपने देश की गरिमा को ऊपर उठाया ।

पराधीन भारत में अंग्रेज़ों की भेदनीति एवं दमन नीति के विरुद्ध उभरा सशक्त आन्दोलन है 'स्वदेशी आन्दोलन' । भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रमुख संस्था राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वदेशी को अपना नारा बनाया । उसने देश भर में व्यापक जन जागरण पैदा करने की कोशिश की । वह पूर्णत: सफल निकला । इसका सफल परिणाम था पूरे भारत में विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार । इससे भारत की जनता ने साम्राज्यवादी ब्रिटेन की शोषण नीति के खिलाफ अपनी आवाज़ दर्ज की । 'भूले बिसरे चित्र' में वर्मा जी ने स्वदेशी आन्दोलन का पूरा व्योरा प्रस्तुत किया है - "आन्दोलन चल रहा था । बडी तेज़ी के साथ एक अजीब

[1] बिपन चन्द्र : आधुनिक भारत, पृ-275

ढंग से। हडतालें हो रही थी ; खादी और स्वदेशी का प्रचार हो रहा था ; विदेशी माल का बहिष्कार किया जा रहा था। जुलूस निकालते थे और खुल्लम-खुल्ला सरकार की निन्दा की जाती थी ; अंग्रेज़ों को गालियाँ दी जाती थीं। जौनपुर में इस आन्दोलन को दबाने की जिम्मेदारी कलक्टर ने गंगाप्रसाद को दे दी थी और वह तत्परता के साथ निर्दयतापूर्वक अपनी जिम्मेदारी निभा रहा थ। जौनपुर के जेल भर गयी थी ; लोगों पर लंबे जुरमाने किए गए थे। जौनपुर के अधिकाँश कार्यकर्ता जेलों में पडे थे।"[1] इस प्रकार देशी जनता ने अपने सांस्कृतिक प्रतिरोध के रूप में स्वदेशी का आन्दोलन चलाया।

उपनिवेशवादियों की कूटनीति के प्रति उठे प्रतिरोध का यह स्वर एक महान आन्दोलन के रूप में व्याप्त होने लगा। जनता मिलकर औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध काम करने लगी। अंग्रेज़ इसको समय-समय पर दबाने की कोशिश करते रहे। पर लोग इस से विचलित नहीं होनेवाले थे। वे जुलूस निकालते रहे और विदेशी वस्त्रों की होली जलाते रहे। उपन्यास में वर्मा जी ने इसका मार्मिक चित्रण किया है , "बीच चौराहे पर विदेशी वस्त्रों का ढेर लगाया गया। कपडों के साथ लकडी का कुछ सामान लोग इधर उधर से बटौर लाए थे ताकि आग अच्छी तरह जल सके।फिर लोगों ने जोश भरे हुए व्याख्यान दिए। व्याख्यानों के बाद इन विदेशी कपडों के ढेर में आग लगा दी गयी। आग लगाते ही ऊँची-सी लपेटें निकलीं, क्योंकि कुछ कपडों को मिट्टी के तेल में डुबो दिया गया था। उस लपट के

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ-358

निकलते ही लोगों ने 'महात्मा गांधी की जय' और 'भारत मातकी जय' के नारे लगाए।"[1] ऐसे स्वदेशी का यह प्रतिरोधी आन्दोलन आगे बढता रहा।

विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का यह आन्दोलन केवल कपडों को जलाने तक सीमित नहीं रहा। आन्दोलनकारियों ने विदेशी कपडे बेचनेवाली दूकानों के सामने धरणा चलाने का आयोजन किया। क्योंकि ब्रिटेन जैसे साम्राज्यवादी देश हिन्दुस्तान से व्यापार करके तथा हिन्दुस्तान में अपना माल बेचकर भारत का आर्थिक शोषण ही नहीं कर रहा था बल्कि देश की सभ्यता और संस्कृति की जडों को उखाडने की कोशिश कर रहे थे। इस शोषण से बचने केलिए, देश की संपत्ति को देश में ही सुरक्षित रखने केलिए, देशी कारखानों की उन्नति केलिए, अपनी संस्कृति की रक्षा केलिए धरणा जैसे प्रतिरोधों के ज़रिए आन्दोलनकारियों ने स्वदेशी के माध्यम से स्वदेश प्रेम का प्रचार-प्रसार किया।

नारी शोषण और जागरण

औपनिवेशिक भारत के सांस्कृतिक संकट और प्रतिरोध की चर्चा करते समय नारी शोषण और नारी जागरनण पर भी विचार-विमर्श करना बहुत ही आवश्यक है। क्योंकि उपनिवेशकाल और बाद की ज्वलंत सच्चाइयों में एक है नारी शोषण। पहले नारी को समाज में सम्मान मिलता था। "प्राचीन आर्यों ने नारी को भोग का नहीं जीवन-पथ की यात्रा का, पतन का नहीं बल्कि विकास का साधन माना। नारी को शक्ति और प्रेरणा का स्रोत समझा। नारी को समस्त

---

[1] भूले बिसरे चित्र : पृ-370

कोमल,मधुर और देवी भावनाओं की सजीव प्रतिमा के रूप में चित्रित किया, जो मनुष्यता की शोभा है ।"[1] लेकिन परिस्थितिवश सम्मान की इस स्थिति में बदलाव आया, इससे नारी 'भोग्या' बनने लगी ।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' के आधार पर नारी की विभिन्न रूपों में पूजा करते आ रहे भारतीयों में पाश्चात्य संस्कृतियों के प्रभाव से मूल्यहीनता उत्पन्न होने लगी । इसकी वजह से समाज में नारी की स्थिति अत्यंत दुविधाग्रस्त होने लगी । विभिन्न प्रकार के शोषणों के ज़रिए उसको शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर तबाह कर दिया । 20 वीं शती में आकर नारी राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में पूर्णत: उपेक्षित तथा पीडित होने लगी । लेकिन सदियों से उपेक्षित, पीडित तथा अभावग्रस्त जीवन जीने केलिए मजबूर नारी में शिक्षा एवं नवजागरण के फलस्वरूप नई चेतना आई । इस चेतना ने उसे अन्याय एवं शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाने की शक्ति दी । आधुनिक हिंदी उपन्यास ने नारी के इस शोषण और जागरण की कथा को महत्वपूर्ण ढंग से चित्रित किया है ।

जब तक भारतीय संस्कृति अपने स्वरूप को बनाए रखती है तब तक नारी भी बलवती बनी रहेगी । लेकिन अनेक विदेशी शक्तियों के आक्रमण से भारतीय संस्कृति का विघटन हो गया जिससे देश की संस्कृति का पतन हुआ । सांस्कृतिक पतन का मतलब है राष्ट्र का पतन । राष्ट्र के पतन के साथ समस्त का अंग-प्रत्यंग

[1] डॉ. संजय गार्ग : स्त्रीविमर्श का कालजयी इतिहास. पृ-180

पतित हो जाता है , वह चाहे भाषा हो, जीवन शैली हो, वेश-भूषा हो या जीवन मूल्य हो । इस प्रकार भारतीयता के पतन के साथ-साथ भारतीय नारी की हैसियत में भी पतन आया ।

अंग्रेज़ों की साजिशों के फलस्वरूप भारत गुलामी के ज़जीरों में जकड गया । इससे सभी प्रकार से जनता भी गुलामी की शिकार बन गयी । सबसे ज्यादा नुकसान भुगतना पडा भारतीय नारी को । जो दैवी भावनाओं से भोग की वस्तु बन गई । भारतीय नारी की आज की जो स्थिति है, वह भारत की परतंत्रता और अध:पतन का ही परिणाम है । पराधीनता के गर्त में डूबे भारतीयों में नवजागरण द्वरा जो चेतना लायी गयी उसने न केवल पुरुषों में ऊर्जा प्रदान की बल्कि भारतीय नारियों में भी प्रभाव डाला ।

नारी शोषण के विभिन्न आयाम

क. धर्म के नाम पर नारी शोषण

किसी भी समाज को बदलने केलिए या किसी भी देश की व्यवस्था में बदलाव या सुधार लाने केलिए औरतों की भूमिका प्रमुख है । पर प्राय: उनपर आर्दशों व धार्मिक नियमों का बोझ लादकर मर्द उन्हें दबाके रखना चाहता है । स्त्री के शोषण में धर्म और राजनीति का गलत संबन्ध है । पुरुष-प्रधान समाज में अपने वर्चस्व को कायम रखने केलिए ये दोनों स्त्री को अपने अधीन में कर देते हैं । धर्म

चाहे इस्लाम हो, हिन्दू हो, ईसाई हो या सिख, नारी को अपने चंगुल में फँसाकर रखता है। उपनिवेश काल में हिन्दु-मुस्लिम भेद-भाव ने नारी को भी शोषण का शिकार बनाया। यशपाल का उपन्यास 'झूठा-सच' का नारी पात्र तारा इसी समस्या को झेलनेवाली है। धार्मिक रीति-रिवाज़, पुरुष का अत्याचार तथा विभाजन के समय के सांप्रदायिक अत्याचार को सहते हुए वह जिन्दगी के हर मोड को कठिनाई से पार करती है। पारंपरिक रूढियों की श्रृंखलाओं, पुरातन क्रूर नैतिक धारणाओं तथा पुरुष प्रधान समाज से लादे गए अंधविश्वासों को तोड देने का प्रयास वह करती है। अंत में वह सफल बनती है।

सांप्रदायिक उन्माद की त्रासदी सबसे अधिक औरतों को झेलनी पडती है। धर्म के सहारे मनुष्य सभ्यता की हर मंजिल को पार करते हुए विकास के पथ पर अग्रसर हुआ था। लेकिन किसी ने भी नहीं सोचा होगा कि लोग उसी धर्म के नाम पर देश की धरती पर अपरिष्कृत मानव की बर्बरता एवं पशुता की ओर मुडेंगे और उनसे कुकृत्य होने लगेंगे। धर्म को आधार बनाकर चलनेवाली सांप्रदायिक राजनीति बहशीपन के ऐसे माहौल को जन्म देती है जिसमें औरतों की नीलामी, वह भी उन्हें पूरी तरह निर्वस्त्र करके, करने में शर्म की बात नहीं समझी जाती। उनके सामने औरत सिर्फ बिकाऊ चीज़ मात्र है। यह घटना हमारे सांस्कृतिक पतन को सूचित करता है।

'झूठा-सच' उपन्यास में विभाजन के दौरान हुए सांप्रदायिक दंगों के शिकार बनी नारियों का चित्रण मिलता है, जिन्हें नीलाम करने केलिए लायी गयी थी। हज़ारों आदमियों की भीड़ इकट्ठा हो जाती है, कहकहे लगते हैं और ग्राहकें को माल रूपी नारियों के नग्न शरीर के एक-एक अंग को उभार कर दिखाया जाता है। लगता है हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच पशुता की होड लग गई हो। दोनों ओर से वीरता का जो प्रदर्शन चलता है, उसका शिकार बननी पडती है औरतों को। जालन्धर में नीलामी का एक दृश्य दिखाया है, जहाँ भीड के बीचोंबीच एक आदमी चोटी से पकड-पकड कर निर्वस्त्र लडकियों को नीलाम कर रहा था। सब लडकियाँ मुसलमानी थीं। यह दृश्य देखकर एक सज्जन उसके खिलाफ आवाज़ उठाता है। वह कहता है-" कुछ तो शर्म करो। आगा-पीछा सोचो। तुम लोग इनकी इस तरह बेइज्ज़ती करोगे तो कोई भलमानस इन्हें घर में कैसे बसा सकेगा ? इससे तो अच्छा है, इनकी गर्दन झटककर परे फेंक दो। तुम मुसलमानों से किस बात में अच्छे हो ? उन्होंने क्या बुरा किया जो तुम नहीं कर रहे हो।"[1] यह आवाज़ उपनिवेशी शासन के दौर में हुए सांप्रदायिक उन्माद और कुसंस्कुति के खिलाफ की आवाज़ है। तारा को डाली गयी हवेली में भी कुछ हिन्दू स्त्रियाँ थीं जिन्हें गफूर नामक कसाई-नीलामी करने केलिए बलपूर्वक पकड लाया था। जिनके पास पहनने केलिए आवश्यक वस्त्र भी नहीं था।

---

[1] यशपाल : झूठासच , पृ-197

तारा 'झूठा सच' उपन्यास की सर्वाधिक सशक्त पात्र है। उसके माध्यम से नारी शोषण और नारी जागरण की कई परतें खुलती हैं। तारा इस उपन्यास के उस नारी विमर्श का केन्द्र बिन्दु है जो अपने बेमेल विवाह से शुरू होकर विभाजन के दंगों में बलात्कार के दंश से पीडित होती है और अंत में शोषण की परिस्थिति के विरुद्ध के संघर्ष का जीवन व्यतीत भी करती है। सांप्रदायिक दंगे के समय में स्त्रियाँ उत्पीडन की सर्वाधिक शिकार बनी थीं। इस दौर में नारियों द्वारा झेली गयी यातना को व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान कर यशपाल स्त्री मुक्ति का सवाल उठाते हैं। यह सच्चे अर्थों में एक प्रतिबद्ध रचनाकार का संस्कृति कर्म है।

नारी शोषण के करुण दृश्य को हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर यशपाल जी ने उपनिवेशी शोषण तंत्र की देख-रेख में चल रहे अत्याचारों का खुलासा किया है। नारी के प्रति पुरुषों की भोग्या की दृष्टि ने उनके मन से इंसानियत को उखाड फेंका। इसलिए वे नारी शोषण केलिए उतावली हो जाते हैं। अत्याचार की शिकार बनने वाली स्त्री के कारुणिक दृश्य यशपाल यों चित्रित करता है- "लडकी के आँसुओं से भीगे, पलकें मूँदे चेहरे पर से उसके हाथ को भी खींच कर हटा दिया। लडकी के सूर्य के किरणों से अछूते शरीर के भाग छिले हुए संतरे की तरह, चेहरे की अपेक्षा बहुत गोरे और कोमल थे। भीड के बीच धरती पर कुछ और भी लडकियाँ चेहरे बाहों में छिपाए, घुटनों पर सिर दबाए बैठी थीं। उनके कपडे भी धरती पर पडे थे।"[1] जिस देश में नारी को देवि के रूपा में पूजा करती आ रही

[1] झूठा सच – पृ- 419

थी वह देश आज उसको दबाके, सताते और विभिन्न प्रकार के शोषणों से पीडित करता रहता है।

नारी मात्र पीडित एवं शोषित रहनी की वस्तु नहीं है। वक्त आने पर वह प्रतिशोध भी करती है। नई शिक्षा एवं विभिन्न प्रकार के जागरणों ने उसे भी आन्दोलित किया तथा उसमें चेतना लायी। अपनी बहत्तर जीवन की चाह ने उसे पुरुष वर्चस्ववादी समाज के शोषणों से विद्रोह करने केलिए ला खडा कर दी। ऐसे वह अपना व्यवस्था विरोधी स्वर प्रकट करने लगी। स्त्री होने के कारण हिंसा और यौन शोषण की दुहरी शिकार होने के बावजूद 'झूठा सच' की स्त्रियाँ प्रतिरोध को भी स्वर प्रदान करती है। यद्यपि यह प्रतिरोध कभी प्रश्वन्न है तो कभी मुखर वह अपनी आवाज़ को दर्ज करती है। सोमराज के साथ अपने बेमेल विवाह के प्रसंग को लेकर बडे भाई जयदेव पुरी की आक्रामकता को तारा जब बर्दाश्त नहीं कर पाती तो "उसने बहुत ज़ोर से अपना माथा खाट के पावे पर पटक दिया और पावे पर फिर मारने केलिए माथा उठाया।"[1] अत्यंत सामान्य सी दिखने वाली तारा के इस प्रतिशोध को यशपाला ने मार्मिक ढंग से चित्रित किया है।

पहले नारी घर की चार दीवार के अंदर दमघोंटु वातावरण में जीने केलिए अभिशप्त थी। वह चाहे अपने ही घर में हो या पति के घर में, उसका जीवन दुख-दर्द भरा था। लेकिन नवजागरण कालीन जो चेतना है उसने नारी को

[1] झूठा सच – पृ-216

भी समाज में अपनी हैसियत का जीवन व्यतीत करने केलिए प्रेरित किया। इससे वह अपने ऊपर हो रहे अन्यायों के विरुद्ध आवाज़ उठाने तक का साहस भी करती है। नारी की यह चेतना केवल साहस नहीं थी, उसके तह में सदियों से चल रहे शोषण के खिलाफ का सशक्त विद्रोह था। नवजागरण काल में स्त्रियों में उभरी इस विद्रोह भावना को 'झूठा सच' के तारा में भी हम देख सकते हैं। अनमेल विवाह के बाद पति सोमराज जब सुहाग रात के अवसर पर उसको लांक्षित करते हुए हाथ उठाता है, तो तारा ने अपने चेहरे से उसका हाथ हटाकर चमकते आँसुओं से भरी लाल आँखों से सोमराज की ओर घूरकर धमकाती है – "खबरदार हाथ उठाया तो।"[1] इस प्रकार नारी अपने शोषण के खिलाफ संघर्ष करती हुई आगे बढती है। तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण ने उस केलिए आवश्यक मंच भी तैयार किया।

'झूठा सच' में स्त्री प्रश्न के बेमेल विवह, विधवा समस्या, बेटे-बेटी का भेद, यौन स्वतंत्रता, स्त्री की इच्छा, प्रेम संबन्धों की छूट तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ-साथ स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व के निर्माण तक के विभिन्न पहलुओं का चित्रण करके उपनिवेशकालीन नारी शोषण और नारी जागरण को वाणी देने का कार्य यशपाल ने किया है।

[1] झूठा सच : पृ-343

ख.जाति के नाम पर नारी शोषण

भारतीय जनता का जीवन वर्ण-व्यवस्था पर आधारित है । इसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र में विभाजित किया गया है। इस चातुरवर्ण्य पर आधारित समाज व्यवस्था सदियों से भारत में कायम है । इस में जो अंतिम वर्ण है उसे शूद्र कहता है उसमें सारे अंत्यज यानि दलित एवं पीडित आते हैं । इन दलितों को समाज में उच्च स्थान रखनेवाले सवर्ण लोग शोषण करते हैं । इस शोषण में ज़्यादतर नारियाँ ही उनका शिकार बनती हैं। अंग्रेज़ी शासन के तहत भी नारियों का यह शोषण खूब चल रहा था।

हिन्दी उपन्यास साहित्य को नया तेवर प्रदान करने में 'फणीश्वर नाथ रेणु' का महत्वपूर्ण स्थान है। उनका 'मैला आँचल' संक्रमणकालीन समाज के सरोकारों से सीधा संबन्ध रखनेवाला श्रेष्ठ उपन्यास है। उसमें ग्राम्य जीवन के विविध वर्गों के संस्कारों और अंत: संवेदना सूत्रों को परिचित कराने का प्रयास हुआ है । " 'मैला आँचल' में पूर्णिया जिले के मेरीगंज गाँव का राजनीतिक परिवर्तन, स्वतंत्रता, विभाजन, भ्रष्टाचार, वैचारिक-नैतिक पतन, शोषण तथा स्वार्थ लिप्सा आदि का सजीव चित्रण प्राप्त होता है।"[1]

'मैला आँचल' में अमीरों द्वारा गरीबों का शोषण हमें देखने को मिलते हैं। विशेषत: नारी शोषण । समाज के निचले तबके के एक बडे वर्ग की विवशता,

[1] के.पी.सिंह- हिन्दी उपन्यास जनवादी परंपरा, पृ-133

पीडा और दयनीय स्थिति के कारण पूँजीपति गरीब परिवार के स्त्रियों के साथ अनैतिक संबन्ध स्थापित करते हैं । परिवार के पुरुष मौन मूक भाव से उसे स्वीकारने पर विवश होता हैं । उपन्यास के सहदेव मिसिर निम्न जात वाली फुलिया से कहता है- "अरे जात धर्म ! फुलिया तू हमारी रानी है । तू हमारी जाति, तू ही धर्म सब कुछ....बाबू को दारू पीने केलिए डेढ रुपया दिया था और माँ को अठन्नी ।.....रात भर सहदेव मिसिर जगा रह गया था ।"[1] इस प्रकार नारी हर कहीं शोषित और पीडित है । उसकेलिए कोई रक्षक का काम नहीं करता लेकिन भक्षक का ज़रूर करता है । यह स्थिति हमारी सांस्कृतिक गिरावट की ओर ध्यान आकृष्ट करती है । उपन्यास का यह वाक्य भी उल्लेखनीय है – "एक असहाय औरत देवता के संरक्षण में भी सुख-चैन से नहीं सो सकती ।"[2] नारी जीवन की सच्चाइयों का सजीव चित्रण के ज़रिए समाजोद्धार की ओर हमारा ध्यान रेणू खींचता है ।

'मैला आँचल' के समग्र परिवेश पर जाति-विभाजित समाज की अभिशप्त छाया का प्रभाव अभिव्यक्त होता है । जाति और धर्म पर आधारित सांप्रदायिक राजनीति की जडें आज भी हमारे समाज में मज़बूती से जमती जा रही हैं । इसमें दलितों एवं पीडितों की कोई भूमिका नहीं है । वे उन्नतकुल जातों के अधीन अपनी पशुवत जीवन जी रहे हैं । रेणु स्पष्टत: कहता है कि -"जाति बहुत बडी चीज़ है...जाति की बात ऐसी है कि सभी बडे-बडे लीडर अपनी-अपनी जाति के

---

[1] मैला आँचल-पृ-179-80

[2] मैला आँचल - पृ-192

पाटी में हैं ।"[1] इस स्थिति में अब भी कोई परिवर्तन नहीं आया है । इसलिए उनका यह कथन प्रासंगिक बनता है । इस प्रकार कई तरह की विद्रूपताओं के चंगुल में फँसी मेरीगंज गाँव की जनता का उद्धार करने केलिए डॉ.प्रशांत का आगमन होता है । यद्यपि उनका आगमन वहाँ की रोगग्रस्त जनता की चिकित्सा केलिए डॉक्टर के रूप में हो फिर भी वह पूरे समाज को ग्रसित बीमारी केलिए भी दवा खोजता है । इससे हमें पता चलता है कि रेणु ने अपने उपन्यास 'मैला आँचल' में देश की संस्कृति की नब्ज को पकडा है ।

अमृतराय का 'बीज' में भी नारी शोषण और नारी जागरण का चित्रण हुआ है । बीज में स्वतंत्रता आन्दोलन की कथा अंकित है । इसमें अमृतराय ने अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध संघर्षरत देशप्रेमी एवं आन्दोलनकारी व्यक्तियों के सामाजिक कार्यकलापों का चित्रण किया है । इसमें भारतीय नारियों की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण हुआ है । पूँजीवादी समाज में सामंतीय दृष्टिकोण का शिकार बननेवाली, पुरुषों के विलास की वस्तुएँ होने के साथ ही धनाभाव के संकट झेलनेवाली, पारिवारिक बोझ से दबी परेशानी की ज़िन्दगी जीनेवाली नारी का चित्र 'बीज' में अत्यंत महत्वपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त हुआ है ।

उसी प्रकार भगवाती चरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' में भी जागृत नारी का जिक्र हुआ है । अंग्रेज़ी उपनिवेशवाद के विरुद्ध देशी लोगों द्वारा किए गए प्रतिरोधों में देश की नारियों का भी योगदान इसमें चित्रित है । कांग्रस के अहम्मदाबाद अधिवेशन से गंगादेवी, माया शर्मा आदि का प्रवेश होता है । यह

[1] मैला आँचल-पृ-310

नारी जागरण उल्लेखनीय पहलू है । इस प्रकार देखें तो उपनिवेश प्रतिरोधी आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी शोषण और नारी जागरण को भी उपन्यासकारों ने आवश्यक स्थान दिया है। भारत के साँस्कृतिक जागरण में नारी जागरण का अपना प्रमुख स्थान है।

राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रीय जागरण

किसी भी देश की भाषा उस देश की संस्कृति का मूल तत्व है । उसमें अपने देश की आत्मा विद्यमान है। देश की जनता को भाषा माँ के समान है। उसकी रक्षा तथा पालन-पोषण उनका कर्तव्य भी है । उसमें ही अपनी उन्नति संभव है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कहा है कि निजभाषा उन्नति अहए सब उन्नति को मूल । यानि अपनी भाषा की उन्नति ही देश की उन्नति का मूल तत्व है। उसके बिना देश का विकास असंभव है । स्वभाषा का प्रचार एवं प्रसार नवजागरण काल के राष्ट्र प्रेमियों केलिए गौरव का काम था । उसमें अपनी संस्कृति को बरकरार रखने की तीव्र इच्छा थी । इसका सुपरिणाम था हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद हाज़िल कराने का उनका प्रयास।

राष्ट्रभाषा का यह चिंतन एक प्रकार की राष्ट्रीयता का द्योतक है । यह केवल द्योतक ही नहीं था बल्कि इसमें तीक्ष्ण राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जागरण की धुरी हम देख सकते हैं। राष्ट्रभाषा के प्रचार एवं प्रसार के क्षेत्र में कई महान लोगों का योगदान उल्लेखनीय है । राजनीति तथा साहित्य के क्षेत्र में इसकी स्पष्ट झलक हमें देखने को मिलते हैं । "महात्मा गांधी के पूर्व तिलक ने स्वभाषा के

प्रयोग पर विशेष बल दिया था । उन्होंने मराठी भाषा के प्रति लोगों का ध्यान आकर्षित किया था । हिन्दी भाषा की उन्नति तथा प्रयोग के प्रश्न पर भी उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में अंग्रेज़ प्रभुओं से प्रार्थना की गई थी ।"[1] भाषाई जागरण में महात्मा गांधी की भूमिका महत्वपूर्ण है । वे भाषा को माता के समान मानते थे । वे कहते थे कि विदेशी भाषा द्वारा आज जो स्वातंत्र्य चाहते है वह नहीं मिल सकता । अब हमें अपनी मातृभाषा को नष्ट करके उसका खून नहीं करना चाहिए । उनकी यह चिन्ता पूरे कांग्रस की चिंता बन गई थी । इसलिए राष्ट्रीय कांग्रस की उपनिवेश प्रतिरोधी संग्रामों में राष्ट्रभाषा का भी प्रचार होने लगा । यह एक सशक्त सांस्कृतिक जागरण था ।

अंग्रेज़ी शिक्षा एवं भाषा के प्रति समाज के ऊपरी तबके के लोगों में आई प्रेम एवं गौरव की भावना देश की प्रगति केलिए एक हद तक बाधा बन गयी थी । क्योंकि उच्च शिक्षा प्राप्त मध्यवर्गी लोग, जिनकी ज़रूरत भारत के रास्ट्रीय संग्राम केलिए आवश्यक थी, अपनी संस्कृति एवं देश को भूलकर अपने अंग्रेज़ स्वामियों जैसे जीवन जीने केलिए कोशिश कर रहे थे । यह केवल कुछ अंग्रेज़ परस्त देशी अफसरों तक सीमित नहीं था । यह मानसिकता देश के अन्य लोगों पर भी पडने लगी थी । इसलिए अपनी भाषा एवं संस्कृति की रक्षा केलिए स्वतंत्रता सेनानियाँ अथक प्रयास करने लगे ।

भारत की राष्ट्रीय एकता केलिए राष्ट्रभाषा अनिवार्य अंग थी । इसलिए स्वदेश प्रेमियों ने राष्ट्रभाषा को भी अपने नारों में अवश्य स्थान दिया था ।

---

[1] डॉ.देवीदत्त तिवारी : हिन्दी उपन्यास, स्वतंत्रता संघर्ष के विभिन्न आयाम, पृ-191

"गांधीजी ने नवजीवन पत्रिका में 21 जून 1931 ई वीं में लिखा था – अगर स्वराज्य अंग्रेज़ी बोलनेवाले भारतीयों को और उन्हीं केलिए होनेवाला हो तो नि:सन्देह अंग्रेज़ी ही राष्ट्रभाषा होगी । लेकिन अगर स्वराज्य करोडों भूखों मरनेवालों, करोडों निरक्षरों, निरक्षर बहनों और दलितों व अंत्यजों का हो और इन सबके लिए होनेवाला हो तो हिन्दी ही एकमात्र राजभाषा हो सकती है ।"[1] उनके इस वक्तव्य से मालूम होता है कि राष्ट्रभाषा जगरण की कितनी ज़रूरत थी । हिन्दी आम भारतीय की भाषा थी । उसकी रक्षा तथा उससे देश की रक्षा आम भारतीयों के लिए अपनी माँ की रक्षा थी ।

भारत की प्राचीन भाषाओं और संस्कृतियों ने औपनिवेशिक दासता को कभी स्वीकार और आत्मसात नहीं किया । उन्होंने उसके विरुद्ध प्रतिरोध का सूत्रपात किया और आत्मरक्षा के साथ अपने समाज को जागृत और संगठित किया । लेकिन हिन्दी की स्थिति ऐसी नहीं थी । इसने अपनी अपनी अस्मिता को औपनिवेशिक भाषा नीति के अधीन समर्पित किया था । इसका प्रत्यक्ष रूप उन्नीसवीं शदी के भारतीय मध्यवर्गी जीवन में देख सकते हैं । उन्होंने अपनी मातृभाषा को पीछे थकेलकर अंग्रेज़ी को बढावा दिया । वे अंग्रेज़ी भाषा में गौरव और आत्मविश्वास को अनुभूत करते थे । इसी दौरान राष्ट्रभाषा का जागरण हुआ । यह हमारे देश के सांस्कृतिक जागरण का अभिन्न अंग है ।

[1] सरस्वति पत्रिका-अप्रैल 1969

भूमण्डलीकरण के इस दौर में जहाँ 'राष्ट्र' की सीमाएँ टूट रही है उसे 'कल्पना' में बदला जा रहा है। ऐसी अवस्था में राष्ट्रीय आन्दोलन को लेकर लिखे गए साहित्य का अध्ययन करना काफी विचारोत्तजक और शिक्षाप्रद हो सकता है। उसमें राष्ट्र, राष्ट्रभाषा तथा संस्कृति की गरिमा आदि के विभिन्न पहलुओं को हम देख सकते हैं। राष्ट्रीयता के तहत हुए राष्ट्रभाषा जागरण का जिक्र अमृतराय के 'बीज', यश्पाल के 'झूठा सच', भगवतीचरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' आदि उपन्यासों में हुआ है। आधुनिक हिन्दी उपन्यास देश के संस्कृतिक जागरण के सच्चा इतिहास दर्शानेवाला साहित्य रूप है।

निष्कर्ष

भारतीय समाज को जिस औपनिवेशिक अंधकार से बाहर निकालने की कोशिश नवजागरण ने की थी, उसकी ओर वापस जाने की तैयारी उपभोक्तावादी समाज और नव-पुनरुद्धानवाद दोनों तरफ से ज़ारी है। नवजागरण और स्वाधीनता संग्राम के सांस्कृतिक योद्धाओं ने धर्म के भ्रामक तत्वों से संघर्ष करते हुए चाहा था कि आधुनिक जीवन में उसके उदात्त तत्व पुनप्रतिष्ठित हों। हमारा ध्यान उन गुणों की ओर जाना चाहिए जिनके बीज भारतीय नवजागरण ने बोए थे। विवेच्यकाल के उपन्यास इसी की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। देशी जनता के जीवन में पडे पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव को दर्शाने तथा

उसके बुरे प्रभावों से बचने केलिए हमें जागृत करने का प्रयास इन उपनिवेश प्रतिरोधी उपन्यासों के द्वारा हुआ है।

उपसंहार

मानव जीवन के भाव-सत्य को अपनी समग्रता में सभी स्तरों, आयामों में व्यापकता और गहनता के साथ अभिव्यक्त करने के लिए उपन्यास से अधिक समर्थ माध्यम दूसरा नहीं। एक साहित्य रचना तब सार्थक होती है जब समाज के साथ उसका सार्थक सरोकार होता है। इसका मतलब यह है कि साहित्य अपने मनोरंजन की भूमिका से ऊपर उठकर सामाजिक संस्करण की भूमिका को निभाए। आधुनिक हिन्दी साहित्य की गद्य विधा का सशक्त माध्यम उपन्यास भी अपना सामाजिक सरोगार को लेकर अवतरित हुआ। वह जीवन की ज्वलंत सच्चाईयों को अपने में समेटकर संस्कृति कर्म का उपकरण बना। उपन्यास मानव जीवन को शक्ति और सुंदरता प्रदान करनेवाली सोद्देश्य रचना है।

सन् 1947 में भारत विदेशी गुलामी से मुक्त हो चुका था। देश की जनता के स्वातंत्र्य मोह ने औपनिवेशिक सत्ता के निर्मम शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए अपने को प्रेरित किया। लंबे अरसे के संघर्ष के बाद मुक्त देश का जो नक्शा दिखाई पडा वह नवीन आकांक्षाओं से जुडा हुआ था। लेकिन इस आकांक्षा का कोई अंत नहीं हुआ। पराधीनता से मुक्त जनता की स्वाधीनता के सपनों के ऊपर नवीन प्रजातंत्रीय व्यवस्था की धोखेबाजी ने अपना गलत खेल खेला। इससे आम आदमी की ज़िन्दगी बदत्तर होने लगी। इसी के साथ नये किस्म के उपनिवेशवाद देश में अपना वर्चस्व स्थापित करने की कोशिश करने लगे।

अत्यंत सजग एवं संवेदनशील प्राणी होने के नाते रचनाकार इन्हीं परिस्थितियों से अलग रह नहीं सका। वे समय-समय पर इन नयी परिस्थितियों के जनविरोधि पक्षों का पर्दाफाश अपनी रचनाओं के माध्यम से करते रहे। स्वतंत्रता पूर्व एवं बाद के हिन्दी उपन्यास ऐसे प्रतिरोधी तेवर को लेकर निकला जिसमें समाजवादी, उपनिवेशवादी शक्तियों के खिलाफ का सशक्त विद्रोह अभिव्यक्त है।

उपनिवेशवाद एक सच्चाई है जिसका एक लंबा इतिहास है । इस दीर्घ कालीन राजनीतिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था की जडों ने भारतीय सामाजिक, संस्कृतिक , आर्थिक एवं विकास के क्षेत्र में व्यापक रूप से घुसपैठ की है । इसने शोषण के तहत पूरे देश की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक ढाँचा ही बदल दिया । औद्योगिक क्रांति के पश्चात साम्राज्यवादी शक्तियाँ मंडी की खोज में निकली थीं । यह साम्राज्यों एवं उपनिवेशों की स्थापना का हेतु बना । साम्राज्यवाद की नृशंसता, कुरूपता तथा उसकी परिणतियों से देशी लोग परेशान होने लगे । इसके परिणास्वरूप नवजागरण, नये राष्ट्रबोध तथा सांमंती मूल्यों को चुनौती देने का कार्य आदि शुरू हुए । जब किसी देश औपनिवेशिक अधीनता के दौर से सौ-दो सौ वर्ष गुज़र चुका होता है तो उसका परिणाम सांस्कृतिक पराधीनता, राष्ट्र की गरीबी और राजनीतिक परनिर्भरता में परिलक्षित होते हैं । भारत के साथ भी यही हुआ था । उपनिवेशवादियों के इस संपर्क का दुष्परिणाम यह निकाला कि भारतीय संस्कृति का नाश, अर्थव्यवस्था का असंतुलन, राष्ट्रीय स्तर पर अराजकता, सांप्रदायिकता आदि धीरे-धीरे उभर आने लगे ।

उपनिवेशित भारत की सामाजिक समस्याओं को विभिन्न कोनों से देखने-परखने का प्रयास आधुनिक हिन्दी उपन्यास ने किया है । उसमें पूरे देश का जीवंत इतिहास विध्यमान है । नयी परिस्थिति में नये जीवन मूल्यों की सृष्टि के लिए इतिहास की ओर पुन: जाना जब आवश्यक महसूस हुआ तब देशीय रचनाकार अपने अतीत एवं परंपरा के प्रति जागृत होने लगे । उपन्यास के क्षेत्र में यह जागरण भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, नागार्जुन, गिरिराज किशोर, फणीश्वरनाथ रेणु, अमृत राय, कृष्णा सोबती जैसे उपन्यासकारों में हुआ । उन्होंने अपनी यादों को वर्तमान परिस्थिति में नये कथा फलकों में ढालकर अच्छे-अच्छे उपन्यासों की सृष्टि की । इन उपन्यासों में उपनिवेशीय मानसिकता से संबंध रखने वाले स्वाधीन भारत के नागरिकों में देश प्रेम को जागृत करने का प्रयास हुआ है साथ ही उपनिवेशीय साजिशों की खतरनाक परिस्थिति से अवगत कराने का यत्न भी हुआ है । भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, रेणु, नागर्जुन जैसे उपन्यासकार स्वयं

पराधीनता की सारी कठिनाईयों के भुक्त भोगी थे। इसलिए उनकी लेखनी से जो वाणी निकलती थी उसमें राष्ट्रीयता की महक थी और औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ का विद्रोही स्वर भी गूँजित था।

स्वाधीनता अन-अधीनता नहीं, अपने आप के ऊपर स्व-का नियंत्रण ही स्वाधीनता है। उपनिवेशितों की ज़िन्दगी परधीनता की थी। लेकिन सन् 1947 के बाद के भारतीयों की ज़िन्दगी एक प्रकार की अन-अधीनता की थी। क्योंकि स्वतंत्र होते हुए भी विभिन्न प्रकार के बाहरी नियंत्रणों से लोग त्रस्त थे। इसी के साथ अंधी स्वामिभक्ति तथा पाश्चात्य सभ्यता के प्रति मोह दोनों ने भारत को पुन: औपनिवेशिक अधीश्त्व की ओर जा गिरने का रास्ता दिखाया। इसी भीषण अवस्था के प्रति जन जागरण स्वतंत्रता के बाद के कुछ उपन्यासकारों का लक्ष्य था।

साम्राज्यवादी शोषण विश्वमानविकता का शत्रु है। उसके पंजों में पडकर आम आदमी पिसता और जगडता रहा। उपनिवेशवादियों के निर्मम शोषण अपने जीवनोपाय की सीमा को लाँघ कर अमानुषिक बनने पर लोगों में इसके विरुद्ध की विद्रोह भावना सुलग उठी । आधुनिक हिन्दी उपन्यासकार इस विद्रोही मानसिकतावाले सच्चे देश भक्त थे। इसलिए उपन्यास को उन्हों ने मनोरंजन की भूमिका से ऊपर उठाकर सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विमर्श तथा प्रतिरोध का अस्त्र बनाया।

स्वाधीनता पूर्व भारत के सामाजिक जीवन की सच्चाइयों को उसकी संपूर्णता में पकडकर उपनिवेशी शासन और उससे बनी संकटग्रस्त परिस्थितियों में देशी जनता के प्रतिरोधी स्वर को उपन्यासकारों ने चित्रित करने की कोशिश की । उसमें अपने गौरवमय अतीत के स्वतंत्र चित्तवाले देशभक्त वीरों की उपनिवेश प्रतिरोधी भूमिका को हम देख सकते हैं । 'भूले बिसरे चित्र के ज्ञानप्रकाश हो या 'झूठा सच' के जयदेव पुरी, 'बीज' के सत्यवान हो या 'जुगलबंदी' के चतर सिंह, सभी अंग्रेज़ी हुकूमत के अमानवीय व्यवहारों के प्रति

अपनी सख्त नफरत प्रकट करनेवाले वीर युवा लोग थे । इन्हीं वीर योद्धाओं का गढन करके आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों ने अपना साम्राज्यवाद विरोधी मानसिकता को शब्दबद्ध किया ।

किसी भी देश का उपनिवेश बनना उसका राजनीतिक अस्तित्व का नष्ट होना है । वहाँ उनके स्वचालित शासन नहीं होता उसके बदले वे बाहरी नियंत्रण के अधीन आकर गुलामी की ज़िन्दगी जीने केलिए मज़बूर हो जाते हैं । इस गुलामी की ज़िन्दगी की कडवी सच्चाइयों का अंकन विवेच्य काल (1950-80)के उपनिवेश प्रतिरोधी उपन्यासों में हुआ है । आधुनिक हिन्दी उपन्यासकार वर्तमान में जीकर अपने महत्वपूर्ण अतीत के जीवन सत्य को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है । साहित्य में अतीत की इस पुनर्रचना करने के पीछे रचनाकारों की दीर्घ दृष्टि काम करती है । क्योंकि भारत का पुन: पराधीनता की ओर जाना उसकेलिए असह्य है । इसलिए अपनी रचनाओं को उपन्यासकारों ने औपनिवेशिक प्रतिरोध का माध्यम बनाया । समाज में परिवर्तन लाने की क्षमता साहित्य को है । इसलिए सच्चा साहित्य अपनी समाजोन्मुखता को लेकर निकलता है । साहित्य की सबसे श्रेष्ठ विधा उपन्यास इसी समाजोन्मुखता को लेकर निकला है ।

विख्यात साहित्यकार निर्मल वर्मा ने कहा है कि साहित्य हमें मुक्ति नहीं दिलाता, वह हमें बंदी होने का एहसास कराता है । वह हमारे भीतर के रिक्त स्थानों को नहीं भरता, उनमें खालीपन को दर्शाता है । स्वातंत्योत्तर उपनिवेशप्रतिरोधी उपन्यासों ने भी यही किया था । प्रेमचंद जैसे उपन्यासकारों ने इसकी शुरूआत की । प्रेमचंद की इसी परंपरा को आगे बढाने का कार्य भगवतीचरण वर्मा, यशपाल , नागार्जुन , गिरिराज किशोर , फणीश्वरनाथ रेणु, अमृत राय जैसे उपन्यासकारों ने किया । उनकेलिए उपन्यस केवल किसी कहानी कहने का माध्यम नहीं था । वह तो सामाजिक, साँस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिदृश्य का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करना तद्वारा देशी लोगों में पराधीनता के प्रति जागरण पैदा करना था ।

मानव अपने जीवन में स्वतंत्र रहना चाहते हैं। स्वतंत्रता में ही जीवन है। पराधीनता चाहे मानसिक हो या राजनीतिक उसके तले लोगों को घुटन भरी ज़िन्दगी जीना है। वहाँ अपना कोई अस्तित्व, अपनी कोई संस्कृति का स्थान नहीं होता, हमें अपनी मर्ज़ी के अनुसार जीने का अधिकार नहीं होता । सबकुछ साम्राज्यवादियों के बाहरी नियंत्रण से चलता है। तब अपने ही देश में लोगों को गुलाम बनके जीना पडता है । वह जीवन मानवोचित नहीं होता क्योंकि उपनिवेशी नीतियों में कोई समाजोद्धारक तत्व नहीं है। वह पूर्णत: शोषण और दमन पर आधारित है। इसी शोषण व्यवस्था के प्रति पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने तथा उसमें प्रतिरोधी मानसिकता को बनाने का श्रेय इन उपन्यासकारों ने लिया है।

नवीन शिक्षा, पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कारों के प्रभाव के साथ-साथ विभिन्न दर्शनों का प्रभाव भी हिन्दी उपन्यासकारों पर पडा है । इसी के साथ महात्मा गांधी के उच्च आदर्शों का भी प्रभाव उनमें हुआ है। उससे उन्होंने जीवन के नए मूल्यों की सृष्टि भी की। पाश्चात्य दर्शनों से जो दृष्टि उपन्यासकारों को मिली उसका सुपरिणाम यह हुआ कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में नए जीवन दर्शनों का आविर्भाव हुआ। जिसके ज़रिए पतनोन्मुख भारतीय संस्कृति को सजग बनाने का कार्य उन्होंने किया। यशपाल , नागार्जुन , फणीश्वरनाथ रेणु, अमृत राय जैसे उपन्यासकार मार्क्सवाद से प्रभावित होकर अपने जीवन में तथा रचना रूपी समाज कर्म में नए मूल्यों की स्थापना की । इसलिए उनके उपन्यासों के पात्रों में भी ये नए जीवन दर्शन हम देख सकते हैं। इस नए जीवन दर्शन ने उनको प्रतिबद्ध बनाया। उनकी इस प्रतिबद्धता ने ही औपनिवेशिक सत्ता के शोषणों के विरुद्ध आवाज़ उठाने केलिए उन्हें प्रेरित किया था। उपन्यास के पात्रों की सशक्त वाणी औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ के उनके विद्रोह को दर्शाती है।

देश में आज भी उपनिवेशवाद ज़िन्दा है । लेकिन उसके रंग-रूप में परिवर्तन आया है। वह नए-नए रूपों में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष में विद्यमान है। पहले भी शक्तिशाली देशों द्वारा भारत के साथ व्यापार का संबन्ध था। वह आज भी है। आज तो वह मल्टी नेशनल कंपनियों द्वारा है। उपनिवेश काल में भी हम गुलाम थे और आज भी। आज विश्व बैंक , अंताराष्ट्रीय मुद्राकोश आदि के कर्जदार बनकर भारत जैसे तीसरी दुनिया के देश पुन: वैदेशिक अधीशत्व की गिरफ्त में पडे हुए हैं । ऐसी परिस्थिति में उपनिवेशवाद के विरुद्ध प्रतिरोध करनेवाले उपन्यासों की प्रासंगिकता है।

आज़ाद भारत की आधुनिकता उपनिवेशवाद का एक हिस्सा है । आज उपनिवेश के खिलाफ संघर्ष करने केलिए हमें औपनिवेशित दृष्टि से मुक्त होना अनिवार्य बन गया है। इस केलिए हमें नवजागरण व स्वतंत्रता आन्दोलन कालीन विवेक और तर्कबुद्धि की ओर पुन: देखना पडता है। ऐसी परिस्थिति में इतिहास के यथार्थ को उपन्यासों में चित्रित कर अपनी उपनिवेशवादी, साम्राज्यवाद विरोधी मानसिकता को अभिव्यक्त करनेवाले उपन्यासों का अध्ययन प्रासंगिक बनता है । सन् 1950 से लेकर 1980 तक के कुछ उपन्यास उपनिवेशवाद के खिलाफ के सशक्त प्रतिरोध को अपने में समेटकर निकले हैं, वह साहित्यकर्मियों की सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचायक हैं । इसकी परंपरा समकालीन हिन्दी उपन्यास में नव उपनिवेश के प्रतिरोध के रूप में रवीन्द्रवर्मा के 'निन्या नब्बे', अल्का सरावगी के 'कलिकथा वया बाइपास', विनोद कुमार शुक्ल के 'नौकर की कमीज़' जैसे उपन्यासों द्वारा ज़ारी है।

****

संदर्भ ग्रन्थसूचि

<u>आधार ग्रन्थ</u>

1. भूले बिसरे चित्र : भगवतीचरण वर्म
   राजकमल प्रकाशन
   दिल्ली, सं.1975
2. सीधी सच्ची बातें : भगवतीचरण वर्म
   राजकमल प्रकाशन
   दिल्ली, सं.1968
3. झूठा सच (भाग-1) : यशपाल
   विप्लव प्रकाशन
   लखनाऊ, सं.1963
4. मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल
   लोकभारती प्रकाशन
   इलाहाबाद, सं.1973
5. बाबा बटेश्वरनाथ : नागार्जुन
   राजकमल प्रकाशन
   दिल्ली, सं.1954
6. बलचनमा : नागार्जुन
   किताब महल प्रकाशन
   इलाहाबाद, सं.1967
7. बीज : अमृतराय
   हंस प्रकाशन
   इलाहाबाद, सं.1995
8. मैला अँचल : फणीश्वर नाथ रेणु
   राजकमल प्रकाशन
   दिल्ली, सं.1954

9. जुगलबंदी : गिरिराज किशोर
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली, सं.1971

10. तमस : भीष्म साहनी
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली, सं.1973

11. ज़िन्दगीनामा : कृष्ण सोबती
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली, सं.1979

<u>विशेष अध्ययन</u>

12. रंगभूमि : प्रेमचंद
भारतीय ग्रंथ निकेतन
नई दिल्ली, सं. 1995

<u>आलोचनात्मक ग्रंथ</u>

13. अठारह उपन्यास : राजेन्द्र यादव
राधाकृष्ण प्रकाशन
दिल्ली, पहली आवृत्ति.2008

14. अधूरे साक्षात्कार : नेमी चन्द्र जैन
अक्षर प्रकाशन, दिल्ली

15. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका : लाक्ष्मीसागर वाष्णोय
हिन्दी परिषद
प्रयाग विश्वविद्यलय
प्र.सं.1951

16. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास : बच्चन सिंह
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद, सं.2012

17. आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि : डॉ.रामदरश मिश्र
अभिनव प्रकाशन दिल्ली
प्र.सं.1975

18. आज का पूंजीवाद और उसका उपनिवेशवाद : रमेश उपाध्याय उत्तर
प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।

19. आज की राजनीति और भ्रष्टाचार : नरेन्द्र मोहन
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।

20. ईश्वर और धर्मनिरपेक्ष संस्कृति : शंभुनाथ
आधार प्रकाशन , हरियाना
सं. 2000

21. उपन्यास की शर्त : जगदीश नारायण स्त्रीवास्तव
किताब घर, दिल्ली

22. उपन्यास का काव्यशास्त्र : बच्चन सिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं-2008

23. उपन्यास शिल्पि गिरिराज किशोर : सं. ए. अरविन्दाक्षन
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं- 2000

24. उपन्यास का सिद्धांत : जार्ज लुकाच (अनु)
आनंद प्रकाशन मैकमिलन
इंडिया लिमिटेड, दिल्ली.
प्र.सं-1981

25. उपन्यास शिल्पि गिरिराज किशोर : सं. डॉ.ए.अरविन्दाक्षन
वाणी प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं.2000

26. कथा समय : विजयमोहन सिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन
दिल्ली, दू.सं. 2002

27. कथा साहित्य के सौ बरस : विभूति नारायन राय
शिल्पायन, दिल्ली, सं.2008

28. कुछ विचार : प्रेमचंद
लोक भारती प्रकाशन
इलाहाबाद सं.2008

29. क्रांतिकारी यशपाल एक समर्पित व्यक्तित्व : सं. मधुरेश
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद, सं.2007

30. जाति धर्म और सांप्रदायिकता : शैलेन्द्र शैली
लोकजतन प्रकाशन
भोपाल, प्र.सं.2003

31. जिन्ना भारत विभाजन के आईने में : जसवंत सिंह
राजपाल एण्ड संस्
दिल्ली, सं.2009

32. दशवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में सांप्रदायिक सौहार्द : मंजुल राणा
वाणी प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं.2008

33. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी सहित्य का इतिहास : डॉ.लक्ष्मी सागर वाष्णोय
राजपाल एण्ड संस्
दिल्ली, प्र.सं.1973

34. धर्म और सांप्रदायिकता : नरेन्द्र मोहन, प्रभात प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं.1996

35. प्रतिरोध की संस्कृति और साहित्य : परमानंद श्रीवास्तव
भारतीय ज्ञानपीठ
दिल्ली, 2011

36. प्रगतिवादी हिन्दी उपन्यास : डॉ. बदरी प्रसाद
ओम प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं-1987

37. प्रगतिवाद और हिन्दी उपन्यास : डॉ. प्रभास चंद्र शर्मा
साहित्य सदन प्रकाशन,
देहरादून, प्रथम-1960

38. फणीश्वरनाथ रेणु की राजनीतिक चेतना : डॉ. शिवचंद प्रसाद
अनंग प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं- 2001

39. भारत में राष्ट्रवाद और सांस्कृतिक राजनीति : मुशीरुल हासव
ग्रंथशिल्पि प्रकाशन
दिल्ली, सं.2001

40. भारत में राजनीति कल और आज : रजनी कोठारी (अनु),
अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन
दिल्ली, प्र. सं – 2005

41. भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव : ताराचंद
(अनु) सुरेश मिश्र
ग्रंथशिल्पि प्रकाशन, दिल्ली,
प्र.सं-2006

42. भारतीय संस्कृति के मूल तत्व : सोती वीरेन्द्र चन्द्र
राजपाल एंड संस् दिल्ली
सं.1998

43. भारतीय स्वतंत्रता और हिन्दी उपन्यास : शशिभूषण सिंहल
आर्य प्रकास मंडल
दिल्ली, प्र. 2000

44. भारत विभाजन और हिन्दी कथा साहित्य : प्रमीला अग्रवाल
जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं-1992

45. भारतेन्दु युगीन साहित्य में राष्ट्रेआय भावना : पुष्पा थरेजा
राजपाल एण्ड संस् , दिल्ली
प्र.सं-1978

46. भारतीय साहित्य की भूमिका : रामविलास शर्मा
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
तीसरी आवृत्ति 2012

47. भारत में राष्ट्रवाद और सांप्रदायिक राजनीति : मुशीरुल हसन,
ग्रंथशिल्पि प्रकाशन
प्र.सं.2008

48. भीष्म साहनी उपन्यास साहित्य : विवेक द्विवेदी
वाणी प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं.1998

49. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजगरण : रामविलास शर्मा
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं – 1977

50. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य : रामविलास शर्मा
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्र सं – 1984

51. मार्क्स और पिछडे हुए समाज : रामविलास शर्मा
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
सं-1995

52. मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र और हिन्दी उपन्यास : कुँवरपाल सिंह
नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं.2005

53. यशपाल के उपन्यासों का मूल्यांकन : डॉ. सुदर्शन मल्होत्रा
आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं.2001

58. यशपाल उपन्यास साहित्य : डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा

नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली
सं-2004

59.यशपाल के उपन्यास : डॉ.प्रमोद पाटील
विकास प्रकाशन
कानपुर, प्र.सं.2008

60.यशपाल के उपन्यास साहित्य : विभूतिनारायण राव
राधाकृष्ण पेपर बुक्स
दिल्ली, प्र.सं.2002

61. रचना और राजनीति : प्रेमशंकर
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं-1999

62. शब्द और कर्म : मैनेजर पाण्डेय
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
सं. 1997

63. संस्कृति के चार अध्याय : दिनकर
लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद, सं.2008

64. साम्राज्यवाद का उदय और अस्त : अयोध्यासिंह
प्रकाशन संस्थान, दिल्ली
सं.2002

65. संस्कृति की उत्तरकथा : शंभुनाथ
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं-2000

66. संस्कृति विचार : ज्योतिष जोशि
मेधा बुक्स, दिल्ली
प्र.सं-2003

67. स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहस : संजय गर्ग
सामयिक प्रकाशन, दिल्ली
प्र.2012

68. सांस्कृतिक राष्ट्र दर्शन : हृदयनारायण दीक्षित
शिल्पायन, दिल्ली
सं – 2005

69. संस्कृति विचार : ज्योतिष जोशी
मेधा बुक्स, दिल्ली
प्र. सं.2003

70. साहित्यिक निबन्ध आधुनिक दृष्टिकोण : बच्चन सिंह
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
सं-2008

71. साठोत्तर हिन्दी उपन्यस : (सं) डॉ.रामजी तिवारी
: परिदृश्य प्रकाशन, मुम्बई
प्र.सं-2000

72. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका : डॉ.रणवीर रांग्रा
जगतराम एण्ड संस् दिल्ली
सं.1986

73. समकालीन हिन्दी उपन्यास
समय और संवेदना : डॉ.वी.के.अब्दुल जलील
वाणी प्रकाशन
दिल्ली, प्र. सं.2006

74. समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और
सामाजिक न्याय : सुरेन्द्रमोहन
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 2006

75. साहित्य, इतिहास और संस्कृति : शिवकुमार मिश्र
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं.2009

76. समकालीन हिन्दी उपन्यास : डॉ.एन.मोहनन
वाणी प्रकाशन
दिल्ली, सं.2012

77. हिन्दी उपन्यास की दिशाएँ : वेदप्रकाश अमिताभ
गोविन्द प्रकाशन
मथुरा, सं.2003

78. हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य : अज्ञेय
राधाकृष्ण प्रकाशन
दिल्ली,

79. साहित्य और सामाजिक संदर्भ : डॉ. शिवकुमार मिश्र
कला प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं.1977

80. हिन्दी उपन्यास का पुनरावतरण : धनंजय वर्मा
वाणी प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं.2003

81. हिन्दी उपन्यास: स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध आयाम : डॉ.देवीदत्त तिवारी
तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली
प्र. 1985

82. हिन्दी का गद्य साहित्य : डॉ. रामचन्द्र तिवारी
विश्वविद्यालय प्रकाशन,
वारणासी,अष्टम सं.2012

83. हिन्दी नवजागरण और संस्कृति : शंभुनाथ
आनंद प्रकाशन, कोलकत्ता
प्र.सं.2004

84. हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : भारत भूषण अग्रवाल
किताब घर दिल्ली
सं.2001

85. हिन्दी उपन्यासों में महाकाव्यात्मक चेतना : डॉ. सुषमा गुप्ता
सूर्य प्रकाशन दिल्ली
प्र.सं.1983

86. हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन :डॉ.रमेश तिवारी
: रचना प्रकाशन
इलाहाबाद, प्र.सं.1972

87. हिन्दी उपन्यास 1950 के बाद : सं. निर्मला जैन/एन. तिवारी
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली, प्र.सं.1987

88. हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन : व्रजभूषण सिंह आदर्श
रचना प्रकाशन
इलाहबाद-1

<u>इतिहास ग्रंथ</u>

89. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास : बच्चन सिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन
दिल्ली, सं.2013

90. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल
नागरी प्रचारिणी सभा
वारणासी, संवत् 2060

91. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास : राम गोपाल
सुलभ प्रकाशन लखनाउऊ
दू.सं-1986

92. भारत का इतिहास : क्षितीश्वर प्रसाद सिंह
हिन्दी पुस्तकालय, कोल्कत्ता
सं. 1964

93.स्वतंत्रता आन्दोलन की विचर धारा : मधु लिमये
पल्लव प्रकाशन
सं. 1983

94. भारत का इतिहास : रोमिला थापर
राजकमल प्रकाशन
छठवां. सं. 1987

अंग्रेज़ी किताबें

93.A Survey of Indian History : K.M.Panicker
Asia Publishing
House
Delhi, 1957

94. Modern Indian History : V.D.Mahajan
S Chand & Co.
Delhi

95. The New Standard Encyclopedia :Standard
Educational
Corporation,
Chicago

96. Webster's Dictionary : Gramercy Books
New York Avenel,
New Jersey 1989

97 Wretched of Earth : Frantz Fanon
Penguin Books
Lendon, 1961

98. India's Struggle for Independence :Bibin Chandra,

MrudulaMukharji,
AdityaMukharji,
K.N.Panicker,
Sucheta Mahajan

99. The Novel and the People :Forgin Languages
Publishig House
Moscow-1956

100. The History and Culture of : Bharateya Vidya Bhavan
The Indian People (Vol.xi) delhi, 1977

101. Modern India : Bipin Chandra
DC Books, Kottayam, Kerala
March-2009

102. History of Freedom Movement in India (Vol-II) : Thara Chand
Publication Division
Ministry of Information
and Broadcasting
Govt of India, 1967

103. The Cambridge History of India (Vol.vi) : HD Dodwell/ VD.Mahajan
S Chand & Co. Delhi

104. The Foundation of Indian Culture : Sri.Arobindo
Arabindo Ashram, Pondichery
1968

105. Karl Marx Frederick Engels : Progress Publishers
The First Indian War of Independence Moscow
6th 1998

पत्रिकाएँ

106. आलोचना - अप्रैल-सितंबर 2004

107. आलोचना – आलोचना संकलित 1985-86

108. आलोचना - जुलाई -सितंबर 2003

109. आलोचना- अप्रैल-जून 2010

110. आलोचना – अक्तूबर- दिसंबर 2005

111. आलोचना – अक्तूबर- दिसंबर 2009

112. आलोचना – जुलाई - सितंबर 1987

113. आलोचना – जनवरी-मार्च 2001

114. आजकल – सितंबर 2007

115. कथन- अप्रैल जून 2009

116. नई धारा – अप्रैल मई 2008

117. नया ज्ञानोदय – नवंबर 2003

118. शोध दिशा – अंक 12, 2008

119. सम्मेलन पत्रिका – जनवरी मार्च 2012

120. हंस – जनवरी 1999

मलयालम किताबें

121. भारत बृहत् चरित्रम् : अनु. तायाट् शंकरन्
केरल भाषा इंस्टीट्यूट
तिरुवनंतपुरम्
सं. जुलाई.2011

122. भारतत्तिंटे देशीय संस्कारम् : (अनु.) पी.शशि

नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली
सं 2005

123. भारतीयता : सुकुमार अषीक्कोड
डी.सी. बुक्स
कोट्टयम, सं. 2010

124. मध्यकाल इंडिया : सतीष चन्द्र
डी.सी. बुक्स, कोट्टयम
सं.2007

125. प्राचीन इंडिया : आर.एस.शर्मा
डी.सी. बुक्स, कोट्टयम
सं.2008

126. कार्ल मार्क्स इंद्ययेक्कुरिच् : अनु. ए.एन.सत्यदास
चिंता पब्लिषेर्स
तिरुवनंतपुरम
सं.2013

127. इंद्ययुम् चिंतयुम् : सुकुमार अषीक्कोड
मतृभूमि बुक्स
कोषिक्कोड
सं. 2011

<u>कोश</u>

128. बृहत् अंग्रेज़ी हिन्दी कोश : डॉ.हरदेव बाहरी
ज्ञानमण्डल लिमिटेड
वरणासी

129. हिन्दी विश्वकोश : नगेन्द्रनाथ वसु(सं)
बि.आर. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन
दिल्ली

****